जाने अनजाने

रामेश्वर टांटिया

अपनी बात

ॐ

सब मनुष्य एक से नही होते घटनाएँ भी एक सी नही। प्रत्येक के पीछे अपना एक कारण होता है। जाने-अनजाने बहुत से पात्र, चरित्र या घटनाओ से जीवन में सम्पर्क होते हैं और छूट जाते है। जरा गहराई से देखने-समझने पर इनसे प्रेरणा मिलती है।

कुछ घुमक्कडी स्वभाव और कुछ जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण जीवन में इन्ही जाने-अनजानो में, मैने अपने को और अपनो को खोजा, पाया और खोया भी। भाव, भाषा की नाप-तौल जानता नही। फिर भी अपनी इन्ही कुछ देखी-सुनी घटनाएँ और सस्मरणो को लिखता रहा हूँ। पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से बहुतो को इनमे अपनापन मिला। पाठको और मित्रो के प्रोत्साहन से लिखने का क्रम टूटा नही।

आदर्श अथवा प्रेरणादायक व्यक्ति केवल अभिजातिवर्ग या धनिको मे ही नही होते वल्कि सब साधारण मे भी बहुतायत से पाये जाते है। जाने-अनजाने में ऐसे चरित्र और पात्र चन्दरी बुआ हमीद खाँ भाटी एवं कविराज ब्रजमोहन मिलेंगे।

जिन्दगी के सफर मे इसी तरह के जो रत्न मिलते गये उन्हे मानस की झोली मे भरता गया। माँ भारती के अक्षय कोष मे इन्हे रखकर यदि अपना दायित्य निभा पाया तो अपने को धन्य समझूगा।

—लेखक

कथा क्रम

एक विचित्र अनुभूति

जयपुरसे आते हुए सुबह ७ मईको आगरा पहुँचा। लोहामण्डीमें रिक्शा किया और सिकन्दरासे दो मील दूर अपने साहित्यिक मित्र रावीजीके निवास स्थान कैलाशके लिये चल पड़ा। कैलाशसे करीब आधा मील इधरका स्थान कुछ दूर तक जंगल-झाड़ियोंसे भरा, सूनसान और वीरान है। अचानक ऐसा लगा कि मुझ पर कोई हल्की सी चीज आकर गिरी। चारों तरफ देखा, कुछ भी नहीं था न कोई आदमी। रिक्शा अपनी चाल चला जा रहा था। थोड़ी दूर आगे जाने पर वैसी ही चीज फिर गिरी जान पड़ी। इस बार सतर्कतासे खोज-बीन की किन्तु कपड़ों पर या रिक्शेमें, कहीं भी कुछ न मिला।

कैलाश की श्यामकुटी में रावीजी के घर इसके पूर्व कई बार जा चुका हूँ। परन्तु इस बार न जाने क्यों मनमें एक हिचक सी हुई। अकेले ऊपर जानेके बजाय मैंने रिक्शेवाले से कहा "चलो देख लें रावीजी हैं या नहीं।"

जब हम दोनों ऊपर पहुँचे तो देखा कि सारा मकान सूनसान पड़ा है। न रावीजीके लोग थे और न सदा वहाँ रहने वाले ब्रह्मचारी जी। कई बार आवाज देकर उसी पैरों हम दोनों वापस आ गये। पास-पड़ोससे पता चला कि रावीजी

यह मकान छोड़ कर सिकन्दरासे आगे गीता मन्दिरमें चले गये है। मैं उसी रिक्शे पर गीता मन्दिर आ गया।

रावीजी अपने जमे-जमाये स्थान कैलाशको छोड़कर यहाँ क्यों आ गये, इसके बारेमें उन्होंने जो जानकारी दी, वह आजके बुद्धिवादी वर्गके लिये शायद अग्राह्य होगी। परन्तु उन जैसे भले और प्रामाणिक व्यक्तिकी बात पर अविश्वास भी नहीं किया जा सकता।

घटना अद्भुत सी है। १८ और १९ अप्रैल १९७२ दो दिनोंके लिये वे दिल्ली गये। २० को वापस कैलाश आने पर उन्हें बताया गया कि कई बार मकानमें पत्थरोंके छोटे-बड़े टुकड़े गिरे और तरह-तरहकी आवाजें भी सुनाई पड़ीं। उन्होंने इन बातों पर विश्वास नहीं किया। उसी शाम उनके यहाँका दस-बारह वर्षका एक बच्चा स्कूलसे वापस आया। शकल बदली सी और आँखोंमें अजीब सी चमक थी। थोड़ी देर बाद कड़कती हुई आवाजमें कहने लगा, “आइन्दा इस बच्चे को अकेले इस रास्ते पर न भेजियेगा, आज तो मैंने इसकी रक्षा कर दी।”

रावीजीने प्रकोपग्रस्त बालकसे पूछा, “आप कौन हैं ?” उसने उत्तर दिया “मैं श्यामलाल हूँ, मैंने ही यह मकान बनवाया था। बहुत वर्षों तक इसमें संन्यासीके रूपमें रहा। जीवन में कुछ ऐसी गलतियाँ हो गयीं कि मुझे प्रेतयोनि में रहना पड़ रहा है। अब यहाँ कुछ ऐसी भयानक प्रेतात्माएँ आकर रहने लगीं है जो नही चाहतीं कि आप लोग यहाँ रहें।”

थोड़ी देर बाद बच्चा अपनी स्वाभाविक अवस्थामें आ गया। जब उससे पूछा गया तो वह स्वयं चकित हो गया। उसे पहले की बात याद न थी।

संयोगसे रावीजीके साथ उनके साहित्यिक मित्र श्री आनन्द जैन भी दिल्ली से कैलाश आये थे। उन्होंने हँसते हुए कहा कि यह सब ढोंग है, मैं एक-दो दिनमें ही आपके भूतों को भगा दूँगा। विज्ञानके इस युगमें इन बातोंको कोई विश्वास नही करेगा। इतनेमें ही सोडावाटरकी एक बोतल आकर उनके बीच गिरी। शीशेके टुकड़े चारों तरफ बिखर गये पर किसीको चोट नहीं आयी। फिर ईंटका टुकड़ा भी गिरा। सबोंने बहुतेरी जाँच-पड़ताल की पर फेंकने वाला न मिला, न उसका कोई निशान ही।

उसी रात वह बच्चा जोर-जोरसे रोकर कहने लगा, "साफा बाँधे एक आदमी मुझे ऊपर बुला रहा है।" बच्चेकी माँ वहीं थी, उसने गोदीसे उसे चिपका लिया। थोड़ी देर बाद बच्चे ने कहा "माँ, मुझे साधु बाबा बुला रहे हैं।" इस बार वह डरा सा नहीं था। खुद ही खुशी-खुशी ऊपर छतपर चला गया।

वापस आकर उसने बताया कि बाबाजीका सिर घुटा हुआ था, भगवा वस्त्र पहने थे, पैरोंमें खड़ाऊँ। मुझसे कह रहे थे कि मेरी जो यह लोहेकी खाट है, उसका सिरहाना दूसरी ओर कर दो। तुम लोग यहाँसे अब चले जाओ। पासके

कैलाश मन्दिरसे गोसाईंजी आ गये थे। उन्होंने बताया कि श्यामलालजी इसी वेशमें रहते थे। संन्यासी होनेके बाद उन्होंने कुछ अक्षम्य अपराध किये थे।

दूसरे दिन लड़का फिर प्रभावमें आ गया। उससे बात करनेके सिलसिलेमें रावीजीने कहा, "महाराज यदि आप हमारे हितैषी हैं तो हम लोगोंके साथ चाय पीजिये।" प्रेतात्माके बताये अनुसार एक कप चाय कमरेके भीतर रख दी गयी। दो मिनट बाद चायका प्याला खाली मिला। उन्होंने भोजनका भी निमन्त्रण स्वीकार किया। हमने एक थालीमें भोजन सजाकर रखा और कमरा बन्द कर दिया। थोड़ी देर बाद देखा कि थालीसे दोनों फुलके और दाल समाप्त हो चुके थे, चावल ज्योंके त्यों रखे थे। इतनेमें ही एक साबित ईंट आकर गिरी। आनन्दजी भी अब कुछ सहमे। उन्होंने उपस्थित सब लोगों से एक कागज पर हस्ताक्षर कराया और उसे ईंट पर बाँध दिया और कहा कि हम चाहते हैं कि यह ईंट सामने की खिड़की पर चली जाय। छोटा सा कमरा था, कोई अन्दर था नहीं। उसे अच्छी तरह बन्द कर दिया गया। कुछ देर बाद खोलने पर देखा गया कि ईंट खिड़की पर रखी है और हस्ताक्षर का पर्चा खुला हुआ है। बच्चे पर उस समय तक प्रभाव था। रावीजी ने कहा कि यदि आप हमें पाँच दिन की मोहलत दें तो हम जैसे भी हों, चले जायेंगे। जवाब मिला, "पाँच दिन तक आप पर कोई बाधा नहीं आयेगी। आराम से रहिये।"

२५ अप्रैलको जब वे वहाँसे अपना सामान बाँधकर चलने को तैयार हुए तो किताबोंसे भरी एक बड़ी सन्दूक के लिये सोचा कि फिर कभी ले जायेंगे। मगर देखनेमे आया कि वह दरवाजे तक अपने आप खिसक आयी। इशारा स्पष्ट था, आखिर उसे भी लेकर आ गये।

रावीजीकी भतीजी प्रभाजीकी सन्दूकमें एक डायरी थी, उसमें लिखा हुआ मिला, "आदरणीय रावीजी, जैन बहुत तर्क-वितर्क करता है, इसे समझा दीजिये। और भी बहुत सी बातें थीं। मैंने वह डायरी देखी। भाषा और लिखावट साधारण थी। वह सन्दूक भी मैंने रावीजीके नये स्थान पर देखी।

इन बातोंकी खबर पाकर श्यामलालजीके पुत्र आये। वे आगरेमें डाक्टर हैं। उन्होंने बताया कि उनकी पत्नी भी तीन-चार दिन पहले जोर-जोरसे कहने लगी थी कि जल्द ही श्याम-कुटीका नाश हो जायेगा।

सारी बातें सुनकर मुझे अपने ऊपर गिरी अदृश्य वस्तुकी याद आयी। मनमें एक सिहरन सी हुई।

श्यामकुटीमें रावीजी बहुत वर्षों रहे। उस निर्जन स्थान को खाली करवानेकी किसी को गरज भीनहीं थी क्योंकि न तो वहाँ किराया ही आ सकता था, और न किसीके रहनेका प्रश्न था। आस-पासमें वे बहुत ही सेवा-भावी और मिलनसार माने जाते हैं। उनसे कोई वैर-भाव भी रखने वाला नहीं है।

इस घटनाको उन्होंने अपने 'नये विज्ञापन'के मई अंकमें संक्षेप में प्रकाशित किया। वैसे भी पास-पड़ोसमें यह काफी चर्चाका विषय बनी हुई है। कुछ मित्रोंकी राय है कि टोलीमें वहाँ जाकर रातमें रहा जाय।

मैं स्वयं भूत-प्रेतोंमें विश्वास नहीं करता। हो सकता है मुझे जो अनुभव हुआ, वह मनका भ्रम हो। परन्तु जिस विस्तार से रावीजी, उनकी भतीजी तथा बच्चोंने बातें बतायी उन पर अविश्वासका कारण नही बनता। उस बालकको भी देखा, बहुत ही निरीह, सीधा-सादा है। मैंने श्री आनन्द जैनको पत्र लिखा और उनके उत्तरसे मेरी धारणा की पुष्टि होती है।

बहुत दिनों पहले मैंने बी० डी० ऋषि और लेडबीटरकी पुस्तकें इस सम्बन्धमें पढ़ी थी। कुछ घटनाएं भी सुन रखी थीं। परन्तु इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ना चाहूँगा।

उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का नया प्रयोग

आजसे तीन वर्ष पहले जब देशके चौदह बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था तो इनमें जमा लगभग तीन हजार करोड़ रुपयोंकी पूंजी सरकारी नियन्त्रणमें स्वतः ही आ गयी। परन्तु मूलतः उन बैंकोंके जो भागीदार (शेयर होल्डर) थे, उनको इक्कीस करोड़ रुपयेके करीब चुकता पूंजी और रिजर्व का जोड़कर मिल गया। इससे जो लाखों छोटे-बड़े भागीदार थे, वे एक प्रकारसे सन्तुष्ट हो गये। हाँ, इन संस्थाओं की पचासों वर्षकी साख (गुडविल) के लिये कोई मुआवजा नहीं दिया गया था। पिछले वर्ष साधारण बीमा कम्पनियों का जब राष्ट्रीयकरण हुआ तब लोगोंके मनमें यह विश्वास था कि पहले की तरह ही मूल धन और सुरक्षित कोष (रिजर्व फण्ड) को जोड़कर भागीदारों को रुपया मिल जायेगा। परन्तु इस बार सरकारने यह मुआवजा पिछली बारकी तरह (जो उचित और आवश्यक था) न देकर केवल लाभांशके अनुपात से दिया। नतीजा यह हुआ कि अपेक्षित कीमतोंसे लगभग आधी ही हिस्सेदारोंको मिलेगी।

गत फरवरीके विधान सभाओंके चुनावोंके दौरान वित्त मन्त्री श्री चह्वाणने गुजरातमें अपने भाषणोंमें कहा था कि आवश्यक वस्तुओंके कारखानोंका सरकार राष्ट्रीयकरण कर

लेगी। इसके पूर्व इस सम्बन्धमें संसदमे एकाधिकरणको तोड़ने के लिये २७वीं धारामें संशोधन भी किया जा चुका था। पिछले दिनों जिस प्रकारसे कोकिंग कोयलाकी खानो और इण्डियन कापर कम्पनीको सरकारी तत्वावधानमें बिना मुआ-वजा तय किये ले लिया गया, उससे उद्योगपतियोंमें चिन्ता होनी स्वाभाविक ही थी। अब, नयी दिल्लीमें विश्वस्त सूत्रोंसे पता चला है कि कुछ अर्थ विशेषज्ञों एवं कम्पनी-कानूनके जानकारों ने सरकारको ऐसी सलाह दी है जिससे कि बहुत थोड़े रुपयों में एक नये तरीकेसे उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण हो जाय। इसके लिये एक समिति भी बन गयी है जिसके सदस्य है वित्त सचिव श्री आई० बी० पटेल, उद्योग सचिव श्री वी० बी० लाल एवं कम्पनी-कानून सचिव श्री आर० प्रसाद। यह समिति पूरी जाँच और जानकारी करके सरकारको सलाह देगी कि बिना मुआवजा दिये किस प्रकारसे बड़े और जरूरी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण हो जाय। वैसे, बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट और धर्मार्थ ट्रस्टोंके हिस्सोंकी प्राक्सीसे सरकारका बहुत सी कम्पनियों पर इस समय भी अधिकार हो सकता है, परन्तु इसमें इस बातका डर है कि मैनेजिंग एजेन्सी समाप्त होनेके बावजूद उद्योगोके वर्तमान संचालक नाना प्रकारके झंझट लगा सकते है। इसलिये उक्त समितिका पहला कार्य यह होगा कि बड़े-बडे उद्योगपतियोंको बुलाकर इस बातके लिये तैयार करें कि वे अपने हिस्से सरकारको बेच दे। इस प्रकार

से केवल तीस-पैंतीस प्रतिशत हिस्से खरीद कर ही विभिन्न उद्योगों पर सरकारी नियन्त्रण हो जायगा। अध्यक्ष और प्रबन्ध निदेशक सरकारी हो जायेंगे, संचालक-मण्डलमें भले ही वर्तमान संचालकों मे से कुछको रहने दिया जाय।

यह भी सम्भव है कि अधिकाश वर्तमान अधिकारियों और तकनीकी विशेषज्ञोंको पूर्ववत अपने-अपने पदों पर बहाल रखा जाय। परन्तु इसमें यह अड़चन आ सकती है कि उनका अधिकतम मासिक वेतन वर्तमान दृष्टिकोणके अनुसार साढ़े तीन हजारसे अधिक न हो जब कि उनमेंसे कइयोंको इस समय पाँच-सात हजार तक मिलते है। यहाँ तक सुना गया है कि कुछ बड़े उद्योगपतियोंको बुलाकर इस सन्दर्भमे बात-चीत शुरू कर दी गयी है। ऐसा अनुमान है कि यदि वर्तमान संचालक स्वेच्छा पूर्वक अपने हिस्से बेचना नही चाहेंगे तो आगामी सितम्बर-अक्टूबरसे संसदीय सत्रमें वाचू समिति की रिपोर्ट पर जब विचार होगा. उस समय २७वीं धारामे भी बड़ा परिवर्तन करके सरकार अपने हाथमें यह अधिकार ले लेगी कि किसी भी प्रतिष्ठानके हिस्से जो संचालकोंके पास हों उसे सरकार बाजार भावमे खरीद ले। कहा जाता है कि सर्वप्रथम एल्यूमीनियम, लोहे और चीनीके उद्योग लिये जायेंगे। ऐसा लगता है कि अपने आपमे नये ढंगसे राष्ट्रीय-करणकी दिशामे यह एक बहुत बड़ा निर्णय होगा।

देखना यह है कि इन कारखानों की इस समय जनी

प्रगति होती जा रही है और भागीदारोंको भी जो अच्छा लाभांश मिल रहा है वह सरकारी नियन्त्रणमें जानेके बाद रह सकेगी या नहीं। वर्तमान सरकारी क्षेत्रके अधिकांश कारखानोंकी हालत तो शोचनीय है और वे घाटेमें चल रहे हैं।

आज टाटा, बिड़ला, भरतराम और कस्तूरभाई जैसे सुदक्ष संचालकोंके तत्वावधानमें नये होने वाले उद्योगोंके हिस्से जिस तत्परता से बिक जाते है, उसमें भी शायद कमी आ जायेगी क्योंकि खरीददारों को यह भरोसा नहीं रहेगा कि ये कारखाने उन्हींकी देख-रेख में रह पायेंगे या नहीं।

इण्डियन कापरके हिस्सोंका भाव पहले चार रुपयेका था। अब सरकारी नियन्त्रणके बाद उसका भाव २५ प्रतिशत घट गया है। हो सकता है कि जो उद्योग सरकार अपने नियन्त्रणमें लेगी, उनके संचालकोंको वर्तमान कीमत या उससे कुछ अधिक मिल जाये किन्तु शेष बचे लाखों छोटे-बड़े भागीदारोंको तो भविष्यमें शायद ही वर्तमान लाभांश मिल पायेगा।

गुनाहों का बादशाह

महमूद गजनवी, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दालीकी याद आते ही बेकसूरोंकी हत्या, बेकसोंकी अस्मतदारी, मन्दिरोंकी ध्वंस लीला, गाँव, कस्बों, नगरोंकी आगजनी आदि की दर्दनाक तस्वीर सामने आ जाती है।

तैमूरकी तरह ये सब सिर्फ लूटके लिए भारत आये और अपना मकसद पूरा कर चले गये, पर इस लेखके नायक औरंगजेबको यहीं पैदा और दफन होना था।

सन् १६१८में दोहद (गुजरात) में जन्म हुआ। पिता शाहजादा खुर्रम वहाँका सूबेदार था। १६२७में वह शाहजहाँके नामसे तख्तनशीन हुआ। औरंगजेब भी तबसे आगरासे रहने लगा। वहीं उर्दू, फारसी और अरबीकी शिक्षा पाई। बादशाह बड़े शाहजादे दारा शिकोह और शाहजादी जहान-आरा से विशेष स्नेह करता था, इसलिए शुरूसे ही औरंगजेब कुछ अलग-थलग सा रहकर कुरान शरीफ, मुहम्मद साहब की जीवनी और शेख जैनुद्दीनकी कृतियोंके अध्ययनमें तल्लीन रहने लगा। युवराज दारा शिकोह अधिकतर मौज-शौक व काव्य संगीतमें मस्त रहता। शायरों, सूफी फकीरों तथा हिन्दू सन्तोंकी संगत करता।

प्रगति होती जा रही है और भागीदारोंको भी जो अच्छा लाभाश मिल रहा है वह सरकारी नियन्त्रणमे जानेके बाद रह सकेगी या नही। वर्तमान सरकारी क्षेत्रके अधिकाश कारखानोकी हालत तो शोचनीय है और वे घाटेमें चल रहे है।

आज टाटा, बिड़ला, भरतराम और कस्तूरभाई जैसे सुदक्ष संचालकोंके तत्वावधानमें नये होने वाले उद्योगोंके हिस्से जिस तत्परता से बिक जाते है, उसमें भी शायद कमी आ जायेगी क्योंकि खरीददारों को यह भरोसा नही रहेगा कि ये कारखाने उन्हींकी देख-रेख में रह पायेंगे या नही।

इण्डियन कापरके हिस्सोंका भाव पहले चार रुपयेका था। अब सरकारी नियन्त्रणके बाद उसका भाव २५ प्रति-शत घट गया है। हो सकता है कि जो उद्योग सरकार अपने नियन्त्रणमे लेगी, उनके संचालकोको वर्तमान कीमत या उससे कुछ अधिक मिल जाये किन्तु शेष बचे लाखो छोटे-बड़े भागीदारोंको तो भविष्यमें शायद ही वर्तमान लाभाश मिल पायेगा।

गुनाहों का बादशाह

महमूद गजनवी, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दालीकी याद आते ही बेकसूरोंकी हत्या, बेकसोंकी अस्मतदारी, मन्दिरोंकी ध्वंस लीला, गाँव, कस्बों, नगरोंकी आगजनी आदि की दर्दनाक तस्वीर सामने आ जाती है।

तैमूरकी तरह ये सब सिर्फ लूटके लिए भारत आये और अपना मकसद पूरा कर चले गये, पर इस लेखके नायक औरंगजेबको यहीं पैदा और दफ़न होना था।

सन १६१८में दोहद (गुजरात) में जन्म हुआ। पिता शाहजादा खुर्रम वहाँका सूबेदार था। १६२७में वह शाहजहाँके नामसे तख्तनशीन हुआ। औरंगजेब भी तबसे आगरामें रहने लगा। वहीं उर्दू, फारसी और अरबीकी शिक्षा पाई। बादशाह बड़े शाहजादे दारा शिकोह और शाहजादी जहानआरा से विशेष स्नेह करता था, इसलिए शुरूसे ही औरंगजेब कुछ अलग-थलग सा रहकर कुरान शरीफ, मुहम्मद साहब की जीवनी और शेख जैनुद्दीनकी कृतियोंके अध्ययनमें तल्लीन रहने लगा। युवराज दारा शिकोह अधिकतर मौज-शौक व काव्य संगीतमें मस्त रहता। शायरों, सूफी फकीरों तथा हिन्दू सन्तोंकी संगत करता।

सत्रह वर्षकी अवस्था में औरंगजेबको तीन सेनाओं का अधिपति बनाकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया। थोड़े ही समयमें उसने ओरछा पर अधिकार कर लिया। अनेक मन्दिर तोड़े और अपार धन सम्पत्ति लेकर वापस लौटा। मुसलमान दरबारी प्रसन्न व प्रभावित हुए। औरंगजेब की मजहबी कट्टरताको बल मिला। आगे जाकर इसीके अनुसार अपना आचरण व व्यवहार ढालता गया। हिन्दू विद्वेष के बल पर वह गाजी बननेका स्वप्न देखने लगा।

१६५२ में एक बड़ी फौजके साथ उसे दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा गया। ६ वर्षकी अवधिमें उसने वहाँकी शासन व्यवस्था और आमदनी की स्थिति सुदृढ़ कर ली। आगरेके दरबारमें धाक जम गई। वहाँ उससे सहानुभूति रखनेवाले पहले ही से थे, जो जरूरी सूचनाये भेजते रहते थे। इनमें बादशाहकी छोटी शाहजादी रोशन आरा प्रमुख थी।

बादशाहने शाहजादा दारा शिकोहको तख्त-नशीन करने का एलान कर दिया। वैसे भी वली अहद होनेके नाते लम्बे अरसेसे वह बादशाहके नाम पर शासन-संचालन करता आ रहा था। अकस्मात् १६५७ में बादशाहकी बीमारीकी खबर फैली तो तख्तके लिये चारों शाहजादे बेताब हो उठे। बगाल से शाहशुजा, दक्षिणसे औरंगजेब और गुजरातसे मुरादने अपनी पूरी फौजोंके साथ आगराकी ओर कूच कर दिया।

३९ वर्षके औरंगजेबको पिछले २३ वर्षोंके शासन व युद्ध संचालनका अनुभव था। अपने व्यक्तित्व पर दीन इस्लामका मुलम्मा चढ़ा चुका था- छलनीतिमें प्रवीण था ही। मीर जुम्ला और शाइस्ता खाँ जैसे प्रमुख प्रभावशाली व्यक्तियोंको उसने बड़ी आसानीसे अपनी ओर मिला लिया।

मुगल खानदानमें शाही तख्तके लिए खूरेजी वरासतमें चली आ रही थी, पर पहले और अबकी स्थितिमें फर्क था। बादशाह अभी मौजूद है- वली अहद का ऐलान हो चुका है, शाही फरमान लम्बे अरसे से उसके दस्तखतसे निकल रहे है। औरंगजेबने सोचा, वक्त नये तरीकेका तकाजा कर रहा है। उसने अपने छोटे भाई मुरादको मोहरा बनाया, कहने लगा-हिन्दू परस्त काफिर दारा को शिकस्त देकर सल्तनतको एक सच्चे बहादुर और इस्लाम पर यकीन रखनेवाले मजबूत हाथोंमें सौंप देना ही मेरा फर्ज है। यह तभी मुमकिन है- जब आप जैसा कौल फेलका पक्का जावाज ईमान-परस्त तख्त-नशीन हो। उसके बादमें जिन्दगीके बाकी दिन मक्का शरीफमें सुकूनसे गुजार सकूँगा। उसने मुरादको बादशाह बनानेकी कसम खाई। उसे जहाँपनाह बादशाह हुजूर कहने लगा, दस्तबस्ता कोर्निश करने लगा। बेवकूफ मुराद जालमें फँस गया, तख्तकी सूरत देखनेके पहले ही खुदको हिन्दुस्तानका शाहंशाह समझ बैठा।

धौलपुरके पास धरमतके मैदानमें शाहजादोंकी व

शाही फौजमें जंग छिड़ा। शाही फौजका सेनापति कासिम खॉ पहले ही से औरंगजेवसे मिला हुआ था। ऐन वक्त पर इस्लामी रंगमें रंगे मुसलमान सिपहसालारोंने धोखा दिया। महाराज जसवंत सिह अपने बहुतसे राजपूत योद्धाओंको खोकर घायलावस्थामे किसी प्रकार जोधपुर वापस पहुँचे।

डेढ़ महीने वाद सूमागढ़ का निर्णायक युद्ध हुआ। इसमें वादशाह स्वंय जाना चाहता था, पर औरंगजेवसे मिले हुए दरवारियोंने दारासे कहा—यदि वादशाह सलामत खुद तशरीफ ले जायेंगे तो फतहका सेहरा आपको नहीं, उन्हींको मिलेगा। इस पर उसने वादशाह से अर्जकी कि जवतक वन्दा जिन्दा है, जहाँपनाहको तकलीफ करनेकी जरूरत नहीं। दारा एक विशाल सुसज्जित फौज लेकर मैदाने जगमें उतरा। औरंगजेवके पास इसकी आधी भी नहीं थी। इस वार भी सिपहसालार खलीलुल्ला खॉ दुश्मनोंसे मिला हुआ था। उसने दाराको घोड़े पर चढ़कर युद्ध संचालन करनेकी सलाह दी। सफेद हाथी का हौदा खाली देखकर शाही फौजने समझा कि कि दारा मारा गया। बूँदी नरेश छत्रसाल जैसे वीर सेनानी तथा इतनी वड़ी सेना होते हुए भी शाही फौज हार गयी। दूसरे दिन औरंगजेवने वादशाहको पत्र लिखा कि दारा काफिरोंसे मिलकर गद्दी हथियाना चाहता था, इसीलिए मुझे जंगके लिए मजवूर होना पड़ा। अव मैं आपके हुजूरमें हाजिर होकर खिदमत पेश करना चाहता हूँ।

दो तीन दिनोंमें आगरा शहरकी व्यवस्था कर अपने बड़े बेटे मुहम्मद सुलतानको किलेका घेरा डालनेके लिए भेज दिया। घेरा कसता गया, रसद व पानी बन्द हो गया। आठ जून को किला उसके कब्जेमें आ गया। जो भी पहरेदार खोजे तथा हरमकी ड्यूटी पर तैनात सशस्त्र तातारी औरतें मिलीं, सभीको मौतके घाट उतार दिया और इस प्रकार अपने समय का सर्वाधिक सम्पन्न वैभवशाली वृद्ध बीमार बादशाह अपने ही युवक पौत्र द्वारा बन्दी बना लिया गया।

प्रमुख दरबारियोंको धन व पदका लालच देकर केवल पन्द्रह दिनोंमें औरंगजेबने पूरे तौरसे अपने पैर जमा लिये। बादशाह तो कैद हो गया, मगर बेवकूफ बादशाह हुजूर मुराद की मुराद अभी बाकी थी, उसे ठिकाने लगाना था।

फतहकी खुशीमें जश्न मनाया गया। हुजूरे आलम 'बादशाह' को खूब पिलाई गई। शराबके नशेमें धुत्त बेहोश मुरादको क्या पता कि क्या हो रहा है। आँखे खुलने पर उसने अपनेको शाही तख्त पर नहीं, शाही कैदखानेमे पाया। साढ़े तीन वर्ष तक ग्वालियरके किलेमें भाँति-भाँतिकी कठोर यंत्रणायें दिये जाने पर भी जब उस अभागेके प्राण न निकले तो औरंगजेबने दो गुलामोंको भेजकर उसे दुनियाकी कैद से रिहा कर दिया।

आगरा से भागकर दारा सपरिवार दो महीने तक पनाह की खोजमें भटकता फिरा। जहाँ पहुँचा वहीं कोरा जवाब।

शाही फौजमें जंग छिड़ा। शाही फौजका सेनापति कासिम खॉ पहले ही से औरंगजेबसे मिला हुआ था। ऐन वक्त पर इस्लामी रंगमें रंगे मुसलमान सिपहसालारोंने धोखा दिया। महाराज जसवंत सिंह अपने बहुतसे राजपूत योद्धाओंको खोकर घायलावस्थामें किसी प्रकार जोधपुर वापस पहुँचे।

डेढ़ महीने बाद सूमागढ का निर्णायक युद्ध हुआ। इसमें बादशाह स्वंय जाना चाहता था, पर औरंगजेबसे मिले हुए दरबारियोंने दारासे कहा—यदि बादशाह सलामत खुद तशरीफ ले जायेंगे तो फ़तह्का सेहरा आपको नहीं, उन्हींको मिलेगा। इस पर उसने बादशाह से अर्जकी कि जबतक बन्दा ज़िन्दा है, जहाँपनाहको तकलीफ करनेकी जरूरत नहीं। दारा एक विशाल सुसज्जित फौज लेकर मैदाने जंगमें उतरा। औरंगजेबके पास इसकी आधी भी नहीं थी। इस बार भी सिपहसालार खलीलुल्ला खॉ दुश्मनोंसे मिला हुआ था। उसने दाराको घोड़े पर चढ़कर युद्ध संचालन करनेकी सलाह दी। सफेद हाथी का हौदा खाली देखकर शाही फौजने समझा कि कि दारा मारा गया। बूँदी नरेश छत्रसाल जैसे वीर सेनानी तथा इतनी बड़ी सेना होते हुए भी शाही फौज हार गयी। दूसरे दिन औरंगजेबने बादशाहको पत्र लिखा कि दारा काफिरोंसे मिलकर गद्दी हथियाना चाहता था, इसीलिए मुझे जंगके लिए मसबूर होना पड़ा। अब मैं आपके हुजूरमें हाजिर होकर खिदमत पेश करना चाहता हूँ।

दो तीन दिनोंमें आगरा शहरकी व्यवस्था कर अपने बड़े बेटे मुहम्मद सुलतानको किलेका घेरा डालनेके लिए भेज दिया। घेरा कसता गया, रसद व पानी बन्द हो गया। आठ जून को किला उसके कब्जेमें आ गया। जो भी पहरेदार खोजे तथा हरमकी ड्यूटी पर तैनात सशस्त्र तातारी औरतें मिलीं, सभीको मौतके घाट उतार दिया और इस प्रकार अपने समय का सर्वाधिक सम्पन्न वैभवशाली वृद्ध बीमार बादशाह अपने ही युवक पौत्र द्वारा बन्दी बना लिया गया।

प्रमुख दरबारियोंको धन व पदका लालच देकर केवल पन्द्रह दिनोंमें औरंगजेबने पूरे तौरसे अपने पैर जमा लिये। बादशाह तो कैद हो गया, मगर बेवकूफ बादशाह हुजूर मुराद की मुराद अभी बाकी थी, उसे ठिकाने लगाना था।

फतहकी खुशीमें जश्न मनाया गया। हुजूरे आलम 'बादशाह' को खूब पिलाई गई। शराबके नशेमें धुत्त बेहोश मुरादको क्या पता कि क्या हो रहा है। आँखें खुलने पर उसने अपनेको शाही तख्त पर नहीं, शाही कैदखानेमें पाया। साढ़े तीन वर्ष तक ग्वालियरके किलेमें भाँति-भाँतिकी कठोर यंत्रणायें दिये जाने पर भी जब उस अभागेके प्राण न निकले तो औरंगजेबने दो गुलामोंको भेजकर उसे दुनियाकी कैद से रिहा कर दिया।

आगरा से भागकर दारा सपरिवार दो महीने तक पनाह की खोजमें भटकता फिरा। जहाँ पहुँचा वहीं कोरा जवाब।

आखिर अहमदाबादके सूबेदार जीवाँ खाँ ने पनाह दी, एक बार दाराने उसकी जान बचाई थी। वक्तकी बात, इसी सूबेदारने इनामके लालचमें दाराको औरंगजेबके सिपाहियोंको सौंप दिया। दुःख, थकान और बीमारीकी मारी उसकी प्यारी नादरा दम तोड़ चुकी थी, लाश पड़ी थी। अहसान फरामोश जीवाँ खाँने इतना भी मौका न दिया कि दारा अपनी बेगमकी लाश दफनवा सकता।

दाराको राजधानी लाया गया। शाहजादे सिपर शिकोह के साथ एक बूढ़ी हथिनी पर बिठाकर दिल्लीकी सड़कों पर घुमाया गया। मैले-कुचैले कपड़े, पैरोंमे बेड़ियाँ, पीछे नंगी तलवार लिये जल्लाद, ऐसा असहनीय मर्मान्तक दृश्य देखकर, दिल्लीकी जनता सिसक-सिसक कर रो रही थी, एक तरफ खड़ा हुआ विश्वासघाती जीवाँ खाँ मुस्कुरा रहा था, जनता से न सहा गया, उसे ईंट-पत्थरोंसे मार-मारकर वहीं ढेर कर दिया।

दारा कैदखाने भेज दिया गया। उसे मौतके घाट उतारने के लिए कुछ ऐसा न्याय का ढोंग रचना था कि जनता उचित समझे। काजियोंकी बैठक बुलाई गई, मसले पर विचार हुआ, फतवा दिया गया—सजाये मौत। दूसरे दिन दाराकी लाश शहरमें घुमा दी गई।

अबतक औरंगजेब शुजाको प्यार भरे पत्र लिखता रहा कि तुम बंगाल, बिहार और आसाम पर बेफिकरीसे हुकूमत करो,

काफिर दारा व मुरादको सजा देनेके लिए मैं दिलोजानसे कोशा हूँ, इनसे फुरसत पाते ही मेरी हविस पूरी, फिर वही होगा जो तुम चाहोगे।

शुजा बाहोश था, मगर ऐयाश व आलसी भी। उसे अपनी सेना व सम्पत्ति पर अटूट विश्वास था। उसने सोचा, मैदान से दो के हट जाने पर एक से सलटने में सुविधा होगी। इसलिए जान-बूझकर अनेक मूल्यवान एवं अनुकूल अवसर हाथ से निकल जाने दिये।

मुराद और दारा को ठिकाने लगाकर औरंगजेब ने शुजा पर चढ़ाई कर दी। इलाहाबाद के पास खुजवा मे दोनों भाइयों में मुठभेड़ हुई। शुजा बड़ी बहादुर से लड़ा, पर बेह-तरीन हथियारों से लैस नब्बे हजार शाही फौज व तेज सवारों के सामने उसकी सेनाके पैर उखड़ गये। वह किसी प्रकार जान बचाकर बंगाल की ओर भागा।

यों औरंगजेब भाइयों और भतीजोंका खून करके और बूढ़े बाप तथा बहिनको कैद करके बादशाह हो गया। दरबारमें अधिकांश सुन्नी थे, राजधर्म सुन्नी था, अस्तु सुन्नी सम्प्रदाय को सन्तुष्ट करने के लिए तख्तशीन होते ही सूफी फकीरों को कत्ल करवा दिया। उन दिनों सरमद नामक एक पहुँचे हुए सूफी सन्त थे, देश दुनिया में उनकी बड़ी शोहरत थी। काजियों से फतवा दिलवाकर इस महान सन्त की गर्दन उतरवा ली।

एक पादरी मुसलमान बन गया था, कुछ दिन में वह फिर ईसाई हो गया, उसे भी मृत्यु दण्ड दे दिया गया। बोहरे सम्प्रदाय के धर्मगुरु सैयद कुतुबुद्दीन को उनके ७०० अनुयायियों सहित अहमदाबाद में सरेआम कत्ल कर दिया गया।

दादा 'जहाँगीर' था तो अरंगजेबने भी अपना उपनाम 'आलमगीर' रक्खा। आलमगीर होने के लिए सारा आलम नहीं तो कम से कम सारा हिन्दुस्तान तो साया होना ही चाहिए। इसके लिए उसे अनेक युद्ध करने थे, क्योंकि हिन्दुस्तान के बहुतसे हिस्से मुगल सल्तनतमें नहीं थे। लड़ाइयोंमें लम्बे खर्चके लिए लम्बी रकम चाहिए, इसलिए अपने बुजर्गों द्वारा रद्द किया जजिया कर हर हिन्दू बच्चे, बूढ़े-जवान पर फिर लागू कर दिया। अफसर कड़ाईसे जजिया वसूल करते, लोग खूनका घूँट पीकर रह जाते। खजानेमें बेशुमार दौलत जमा होने लगी। जो नहीं दे पाते, मारे डरके मुसलमान बन जाते। इस्लाम का प्रचार-प्रसार जोर-शोरसे शुरू हो गया। आलमगीर जिन्दा पीर का गगनभेदी घोष गूँजने लगा।

औरंगजेब का मजहबी जोश इतनेसे सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसे मन्दिरोंमें सदियोंसे संचित सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात, रत्न, धन आदि अखर रहा था। उसने प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिरोंको निशाना बनाया। इधर मन्दिर टूटते, उधर हिन्दूओंके दिल टूटते और शाही खजाने पर धन की अजस्र वर्षा होने लगती। अहमदाबादके प्रसिद्ध चिन्तामणि मन्दिरमें पहले गोवध कराया

फिर उसे मस्जिद बनवा दिया। मथुराके केशवराय मन्दिरकी ध्वजा काफी दूरसे दिखाई पड़ती थी, औरंगजेब भला इसे कैसे सह पाता, इसे तोड़वा कर मस्जिद निर्मित करा दी—यद्यपि ऊँची जातिके लोग तो डरके मारे कुछ नहीं बोले परन्तु कृषक वर्ग व हरिजनों का खून खौल उठा। उन्होंने पूरी शक्तिसे विद्रोह किया, अधिकांश मौतके घाट उतार दिये गये। सतनामी सन्तों की नृशंस हत्या कर दी गई। काशीके विश्वनाथ मन्दिरकी भाँति अनेक प्राचीन प्रसिद्ध मन्दिरोंके भग्नावशेष आज भी अपनी करुण गाथा सुना रहे हैं। सन् १६६० में उसने सुदूर दक्षिणके मन्दिरोंको तोड़ने का आदेश दिया। इन ध्वस्त मन्दिरोंकी सूची बनायी जाय तो एक छोटी-मोटी पुस्तक तैयार हो जाय।

अन्य धर्मावलम्बियोंके धार्मिक उत्सव, मेले, पर्व, त्यौहार गुनाह करार दे दिये गये, मन्दिरोंमें शंख-घण्टे बजने बन्द कर दिये गये। हिन्दुओंने बहुत गुहार पुकारकी, पर सब बेकार गई। शिवाजीने जजिया उठा लेनेके लिए पत्र लिखा, किन्तु औरंगजेब भला इसे क्यों छोड़ता।

आमेर सदासे मुगल साम्राज्य का सहायक रहा। इसी वफादारीके आधार पर वहाँके राजा जयसिंह उच्च मुगल सेनाध्यक्ष थे। औरंगजेबने वहाँके सभी मन्दिर ध्वस्त कराकर सिद्ध कर दिया कि मजहबी दीवानगीमें वह किसीकी वफादारी का लिहाज नहीं करता। पंजाबमें गुरु तेग बहादुर और गोविन्द

सिहके नेतृत्वमें सिक्खोंने इस अपमान व अत्याचारके विरुद्ध विद्रोह किया, जिसे सैन्य बलसे कुचल दिया गया। सन् १६७५में दिल्लीमें गुरु तेजबहादुर का सिर काट दिया गया। आज वहाँ पर शीशगंज गुरुद्वारा है। गुरुगोविन्द सिहके दो बेटोंको दीवारमें चुना दिया गया।

सन् १६८०में औरंगजेब अजमेर आया हुआ था। महाराज जयसिंह व दुर्गादास राठौरकी सलाहसे शाहजादा अकबरने स्वयंको बादशाह घोषित कर दिया। औरंगजेब ऐसे खेलोंका माहिर खेलाड़ी था। उसने शाहजादेके सेनापति तहव्वर खाँको लालच देकर अपने खेमेमें आमंत्रित किया और कत्ल कर दिया। यहाँ उसने एक और कमालकी चाल चली। अकबरके नाम एक पत्र लिखा—शाबश मेरे बेटे; राजपूतोंको खूब बेवकूफ बनाया, तुमने उनकी सारी साजिश नाकाम कर दी और सल्तनते मुगलियाको बहुत बड़े खतरेसे बचा लिया। ऐसी व्यवस्था भी कर दी कि पत्र शाहजादेको नहीं, दुर्गादासको मिले। चाल कारगर हुई। राजपूतोंने अकबरका साथ छोड़ दिया। निराश व दुखी शाहजादा मारवाड़की ओर चला गया। जब दुर्गादासको असलियतका पता चला तो बड़ा पछतावा हुआ, पर वक्त हाथसे निकल चुका था। अकबर किसी प्रकार सुदूर दक्षिणमें शम्भाजीकी शरणमें जा पहुँचा। औरंगजेबने उसके वली अहद, बड़ी बेटी और बेगमोंको किलेमें कैद कर दिया।

उत्तरसे निश्चिन्त होकर उसका ध्यान शिवाजी तथा मराठोंकी बढ़ती शक्तिकी ओर गया। अपने विश्वस्त सेनापति शाहस्ता खाँको बहुत बड़ी सेनाके साथ दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा। चार वर्ष तक लड़नेके पश्चात भी अन्तत: वह पराजित हुआ तो औरङ्गजेब बौखला उठा और अपने सर्वाधिक सुयोग्य सेनापति जयपुर नरेश जयसिंहको एक सुसज्जित सेनाके साथ शिवाजीको पकड़नेके लिए भेजा। यद्यपि जयसिंह उच्चतम सेनापति था परन्तु वह हिन्दू था इसलिए अपने विश्वासपात्र सिपहसालार दिलेर खाँको खबरदारी के लिए साथ लगा दिया। मराठे बड़ी बहादुरीसे लड़े, पर इतनी विशाल सेनाके आगे अधिक समय तक टिक न सके। धीरे-धीरे किले उनके हाथसे निकलते गये। पुरन्दरका प्रसिद्ध गढ़ भी उन्हें छोड़ना पड़ा।

हिन्दुत्वकी रक्षाके लिए भारतका केवल एक सपूत शिवाजी जानपर खेल रहा है, यह अनुभव कर जयसिंह हृदयसे उनका आदर करते थे। इसी कारण उन्होंने मई १६६५में पुरन्दरमें शिवाजीसे एक सम्मानपूर्ण सन्धि करली और उन्हें पुत्र शम्भाजीके साथ आगरा जाकर औरंगजेबसे भेंट करनेके लिए राजी कर लिया। अपने कुल-देवता गोविन्ददेवकी शपथ खाकर वहाँ उनके साथ प्रतिष्ठा पूर्ण व्यवहारके लिए जिम्मा लिया, इसके लिए स्पष्ट निर्देश देकर अपने पुत्र रामसिंहको साथ कर दिया।

औरंगजेबने शिवाजीको हर प्रकारसे अपमानित किया,

पिता-पुत्रको कैद कर लिया, किस प्रकार शिवाजी पुत्र सहित कैदसे निकल भागे, ये सारी बातें इतिहास प्रसिद्ध हैं।

महाराष्ट्र आनेके बाद शिवाजी दिखावेमें औरंगजेबसे मेल रखते हुए गुप्त रूपसे बड़ी सावधानीसे शक्ति अर्जित करने लगे। १६७०में शाही फौजों पर छापे भी मारने लगे। शाहजादा मुअज्जम सामना न कर सका। शिवाजीने अपने अनेक किले वापस जीत लिये और सूरतको दूसरी बार लूटा। आठ वर्ष तक युद्धमें बादशाहके अनेक अनुभवी सेनापति पराजित हुए तब उसने अपने सबसे बड़े दो सेनापति महाबत खाँ व दाऊद खाँको भेजा। कई बारकी हार-जीतके बाद आखिर छोटी-सी मराठी सेनाका टिकना कठिन हो गया। भूपाल गड़का किला उसके हाथसे निकल गया। इस युद्धमें हजारों मराठे वीरगतिको प्राप्त हुए। जो बचे, वे कैद कर लिये गये और उनके हाथ-पैर काट दिये गये। स्त्रियोंके साथ अमानुषिक अत्याचार किये गये।

१६८२ के बाद औरंगजेब प्रायः दक्षिणमें ही रहने लगा। गोलकुण्डाके सेनापतिको रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया और उस अजेय किलेको सर कर लिया। इसी प्रकार बीजापुरको भी वहाँके वजीरों व अधिकारियोंको घूस देकर मुगल साम्राज्यमें मिला लिया। इस तरह धीरे-धीरे सारे दक्षिणको अपने कब्जेमें कर लिया।

गोलकुण्डाका सुल्तान बाबू हसन निहायत नेक व अमन पसंद इन्सान था, हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाका आदर करता था। शाहजादा शाह आलमके दिलमें इसके प्रति हमदर्दी थी। इसी अपराधमें औरंगजेबने अपने इस शाहजादेको उसके चारों पुत्रों समेत बुलाकर कैद कर लिया और उसकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली।

सन १६८९में शम्भाजीको उसके २५ विश्वस्त साथियों सहित पकड़कर दिल्ली लाया गया, १५ दिन तक कठोर यंत्रणायें देकर मरवा दिया गया।

औरंगजेबका अत्याचार चरम सीमा पर था, पर मराठे वीर इससे हताश नहीं हुए, दुगुने उत्साहसे बद्ध परिकर हुए, वे संगठित होकर मुगल साम्राज्यके कस्बे व शहर लूटने लगे। ७५ वर्षके बूढ़े बीमार बादशाहकी कमर झुक गई थी। परिवारमें कलह, सन्तान अयोग्य, इसलिए इतनी बड़ी हुकूमतके बावजूद वह दुखी व परेशान रहता था। मराठा छापामारोंकी चोटोंसे सेनाके सिपाही, हाथी, घोड़े, ऊँट काफी संख्यामें मरने लगे। लगातार युद्धके कारण खजाना खाली हो गया, अफसर इस्लामके नाम पर जोर-जुल्म करते। हर ओर आह-कराहका आलम, अराजकता, विद्रोह—१५ वर्षोंमें हालत खस्ता हो गई। ९० वर्षके आलमगीरके अन्तिम दिन घोर विषाद पूर्ण रहे।

शाहजादे बुढ़ापेकी ओर कदम रख रहे थे, पर उनकी

ऐय्यशी जवानी पर थी। वे और उनके बेटे बादशाहतका ख्वाब देखते। पोते अपने पिता व पितामहकी तथा पुत्र अपने पिताकी मौतकी दुआ माँगते। हर ओरसे निराश बादशाहको सन् १७०६की फरवरीमें बेहोशीके दौरे आने लगे, १५ दिनकी बीमारीके बाद २० फरवरीको उसने सदाके लिए आँखे मूँद ली।

अन्तिम समयमे अपने दो पुत्रोंके नाम जो पत्र लिखे, उनसे उसके असीम मनस्तापका आभास मिलता है। ऐसा लगता है कि मनुष्य चाहे छल-कपटसे जीवनमें बड़ीसे बड़ी उपलब्धि प्राप्त कर ले, परन्तु अन्त समयमें उसके पाप सिर पर चढ़कर बोलते है।

औरंगाबादके निकट ही उसके गुरुकी कब्रके पास उसे दफनाया गया। सन् १९७१ में मुझे यह कब्र देखनेका अवसर मिला। देखते ही उसकी घोर नृशंसताके चित्र आँखोंके सामने आने जाने लगे। मनः स्थिति कुछ अजीब-सी हो गई, जान पड़ा जैसे कोई कानमें कह रहा है—न गया साथ तख्त, न ताज, न राज, यहाँ फ़क़त दो गज जमीनके अन्दर मिट्टीमें मिला पड़ा है। औरंगजेब—आलमगीर, आलमका नहीं, गुनाहोंका बादशाह।

शरणागत की रक्षा

राजस्थानका उत्तर-पूर्वी हिस्सा पंजाबसे मिला हुआ है। वहाँ पर देशके विभाजनके समय काफी संख्यामें मुसलमान परिवार थे। हिन्दू-मुसलमानोंमें आपसमें भाई-चारा था, एक-दूसरेके सुख-दुख, विवाह-शादी और त्यौहारमें बड़े जतन और प्रेमसे हिस्सा लेते थे।

हिन्दुओंकी होलीमें मुसलमान डफों पर धमाल गाते थे और मुसलमानोंके ताजियोंमें मर्सिये सुनकर हिन्दुओंकी आँखों में आँसू आ जाते थे। वे भी नये-नये कपड़े पहनकर ताजियोंके जुलूसमें शामिल होते थे, बच्चोंके रोग निवारणके लिए उन्हें ताजियोंके नीचेसे निकालते थे। मुझे याद है हमारे पड़ोसी मुसलमान बच्चे हमें यह कहकर चिढ़ाते थे कि देखो हमारे ताजियों पर कितना सुन्दर गोटा-किनारी लगा है जब कि तुम्हारे देवता हनुमानजीका मुँह बन्दर सा है और गणेशजीका हाथी सा। हम जब दादाजीसे उनकी शिकायत करते तो वे हमें भुलानेके लिए उन्हें झूठमूठ डाँट देते थे।

हमारे घरके पीछेकी तरफ घासी लीलगरका छोटा सा घर था। हम उन्हें बराबर घासी भैया कहकर पुकारते थे। वे सब भी दादीजीको भाँजी कहते। उनके यहाँ जँवाई आता तो

दादीजी दरी-गिद्दा तथा निवारके पलंग भेज देती। उस समय यद्यपि तनोंकी छूआछूत थी पर मनोंमे प्यार था।

सन १९४७के शुरूकी बात है, देश विभाजनकी चर्चाका अन्तिम चरण था। अंग्रेजी सरकारने भारत और पाकिस्तान दो अलग-अलग मुल्क बनाकर शासन सौंपनेका मसौदा बना लिया था।

पश्चिमी पंजाबसे बड़ी संख्यामें हिन्दू भागकर आ रहे थे तथा पूर्वी पजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेशसे मुसलमान लाहौर और सिंधकी तरफ जा रहे थे।

इसका कुछ असर राजस्थानके गाँवों-कस्बोंके वासिन्दो पर पड़ रहा था। कलकत्तेका भीषण दंगा हो चुका था। मुख्य मंत्री शुहरावर्दीकी सीधी कार्यवाही (डाइरेक्ट एक्शन) के कारण सैकड़ों हिन्दुओंका कत्लेआम हो चुका था, वे सब खबरें भी वहाँसे आये हुए लोग बढ़ा चढ़ाकर सुनाते रहते थे।

आखिर १५ अगस्त १९४७ को देशके दो टुकड़े हो गये। उसके थोड़े दिनों बाद पश्चिम पंजाब में बड़े पैमाने पर जिहाद हुआ। वहाँसे जो ट्रेनें अमृतसर-जालधर आती, उनमें सैंकड़ों घायल हिन्दू रहते। युवती स्त्रियोंको लाहौरमें जबरन उतार लिया जाता। ये सब समाचार अतिरंजित होकर दिल्ली, हरियाणा और राजस्थान तक फैले।

राजस्थान और पंजाबकी सीमा पर पाटण नामका एक

कस्वा है। उस समय वहाँकी जनसंख्या थी करीव १००००, जिनमें तीन चौथाई हिन्दू और एक चौथाई मुसलमान थे। मुसलमानोंमें अधिकांश गरीव थे, लखारे, रंगरेज, लोहार, कुंजरे तथा अन्य मजदूरी करने वाले। उनकी आजीविका हिन्दू महाजनों पर निर्भर थी।

पाकिस्तानी मुसलमानोंके अत्याचारोंसे पीड़ित कुछ हिन्दू शरणार्थी उस गाँवमें सिंध और पंजाबसे आये। उनके अधिकांश स्वजनोंको वहाँ मौतके घाट उतार दिया गया था—बाकी बचे हुए किसी प्रकार दीन-हीन दशामें पहुँचे। उनके मनमें प्रतिहिंसाकी ज्वाला धधक रही थी।

उनमेंसे किसी युवकने एक मुसलमान लड़कीका जबरन शील भंग कर दिया। इस प्रकारकी घटना राजस्थानके गाँवोंके लिए नयी थी। गाँवकी बहिन-बेटीको धनवान और गरीब सब बहिन-बेटी समझते थे।

लड़कीके घर वालोंने पंचोंके सामने गुहारकी। युवक और उसके सम्बन्धी जोश और क्रोधमें थे। उनका कहना था कि उनकी बहिन-बेटियोंके साथ पाकिस्तानी गुण्डोंने इससे भी कहीं अधिक अत्याचार किये है। उनकी छातियें काट डालीं, उन्हें नंगा करके जुलूसमें घुमाया गया आदि।

लड़कीके भाइयोंने मौका देखकर सिंधी युवकको घायल कर दिया। सारे गाँवमें खबर फैल गयी कि वह मर गया है।

शरणार्थी और गाँवके कुछ हिन्दू युवक उसके घरके सामने इकट्ठे होने लगे। वहाँसे एक बड़ा जुलूस बनाकर वे सब मुसलमानी मोहल्लोंकी तरफ गये। रास्तेमें उनके घर और दूकानें जला दी गयी। छिट-पुट खून खराबीकी घटनाये भी होने लगीं।

सेठ श्यामलाल वहाँके प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। गाँवमें उनकी बनायी धर्मशाला, कुएँ और रघुनाथजीका मन्दिर था। उनके घरके पीछेकी तरफ रहीमा नामके एक मुसलमान रंगरेजका घर था। रहीमाकी माँ, पत्नी और तीन-चार छोटे बहिन-भाई थे। दंगाइयोंकी उसके घरकी तरफ बढ़नेकी खबरें आ रही थीं। पत्नीके चार-पाँच दिनों पहले ही बच्चा हुआ था, वह सौरीमें थी। प्रत्यक्ष मृत्युको सामने आयी देखकर घरके लोग भयसे काँप रहे थे। रहीमाकी बहू गोदमें नन्हें बच्चेको लेकर श्यामलालजीकी माँजीके पास आयी और उनके पैर पकड़ कर रोती हुई कहने लगी। "माँजी हम सब दो पीढ़ियोंसे आपके पास रहते है, आपका दिया ही खाते है। अब हम इन बच्चों और बूढ़े स्वसुर को लेकर कहाँ जायँ। आपकी शरणमें आ गये है, मारो चाहे उबारो।"

पीछेके दरवाजेसे रहीमाके घरवालोंको सेठजीके घरमें लाकर नीचेके तल घरमें छिपा दिया गया।

यद्यपि दंगाइयोंको शक तो हो गया था, परन्तु लालाजीके ना कहने पर घरमें आकर खोज करनेकी हिम्मत नहीं हुई।

चार-पाँच दिनों तक दंगेका जोर रहा। वैसे माँजी परम

वैष्णव थीं, परन्तु उन सबके रहने-खानेकी व्यवस्था अपने घरमें ही की। उस समय अछूत और मुसलमानोंसे छूआछूत बरती जाती थी, परन्तु संकटके समय यह सब बातें भुला दी गयीं।

दंगा शान्त होने पर उन्हें एक रातमें अपने विश्वस्त आदमियों और सवारियोंके साथ पासके पुलिस थानेमें पहुंचा दिया गया। वहाँसे वे शायद किसी प्रकार पाकिस्तान पहुंच गये।

यह खबर जब गाँवके लोगोंको मिली तो उनमेंसे बहुतसे श्यामलालजीसे नाराज हुए, बुरा-भला भी कहने लगे। परन्तु उन सबका उलाहना सुनकर उनका एक ही जवाब था कि जो कुछ मैंने किया माँजीकी आज्ञासे किया है। उनकी यह मान्यता है कि एकके कसूरसे दूसरोंको दण्ड क्यों दिया जाय। अगर पाकिस्तानी गुण्डोंने हिन्दुओं पर जुल्म किये तो उसके लिए गरीब रहीमाके अबोध बच्चोंकी हत्या करनेसे क्या उसका बदला चुक जायगा?

इस गाँवमें १९५६में एक बार जाने का मुझे मौका मिला। मुसलमानोंके घर या तो टूटे-फूटे और उजाड़ पड़े थे या शरणार्थियों द्वारा दखल कर लिये गये थे। वहीं मैंने रहीमाकी कहानी सुनी थी।

संयोगकी बात कि १९६४में विश्वयात्रा करता हुआ मैं पाकिस्तानसे कराँची पहुँचा। वहाँके रिजर्व बैंकके दफ्तरमें गया हुआ था। मैंने देखा एक बूढ़ा मुसलमान मेरेसे बात करना चाहता है। एक कोनेमें ले जाकर धीरेसे सहमते हुए

में एक सम्पन्न स्वजातीय घराने मे हो गयी थी। अब
विवाह के योग्य हो गया। लड़की वाले उनकी नाजुक हा
को जान चुके थे परन्तु उन दिनों बिना पर्याप्त कारणों
सम्बन्ध नही छोड़े जाते थे। कभी-कभी तो सम्बन्ध टूट ज
पर वरपक्ष के लोग अपने भाई-बन्धु और मित्रों के साथ हा
यारों से सुसज्जित होकर बारात ले जाते और युद्ध में ज
करके बहू को ले आते।

कन्या पक्ष वालों ने सुपारियो की एक कोथली नारन
भेजी और लिखा कि विवाह का लगन फाल्गुन में है। आ
और हमारे घराने की इज्जत का ध्यान रखते हुए आप कम
कम इन सुपारियों की जितनी संख्या के बराबर प्रतिष्ठि
बाराती अवश्य लावें। हमारे यहा हमेशा वर हाथी के हौदे
ढूकता है इसलिए कम से कम दो-एक हाथी भी बारात में रह
जरूरी है।

सेठानी बहुत समझदार महिला थी, वह उनलोगों
चालाकी समझ गयी। सैकड़ो व्यक्तियों की बारात के लि
उसी अनुपात में रथ, घोड़े और ऊँट चाहिए। आने-जाने
समय उन सबके लिए भोजन और पशुओं के लिए दाना-च
वह सब अब उनके बस की बात नहीं थी। परिवार के स्व
और मित्रों ... परन्तु कोई उपाय नजर न

जाते हुए टोडरमल उनके यहाँ ठहरे। उन दिनों उत्तर भारत में पर्दाप्रथा का कड़ाई से पालन किया जाता था, परन्तु सेठानी उनकी मुँहबोली बहिन थी इसलिए उनसे बोलती और पर्दा नहीं करती थी। टोडरमल ने महसूस किया कि बहिन बहुत उदास है। कारण पूछने पर वह कुछ बोल नहीं पायी और सुबक-सुबक कर रोने लगी। थोड़ी देर में जब आश्वस्त हुई तब बताया कि लड़की वाले बहुत धनाढ्य हैं, वे अब सम्बन्ध तोड़ना चाहते है।

सीधे तौर पर कहने से इन्हें अपनी बदनामी का डर है इसलिए ऐसी शर्तें रख रहे हैं—जिससे हमलोग स्वयं सगाई तोड़ दें। आज हमारी ऐसी दयनीय दशा हो गयी है कि हमें अपनी माँग (वागदत्ता) को छोड़ना पड़ रहा है।

सारी बातें सुनकर टोडरमल ने कहा कि आप चिन्ता मत करिये—जो कुछ जवाब देना होगा, मैं आपकी तरफ से भिजवा दूँगा। कुछ दिनो बाद कन्या पक्ष वालों के यहाँ मूंगों से भरी हुई एक कोथली लिए कासिद पहुँचा। पत्र मे यथायोग्य के बाद लिखा था कि विवाह की तिथि हमें मंजूर है, परन्तु आपकी और हमारी इज्जत का ख्याल करके हम इतने बाराती लाना चाहते हैं, जितने मूग इस कोथली में हैं। स्वर्गीय सेठजी का जयपुर से लेकर आगरा तक बहुत लोगों से स्नेह सम्पर्क था, भला इकलौते पुत्र के विवाहोत्सव पर उन सबको हम कैसे भूल सकते हैं ? आप खातिर जमा रखें, बारात में बड़े से बड़े लोग

में एक सम्पन्न स्वजातीय घराने मे हो गयी थी। अब वह विवाह के योग्य हो गया। लड़की वाले उनकी नाजुक हालत को जान चुके थे परन्तु उन दिनों बिना पर्याप्त कारणों के सम्बन्ध नही छोड़े जाते थे। कभी-कभी तो सम्बन्ध टूट जाने पर वरपक्ष के लोग अपने भाई-बन्धु और मित्रों के साथ हथियारों से सुसज्जित होकर बारात ले जाते और युद्ध में जीत करके बहू को ले आते।

कन्या पक्ष वालों ने सुपारियो की एक कोथली नारनौल भेजी और लिखा कि विवाह का लगन फाल्गुन में है। आपके और हमारे घराने की इज्जत का ध्यान रखते हुए आप कम से कम इन सुपारियों की जितनी संख्या के बराबर प्रतिष्ठित बाराती अवश्य लावें। हमारे यहा हमेशा वर हाथी के हौदे पर ढूकता है इसलिए कम से कम दो-एक हाथी भी बारात में रहना जरूरी हैं।

सेठानी बहुत समझदार महिला थी, वह उनलोगों की चालाकी समझ गयी। सैकड़ो व्यक्तियों की बारात के लिए उसी अनुपात मे रथ, घोड़े और ऊँट चाहिए। आने-जाने के समय उन सबके लिए भोजन और पशुओं के लिए दाना-चारा वह सब अब उनके बस की बात नहीं थी। परिवार के स्वजन और मित्रों से सलाह की, परन्तु कोई उपाय नजर नहीं आया।

पिछले कई दिनों से इसी चिन्ता में थीं कि अचानक पंजाब

जाते हुए टोडरमल उनके यहाँ ठहरे। उन दिनों उत्तर भारत में पर्दाप्रथा का कड़ाई से पालन किया जाता था, परन्तु सेठानी उनकी मुँहबोली बहिन थी इसलिए उनसे बोलती और पर्दा नहीं करती थी। टोडरमल ने महसूस किया कि बहिन बहुत उदास है। कारण पूछने पर वह कुछ बोल नहीं पायी और सुबक-सुबक कर रोने लगी। थोड़ी देर में जब आश्वस्त हुई तब बताया कि लड़की वाले बहुत धनाढ्य है, वे अब सम्बन्ध तोड़ना चाहते है।

सीधे तौर पर कहने से उन्हें अपनी बदनामी का डर है इसलिए ऐसी शर्तें रख रहे हैं—जिससे हमलोग स्वयं सगाई तोड़ दें। आज हमारी ऐसी दयनीय दशा हो गयी है कि हमें अपनी माँग (वागदत्ता) को छोड़ना पड़ रहा है।

सारी बातें सुनकर टोडरमल ने कहा कि आप चिन्ता मत करिये—जो कुछ जवाब देना होगा, मैं आपकी तरफ से भिजवा दूँगा। कुछ दिनों बाद कन्या पक्ष वालों के यहाँ मूंगों से भरी हुई एक कोथली लिए कासिद पहुँचा। पत्र में यथायोग्य के बाद लिखा था कि विवाह की तिथि हमें मंजूर है, परन्तु आपकी और हमारी इज्जत का ख्याल करके हम इतने बाराती लाना चाहते हैं, जितने मूंग इस कोथली में हैं। स्वर्गीय सेठजी का जयपुर से लेकर आगरा तक बहुत लोगों से स्नेह सम्पर्क था, भला इकलौते पुत्र के विवाहोत्सव पर उन सबको हम कैसे भूल सकते हैं? आप खातिर जमा रखें, बारात मे बड़े से बड़े लोग

आयेंगे। हम लोग बारात लेकर फलॉ दिन पहुँच रहे हैं, आप सारी तैयारी रखियेगा।

पत्र पढ़कर उन लोगों ने मूँग गिने, जिनकी संख्या करीब २ हजार थी। वे मन ही मन हँस रहे थे कि अधिक दुख से सेठानी शायद विक्षिप्त हो गयी है। इतने बारातियों के लिए जितने हाथी, घोड़े, ऊँट और रथ चाहिए—उन सबकी व्यवस्था तो शायद नगर सेठ भी नहीं कर सकते। रास्ते में इन सबके खाने पीने और आरामके लिए भी लाखों रुपये चाहिये। खैर, उन्होंने कासिद के साथ उत्तर दे दिया कि हमें आपकी बात मंजूर है। बारातियों की खातिर-तव्वजह के लिए आप बेफिक्र रहें। हम शुभ दिन की प्रतीक्षा में है।

इधर, टोडरमल ने आगरा आकर अपने मित्रो और साथियों से सलाह की। बादशाह से भी अर्ज की कि हुजूर मेरे भानजे की बारात जायगी, इसलिए शाही दरबार से पचास हाथी, पाँच सौ घोड़े और एक हजार रथ और ऊँट चाहिए। उस मौके पर शाही बाजे और तोपे भी बारात के साथ जाने की इजाजत बख्शी जाये।

बडे-बड़े राजे-रईस, सरदार और आला अफसरों को बारात के लिए न्यौता दिया गया। रास्ते में भोजन वगैरह की व्यवस्था के लिए पहले से ही सैकड़ों आदमी सरंजाम के लिए भेज दिये गये। नारनौल पहुँचकर राजा टोडरमल ने लाखों रुपयों का भात भरा। बहिन (वर की माता) के लिए मोतियों

जड़ी चुनरी और वर वधू के लिए कीमती गहनों कपड़ों का अम्बार लगा दिया। वर पक्ष के लोगों के लिए यथायोग्य भेंट और सिरोपाव।

सारे कस्बे में चर्चा फैल गयी कि नरसी मेहता के मुनीम सॉवरिया सेठ जैसा भात सेठजी के यहाँ आया है।

नारनौल से जो बारात रवाना हुई, वैसी इसके पहले देखी सुनी नहीं गयी थी, घोड़े, रथ, ऊँट, पालकी और सुखपालों की लम्बी कतार मीलों तक जा रही थी। करीब दो हजार तो बाराती थे और उनके साथ एक हजार नौकर, सईस, महावत और रसोइये आदि। इनके सिवाय बाजे वाले, गाने वाले और नर्तकियों की भी एक बड़ी तादाद थी।

कन्या पक्ष वालों ने जब सुना बारात में जयपुर महाराज मानसिंह, अर्थमन्त्री टोडरमल, खानखाना (प्रधानमन्त्री) अब्दुल रहीम और राजा बीरबल आदि देश के बड़े से बड़े लोग आ रहे हैं। साथ में हाथी, घोड़े, रथ और ऊँटों का एक बड़ा काफिला है तो वे घबरा गये—यद्यपि वे नगर सेठ थे, करोड़पति थे, परन्तु फिर भी इतनी बड़ी बारात की व्यवस्था करनी उनके वश की बात नहीं थी।

अगवानी के लिए कन्या का पिता कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को साथ लेकर गया। टोडरमल के पैरों में पगड़ी रखकर कहने लगा कि हमने अपनी तरफ से बहुत भूल की, जो बहाना बनाकर सम्बन्ध तोड़ना चाहते थे. परन्तु अब हमारी

हाथ है। इतनी बड़ी बारात ठहराने का न तो हमारे गाँवमें स्थान है और न हम इन सबके लिए भोजन और चारे-पानी की व्यवस्था ही कर सकते हैं। सैकड़ों वर्षों से हमारे परिवार को नगर-सेठ की पदवी है, आपकी दया से आस-पास के गाँवों में इज्जत भी है। परन्तु, जहाँ हमारे अनेक स्वजन मित्र हैं, वहाँ इर्ष्यालु दुश्मनोंकी संख्या भी कम नहीं है। उन्हें हमारी बेइज्जती से जग हँसाई करने का मौका मिल जायगा। कन्यादान मेरे परिवार का भाई कर देगा। मैं जिल्लत और बेइज्जती देखनेके पहले गाँव छोड़ कर सदा के लिए चला जाना चाहता हूँ।

राजा टोडरमल ने उसे उठाकर गले से लगाते हुए कहा—"जो कुछ हुआ उसे भूल जाइये, अब तो आप हमारे सम्बन्धी हैं। आपकी मान बड़ाई में ही हमारी शोभा है। आप चिन्ता न करें, किसी को भी पता नहीं चलेगा। सारी व्यवस्था हम-लोगों की तरफ से है। आप केवल ढुकाव के समय शर्बत-पान से बारातियों की अच्छी तरह खातिरदारी कर दीजियेगा।"

बारात की सजावट और आतिशबाजी देखने के लिए आस पास के गाँवों से हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे आये थे। उन सबके लिए यह एक अभूतपूर्व दृश्य था। मोतियों की झूल पहने हाथी और घोड़े झूम रहे थे। चार-पाँच तरह के शाही बाजे थे। आगरा की प्रसिद्ध नर्तकियों का नाच-गाना हो रहा था और तरह-तरह की आतिशबाजियों की रोशनी से आसमान

चमक रहा था। सारे विवाह कार्य आनन्द पूर्वक समाप्त हुए। वधू को विदा कराकर जब वे नारनौल पहुँचे और द्वाराचार हुआ तो वर पक्ष की महिलाओं ने जो गीत गाया वह था—

"अँतो जीत्याजी, जीत्या म्हारा टोडरमल वीर,
केसरियो वनड़ी जीत्यो म्हारे वीरँजी के पाण।"

आज उस बात को ४०० वर्ष हो गये, परन्तु अभी तक वहू की अगवानी के समय राजस्थान में उस उदारमना भाई टोडरमल की पुण्य स्मृति मे यही गीत गाया जाता है।

सम्बन्ध बराबरी का

महाभारत में कथा है कि एक दिन बालक अश्वत्थामा दूध के लिये मचल गया। उन दिनों दूध बहुत सस्ता था, किन्तु गरीब माँ के लिये वह भी सम्भव न था। आँसू भरी आँखों से आटे का घोल पिलाकर बहलाने का प्रयत्न किया किन्तु उसे चुप न करा सकी।

द्रोणाचार्य घर लौटे। देखा, बालक रो रहा है। कारण का पता चला तो स्तब्ध रह गये। अपने ऊपर ग्लानि हुई। दारिद्र्य से मुक्ति के लिये वे आकुल हो उठे।

सहपाठी मित्र महाराज द्रुपद के यहाँ पहुँचे। उन्हें गुरुकुल की बातें याद दिलायी। द्रुपद ने कहा, ब्राह्मण! चाहो तो कुछ भिक्षा मिल सकती है। बचपन के किसी समय के परिचय को मित्रता का रूप देकर मेरी भावुकता को उभारने का प्रयत्न मत करो। सम्बन्ध और मैत्री तो बराबरी की होती है।

अपमानित द्रोण के मन में बात चुभ गयी। उन्होंने उसी क्षण एक निर्णय लिया और वहीं से सीधे हस्तिनापुर चले गये। धनुर्विद्या के अप्रतिम आचार्य थे ही। कौरव और पाण्डव कुमारों को शिक्षा देने के लिये राज्य ने उन्हें आदरपूर्वक नियुक्त कर दिया। द्रोण ने कठोर परिश्रम एवं लगन से कुमारों को

अस्त्र-शस्त्र संचालन में थोडे ही समय में निष्णात कर दिया। अर्जुन, भीम और दुर्योधन जैसे अपने पराक्रमी शिष्यों को देख कर गद्गद हो उठते।

शिक्षा पूरी हुई। दीक्षान्त के अवसर पर जब गुरुदक्षिणा के लिये आचार्य से आग्रह किया गया तो उन्होंने द्रुपद पर चढ़ाई करने की दक्षिणा माँगी।

कुमारों ने सहर्ष स्वीकार किया। कौरव सेना के प्रचण्ड आक्रमण और रण-कौशल के सामने द्रुपद टिक न सका। बन्दी बनाकर शिष्यों ने उसे आचार्य के समक्ष प्रस्तुत किया।

"कहो राजन! अब तो मित्रता हो सकती है?" द्रोणाचार्य ने पूछा। खैर, द्रुपद लज्जित थे। क्या जबाब देते? यह बात द्वापर के अन्तिम चरण की है। इन दिनों की एक सच्ची घटना इस सन्दर्भ में याद आ जाती है।

भिवानी के एक गरीब वैश्य का पुत्र किसी सम्पन्न परिवार में दत्तक के रूप में कलकत्ता आया। बहुत वर्षों बाद उसके पिता-माता की इच्छा हुई कि जगन्नाथपुरी की यात्रा की जाय और इसी अवसर पर अपने पुत्र-पौत्रों को भी देख ले।

थके-हारे एक दिन कलकत्ता पहुँचे। पत्नी को दूसरे सहयात्रियों के साथ धर्मशाला में ठहरा कर स्वयं पुत्र से मिलने के लिये वृद्ध पिता उसकी कोठी पर गया। पुत्र अपनी गद्दी पर बैठा था। उसकी खुशहाली और वैभव देखकर पिता का हृदय गद्गद हो उठा।

मैले कपड़े, ऊँची धोती, और बढ़ी दाढ़ी, सकुचाते हुए गद्दी के एक तरफ बैठ गया। मित्रों के साथ पुत्र गप-शप करता रहा। न तो उठकर पाँव छुए और न राजी खुशी के समाचार पूछे। किसी एक मित्र के पूछने पर बताया कि हमारे गाँव के जान-पहचान के हैं।

वृद्ध निर्धन था किन्तु आत्माभिमान के धन से वंचित नहीं। उसके मनमें वैभवके मदमें चूर पुत्रकी बात चुभ गयी। राजस्थान की हवा में पला था, अपमान नहीं सहा गया। कह बैठा, "सेठजीके देश का तो मैं जान-पहचान का व्यक्ति हूँ परन्तु इनको जन्म देने वालीका पति हूँ। ये धनवान और हम गरीब, इसलिये इनका हमारा सम्बन्ध हो कैसा? गलती हुई जो यहाँ चला आया। अच्छा हुआ जो इसकी माँ को ये बातें नहीं सुननी पड़ी, उसे धर्मशाला में ही छोड़ आया।"

ऐसी अप्रत्याशित और अप्रिय घटना के बाद बैठक जम नहीं पायी। धीरे-धीरे मित्र खिसक गये। वृद्ध तो पहले ही जा चुका था।

कलकत्ते आने के बाद युवक सेठ ने जन्म देने वाले पिता-माता की कभी खोज-खबर न ली। उसमें गुमान आ गया था। परन्तु मुनीम गुमाश्तों के सामने हुई इस घटना के कारण वह बहुत झेंप गया। घोड़ा गाड़ी में पत्नी को साथ लेकर शाम को धर्मशाला में पहुँचा। पिता-माता तब तक पुरी के लिये रवाना हो चुके थे।

कहते हैं, भाग्य गिरत-फिरत की छाया है। कुछ वर्षों में उसके सगे छोटे-भाइयों ने बहुत धन कमा लिया जब कि व्यापार में घाटा होने के कारण उसकी अपनी सम्पत्ति समाप्त हो गयी। गरीबी की बात जब देश पहुँची तो माँ का दिल नहीं माना। जिद्द करके वृद्ध पति के साथ कलकत्ते के लिये रवाना हो गयी। उस समय तक उसके अपने पुत्रों का यहाँ मकान हो गया था और कारोबार भी बढ़ता जा रहा था।

खबर मिलने पर पत्नी और बच्चों सहित सकुचाता हुआ बड़ा पुत्र मिलने आया। माँ-बाप के पैरों पर गिर पड़ा और बहुत वर्षों पहले किये गये अपने दुर्व्यवहार के लिये क्षमा माँगने लगा।

"अब तो तुमने मुझे पहचान लिया होगा?" कहते हुए पिता मुँह फेर कर बैठ गया।

वृद्ध माता एकटक देख रही थी, अपने बड़े बेटे और बच्चों को। बीस वर्ष पहले बारह वर्ष के बालक को उसके सुख की कामना से अपने सीने से पृथक किया था। पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाये माता कुमाता नही होती। उसने बेटे को खींच कर छाती से लगा लिया और भरे गले से कहने लगी—"भगवान का दिया तुम्हारे भाइयों के पास बहुत है। मूँग-मोंठ में कौन बड़ा कौन छोटा? चारों मिलकर कारोबार सम्हालो।"

उसकी आँखे गीली हो आयी थीं, दोनों पौत्रों को गोद में उठा कर जल्दी से कमरे के बाहर हो गयी।

चोंच दी, वह चुगा भी देगा

उन्नीसवीं शताब्दीकी बात है। राजस्थानके किसी शहरमें एक करोड़पति सेठ था। सब तरहसे भरा पूरा परिवार सुन्दरी पतिपरायणा पत्नी और दो आज्ञाकारी स्वस्थ पुत्र। व्यापारके लाभ और ब्याजसे प्रतिवर्ष सम्पत्ति बढ़ती रहती। आडम्बर-शून्य जीवनचर्या थी, खर्चमें वह बहुत मितव्ययी था। सालके अन्तमें आय-व्ययका मिलान करता और देख लेता कि पिछले वर्षकी अपेक्षा कितनी बढ़ोत्तरी हुई, व्यय कितना रहा।

एक दिन, शहरमें एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् महात्मा आये। सेठने उनकी प्रसिद्धिकी बात सुन रखी थी। आदर-सत्कारके साथ अपने घर लिवा लाया। सेवासे उन्हें प्रसन्न कर दिया। महात्माजी ने जन्म-पत्री देखी। उन्होंने बताया, बृहस्पति उच्च है. सब प्रकारके सुखोंमें जीवन व्यतीत होगा, यश भी भाग्यमें है। आप साधु-महात्माओं और दीन-दुखियोंको प्रतिदिन अन्न भेंट किया करें, इससे आपके वंशमें पाँच पीढ़ी तक धन, वैभव और यश अक्षुण्ण रहेगा।

महात्माजी यह सब बताकर चले गये। सेठ उनके कहे अनुसार दूसरे दिनसे अन्न वितरण करने लगा। परन्तु उसके मनमें एक चिन्ता रहने लगी "मेरी छठी पीढ़ी कैसे रहेगी?

उनका क्या हाल होगा ? उनके लिये क्या किया जाय ?"
इत्यादि।

सेठानी और मुनीम-गुमाश्तों ने वहुतेरा समझायाकि छठी पीढ़ीकी अभीसे क्या चिन्ता है ? इतनी सम्पत्ति है, जमा हुआ कारवार, पाँच पीढ़ी तक तो चलेगा ही, आगे भी कोई न कोई उनमें समर्थ होगा जो सम्भाल लेगा। मगर सेठजीका मन मानता नही, वे चिन्तामें दुवले होते गये, कुछ वीमार भी रहने लगे।

एक दिन अन्न वितरणके लिये अपनी कोठीकी ड्योढ़ी पर वैठे थे कि एक गरीव ब्राह्मण भगवत-भजन करते हुए सामनेसे गुजरा, सेठने कहाकि महाराज, अन्न की भेंट लेते जाइये। उसने विनम्रता से उत्तर दिया, "सेठजी इस समयके लिये मुझे पर्याप्त अन्नकी प्राप्ति हो गयी, सायंकालके लिये भी संभवतः किसी दाता ने घर पर सीधा भेज दिया होगा। न होगा तो मैं पूछ कर वता दूँगा।"

कुछ देर वाद ब्राह्मण वापस आया। उसने वतायाकि घर पर भी कहींसे सीधा आ गया है, इसलिये आजके लिये अव और नहीं चाहिये।

सेठजी कुछ चकितसे रह गये। कहने लगे, "महाराज, आप जैसे सात्विक ब्राह्मणकी कुछ सेवा मुझसे हो जाये। कमसे कम एक छाज (एक तौल) अन्न अपने आदमियोंसे पहुँचवा देता हूँ,

वहुत दिनों तक काम चल जायगा।”

ब्राह्मण ने सरल भावनासे कहा, “दयानिधान, शास्त्रोंमें लिखा है, परिग्रह पापका मूल है, विशेषतः हम ब्राह्मणोंके लिये। आप किसी और जरूरतमन्दको यह अन्न देनेकी कृपा करें। दयालु प्रभुने हमारे लिये आजकी व्यवस्था कर दी है। कलके लिये फिर अपने आप ही भेज देगा। जिसने चोंच दी है, वह चुगा भी देगा।”

सेठजी उस गरीब ब्राह्मणकी वात सुन रहे थे। मन ही मन विस्मित भी थे, “इसे तो कलकी भी चिन्ता नहीं, जो आसानीसे मिल रहा है, उसे भी लेना नहीं चाहता। एक मैं हूँ जो छठी पीढ़ीकी चिन्तामें घुला जा रहा हूँ।”

दूसरे दिनसे वे स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई देने लगे। दान-धर्मकी मात्रा भी वढ़ गयी। उनके चेहरे पर शान्तिकी आभा विराजने लगी।

जिस देश में जमुना बहती है ।

पिछले दिनों दिल्लीके संसद भवनके सेन्ट्रल हालमें गया। मेरे मित्र श्री भोला रावत, एस०पी० ने कहाकि आइये आपको एक पुराने मित्रसे मिलायें। मैंने चारों ओर नजर घुमाई किन्तु जान-पहचानका कोई भी दिखाई न पड़ा। पासकी बेंचपर गेरुआ वस्त्रधारी एक बाबाजी बैठे थे। भोला बाबूने हँसते हुए कहा, "पहचाना नहीं? ये है श्री महेन्द्रकुमार सिंह, आपके साथ १९६२ तक संसद सदस्य रह चुके हैं!" फिर तो उस दाढ़ी मूँछोंवाले हँसते चेहरेमें दस वर्ष पहलेके महेन्द्र बाबू मुझे दिखाई दिये।

१९६२ के पहले ही उनके मनमे वैराग्य जगा था। आगेके संसदीय चुनावमें खड़े नहीं हुए। अपना भरा-पूरा परिवार और सम्पत्ति त्यागकर संन्यास ले लिया। पिछले दस वर्षोंसे भारतके प्रायः सभी तीर्थों और पहाड़ोंकी यात्रा कर चुके हैं। मैंने पूछा कि क्या आपको किसी प्रकारकी असुविधा का अनुभव नहीं होता? सीधा सा उत्तर मिला, "वैसे तो सन्यासीको सुख-सुविधा, मान-अपमानका ध्यान नहीं रहना चाहिये। गंगा जमुनाका पवित्र देश है हमारा, इसके हर गाँव और खेड़ेमें श्रद्धालु माँ-बहनें मिल जाती है, इसलिये जानी-अन-

जानी, किसी भी जगह जाता हूँ दो रोटी और रहनेका स्थान मिल ही जाता है, कभी-कभी तो दूध, दही और सब्जी भी। हाँ, रेलमें विना टिकट नहीं चलता वैसे तीसरे दरजेमें सफर करता हूँ फिर भी इसके लिए पैसेकी जरुरत तो पड़ती ही है। यदि सरलतासे व्यवस्था न हो तो पैदल ही यात्रा कर लेता हूँ।"

थोड़ी ही देरमें उन्हें बहुतसे परिचित मित्रोंने घेर लिया। एकने पूछा कि महाराज, आप तो बहुत आराम और मौज-शौकसे रहते थे, इस प्रकारके जीवनसे आपको कष्ट नहीं होता?' उत्तर मिला, "इस नये मोड़से वास्तवमें मुझे सुख और शान्ति मिली है, जिसका शतांश भी इससे पहले जमींदारी और राज-नीतिक जीवनमें नहीं मिल पाया।"

दूसरे मित्रने प्रश्न किया, "क्या आप अपने परिवारमें कभी जाते है?" उन्होंने कहा, "हाँ, कभी कदास् जैसे दूसरे घरोमें ठहरता हूँ उसी तरह एक दो दिनके लिये वहाँ भी ठहर जाता हूँ।"

महेन्द्र बाबूसे हम हमेशा राजनीतिक बहस और हँसी-दिल्लगी किया करते थे। परन्तु मैंने देखा अब उनके प्रति सबके मनमें श्रद्धा है, एक दो की आँखें तो गीली भी हो आयीं।

उसी रात मुझे जयपुर जाना था। ऊपरकी बर्थ मिली थी। सदाकी भाँति भगवे रंग का खादीका कुर्त्ता पहने था। रफ़-

चापके उपचारके लिये मेरे मित्र श्री रामाश्रय दीक्षित द्वारा दी हुई रुद्राक्षकी माला गलेमें थी जो संयोगसे बाहर दिखायी दे रही थी। कंडक्टर गार्ड टिकट चेक करता हुआ मेरे पास आया। बड़ी श्रद्धासे मेरी ओर देखा और किसी तरह नीचेवाली वर्थकी व्यवस्था मेरे लिये कर दी। मैंने सोचा, गार्ड मेरे वेशसे प्रभावित हुआ, क्यों न इस यात्रामें महेन्द्रजीका नुस्खा आजमाया जाय।

जयपुरका काम थोड़ी देरमें निपटा कर ढाई वजे वाली वससे आगराके लिये रवाना हुआ। वस कंडक्टरने कहा, "बाबाजी, रास्तेमें मेहदीपुरके हनुमानजी का मन्दिर पड़ता है। दर्शन जरूर कीजिए, तुरन्त परचा देते हे।" इस स्थान का नाम वहुत दिनोंसे सुन रखा था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते शाम के पाँच वज गये। मैं उतर पड़ा। मुख्य सड़कसे मन्दिर दो मील भीतरकी ओर है। ताँगा लेकर वहाँ छः वजे पहुँचा। हलवाइयों, मोदियोंकी छोटी-छोटी दुकानें, दो चार धर्मशालाएँ और एक वेडौलसा मन्दिर, यह था मेंहदीपुर। भीतर जाकर देखा, ढोलक पर कीर्तन हो रहा है और तीन-चार औरतें उसकी ताल पर सर धुन रही हैं, कभी-कभी चिल्ला उठती हैं। मन्दिरके सम्वन्धमे यह वात कही जाती है कि वालाजीके प्रभावसे प्रेतबाधा मिट जाती है। खैर मैं इस विवादमें पड़ना नहीं चाहता कि वास्तवमें वे प्रेत-पीड़ित थीं या दर्शनार्थियोंको प्रभावित करनेके लिये पुजारियों द्वारा नियुक्त।

गरमी, सड़ाँध और दुकानों की मक्खियोंसे ऊब उठा और वापस मुख्य सड़क पर आ गया। सात बज रहे थे। घंटे भर खड़ा रहा परन्तु आगरा जाने वाली कोई बस नहीं आयी। पता चला, अब कोई बस मिलेगी नहीं। लाचार, सड़कके किनारे सामान रखकर पासके कूँएकी जगत पर बैठ गया। आठ बज गये, अंधेरा हो आया। सोचने लगा, शायद वापस मेंहदीपुर जाकर किसी धर्मशालामें ठहरना पड़ेगा। इतने हीमें दूरसे आती रोशनी दिखाई पड़ी। कुछ देर बाद देखा, एक ट्रक आ रही है। पास आने पर हाथ दिखाकर उसे रोका। ड्राइवर ने पूछा, "कहाँ जाना है बाबाजी?" मैंने कहा, "आगरा।" इससे आगे कुछ और कह पाऊँ कि उसने बड़े रोबसे अपने खलासी को मेरा सामान ट्रक पर चढ़ानेके लिये कहा। जबतक वह नीचे उतरे, आसपास खड़े भक्तोंने मेरा सामान उसे पकड़ा दिया। ड्राइवरने ट्रक की छतकी ओर इशारा करते हुए कहा, "आप ऊपर आसन लें, कोई कष्ट न होगा उसकी आवाजमें स्नेह, श्रद्धा और विनय पाकर मैं कुछ कह न सका। लोहेकी सीढ़ियों के सहारे छत पर चढ़ गया। खलासीने सोनेके लिये अपना एक पुराना सा गद्दा बिछा दिया। मैं उस पर लेट गया।

ट्रक चौड़ी सड़कके दोनों ओरके ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंकी झुकी डालियोंके नीचेसे चली जा रही थी। ऊपर खुला आसमान, झिलमिलाते तारे। खलासी नयी उमरका था, फुर्तीला और तेज़। अपने सुख-दुखको सुनाने लगा। पाँच-छः वर्षसे ट्रकोंमें

घूमा करता है। घरकी गरीवीने कठोर जीवनके लिये वाध्य किया। माँ छोटे दो भाई और वहनकी देखभाल करती है। वाप शरावी था, पाँच वीघा जमीन थी, रेहन रखकर मर गया। दौसासे सोपस्टोन लादकर कानपुर जा रहा है। ट्रकके ड्राई-वरको उस्ताद मानता है। उसीने खलासीमें भरती किया। उसकी जुवान कड़वी है मगर दिल मीठा। वहुत गालियाँ देता और मारताथा, मगर काम सीखा कर छोड़ा। साल दो साल हुए ड्राइविंगका लाईसेन्स भी दिला दिया। कभी-कभी स्टिअरिंग पकड़ा देता है, मगर अभी पूरीतौर पर गाड़ी छोड़ता नहीं। तनखाहके अलावा अक्सर अपने पाससे कुछ पैसे दे देता है।

मैं सुनता जा रहा था, मगर थकानसे आँखे झपती थीं। कव गहरी नींदमें सो गया पता नहीं। एकाएक ड्राइवरकी आवाज सुनाई पड़ी, "महाराज भोजन करेंगे"? घड़ी देखी रात ग्यारह वजे थे, जंगलमें रास्तेके किसी ढावेके सामने ट्रक रुकी थी। हाथ मुँह धोकर वहीं रक्खी मूँजकी खटिया पर लेट गया। थोड़ी देर वाद शुद्ध देसी घीकी छौंकी दाल, सुस्वादु रोटियाँ और अच्छा दही थालमें रखकर आया, साथमें अचार और प्याज तृप्त होकर खाया। चलते समय पैसे देने लगा तो ढावे-वाला संकोच करने लगा।

करीव डेढ़-दो वजे रात ट्रक आगरेकी सीमा चुंगी पर रुकी। सुनाई पड़ा, "ऊपर कौन है?" आवाज सुनते ही मैं

जग पड़ा था। ड्राइवरने बताया, "एक महात्मा है।" ट्रक स्टार्ट करते हुए उसने मुझसे पूछा कहाँ उतरेंगे महाराज। "मैंने कहा किसी भी धर्मशालाके पास छोड़ दो।" उसने अनुरोध किया, "आज रात क्यों न इसी पर आराम करें सुबह जहाँ मर्जी चले जायें।" मुझे नींद आ रही थी, उसकी बात मान ली और ट्रक पर ही सो रहा।

सुबह पाँच बजे उठा तो देखा कि शहरके बाहर एक पेट्रोल पम्प पर दूसरी ट्रकोंके साथ हमारी ट्रक भी खड़ी थी। ड्राइवर और खलासी मेरे आसपास गहरी नींदमें थे। पासकी झाड़ियों में शौचादिसे निवृत्त होकर आया। उस समय तक वे जग चुके थे। ट्रक जमुनाके इसपार नौनिहाईमें रुकी थी। संयोगसे सुवहकी पाली पर जाता हुआ एक रिक्शा मिल गया। हाथका झोला मैंने साथ ले लिया और अटैची ट्रकमें ही रहने दी। ड्राइवरको अपना कार्ड देकर कहा कि कानपुरमे अपने अफिसमें रखवा देना, मैं वहाँसे मँगवा लूँगा। उसने कहा—"फिक्र न करें महा-राज, आपका बक्स परसों सुबह तक पहुँच जायगा।" रिक्शेमें बैठकर जब बेलनगंजसे गुजरने लगा तो सोचा कि न तो ट्रकका नम्बर लिया और न ड्राइवरका नाम पता पूछा। परन्तु मनने कहा कि धोखा नहीं होगा।

आगरेमें अपने साहित्यिक मित्र रावीजीके यहाँ सारा दि बिताकर रातमें जब स्टेशन पहुँचा तो पता चला कि कानपु जानेवाली पैसेन्जर ट्रेनमें फर्स्ट क्लासकी सारी सीटें पहले

ही भरी है। तीन दिनकी लगातार यात्रासे थका हुआ था। मनमें चिन्ता हुई। देखा, एक कम्पार्टमेन्टमें पति-पत्नी और तीन बच्चे थे। मैंने कहा, "भाई एक सीट आप मुझे देनेकी कृपा करेंगे ?" उन्होंने बच्चोंको एक सीट पर कर दिया और एक पूरी बर्थ मुझे देदी। मैंने देखा, यहाँ भी मेरे वेशने अपना चमत्कार दिखाया। जब कानपुर उतरा तो पति-पत्नी और बच्चोंने भक्ति-भावसे मुझे प्रणाम किया।

घर पहुँचा तो दो-तीन घंटे बाद अरोड़ा ट्रान्सपोर्टका फोन आया कि आपकी अटैची हमारे ट्रकसे अभी आयी है, ड्राइवर यहीं बठा है आपको प्रणाम कह रहा है। उसने यह भी पूछा कि क्या मैं स्वयं ट्रकसे आया था या आपके यहाँ आने वाले कोई महात्माजी। मैंने जब उन्हें बताया कि मेंहदीपुरसे आगरा तक मैं ही उनकी ट्रक पर आया हूँ तब जाकर उन्हें विश्वास हुआ।

इस यात्रामे एक अभिनव अनुभव हुआ कि आज भी हमारे देशके जन-मानसमे गंगाकी पवित्रता और जमुनाका प्रेम वर्तमान है। हजारों वर्षोंसे दोनों बहनोंकी पुण्य भूमि पर बसे लोग साधु महात्माओंकी सेवा करते आ रहे है। देश का सौभाग्य है कि यह परम्परा कुछ अंशोंमें अवशिष्ट है। यही कारण है कि बिना किसी सम्बलके बद्रीनाथसे कन्या-कुमारी और द्वारिकासे सुदूर कामाख्या तक साधु सन्यासी यात्राएँ कर पाते हैं।

जीवन की उपलब्धि

ईस्वी पूर्व पहली शताब्दीमें रोममें सिसेरो नामका एक विलक्षण विचारक और वाग्मी हुआ। अपने सदाचार, सद्विचार और निष्ठापूर्ण जीवनके कारण जनमानसको उसने प्रभावित किया था।

रोमन सभ्यता और संस्कृतिका वह स्वर्णिम युग था। पश्चिममें ब्रिटेन, रोम और स्पेन, पूर्वमें मेसोपोटामिया और बेबीलोनिया तथा दक्षिणमें भूमध्य सागर तटीय अफ्रीकाके देश विशाल रोमन साम्राज्यके प्रान्त थे। रोमकी सड़कों पर विदेशोंसे लाये सोना, सुन्दरी और गुलामोंका प्रदर्शन सामन्त बड़ी शानसे करते। वह जमाना था जब संसारकी सभी सड़कें रोमको जातीं।

आमोद-प्रमोद, भोग-विलास और बुद्धिचर्चा रोमन नागरिकोंकी दिनचर्या थी, तर्क-वितर्कमें पराजित कर देना प्रतिष्ठाकी बात समझी जाती। यदि इससे निर्णय नहीं होता तो तलवारें खिंच जातीं। रोमके चौकमें असि-द्वन्द्व और वाक्-द्वन्द्वके दृश्य आये दिन देखनेमें आते। सिसेरोके भी व्याख्यान वहाँ होते। उसका सिद्धान्त था, जनतन्त्र ही शासन संचालनका श्रेष्ठ पन्थ है। जनता मन्त्रमुग्ध होकर सुनती।

उन दिनों यूरोपमें समता और बन्धुत्वकी बात कोई नहीं कहता था। गुलामीकी प्रथा प्रचलित थी। सुसभ्य ग्रीक और रोममें भी दास सम्पत्तिके रूपमें थे। अरब और अफ्रीकासे लाये सैकड़ों गुलाम रोमन सामन्तोंके घरोंमें रहते।

ईसासे लगभग ५० वर्ष पूर्व सेनापति सीजर फौजके बल पर रोमका एकाधिनायक बन बैठा। जिन्होंने विरोध किया, मौतके घाट उतार दिये गये। प्रान्तोंमें विद्रोहके प्रयासको क्रूरतासे कुचल डाला गया। सीजर! महान सीजर!! लोग नामसे थर्रा उठते।

यद्यपि सिसेरो व्यक्तिगत विरोधमें नहीं पड़ा परन्तु जन-तन्त्रके सिद्धान्तोंका रोमन फोरममें डट कर प्रचार करता रहा। उसकी जनप्रियता देखकर सीजरने उसके प्राण नहीं लिये, केवल राजधानीसे निर्वासित कर दिया।

अपने कुछ नजदीकी शिष्यों और गुलामोंके साथ वह एक गॉवमे रहकर जनतन्त्र पर ग्रन्थ लिखने लगा। बीच-बीचमें उसे सीजरके आतंक और अत्याचारोंकी खबरें मिलती रहतीं।

अधिनायकवाद महत्वाकांक्षी अधिनायकोंको जन्म देता है और अधिनायकका अन्त भी उन्हींके द्वारा होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। एक दिन सीजरके विश्वस्त मित्र और सेनापति ब्रूटसने सभासदोंकी एक बैठकमें उसकी हत्या कर दी। मरते समय सीजर केवल इतना ही कह पाया "ब्रूटस! तुम भी"।

राजधानीमें अशान्ति फैल गयी। विशाल रोमन साम्राज्यमें अव्यवस्था बढ़ जानेके लक्षण दिखाई देने लगे। सेना लेपिडिसके साथ थी। राजकोष और साधन प्रधान मन्त्री अन्टोनीके पास थे। किन्तु अधिनायकवादसे त्रस्त जनता थी युवक नेता आक्टेवियसके साथ। तीनोंमें युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं।

आक्टेवियसने अपने गुरु सिसेरोको रोमका निमन्त्रण देते हुए लिखा, "रोम पर भयानक विपत्ति आयी है। बचपनसे ही आपके सिद्धान्तोंका कायल रहा हूँ। जनता मेरे साथ है परन्तु धन और सेनाकी कमी है। यदि इस संकटकालमें आकर मेरी सहायता करेंगे तो जनतन्त्रकी स्थापना सभव हो सकेगी"।

मातृभूमिके प्रति अपने कर्तव्य पालनके लिये सिसेरो रोम पहुँचा। बहुत वर्षों बाद आया था। बाल सफेद हो गये थे, दाँत गिर चुके थे, शरीर जर्जर हो गया फिर भी वाणीमें पहलेकी सी ओजस्विता थी। उसकी सभाओंमें लाखोंकी संख्यामें रोमन नागरिक आने लगे। एन्टोनी और लेपिडिस डर गये कि कही जनता विद्रोह न कर बैठे।

आखिर, एक दिन रोमके बाहर तीनोंकी एक गुप्त बैठक हुई। सभी भयभीत थे। तय हुआ कि आपसमें व्यर्थकी लड़ाई क्यों करें। रोमन साम्राज्यके तीन हिस्से हुए रोम, ब्रिटेन और स्पेन, तथा अफ्रीकाके प्रदेश। राज्योंके संचालनके

लिये विपुल धनकी आवश्यकता थी। तीनोंने अपने-अपने धनी मित्रोंके नाम बताए। उनको मार कर धन संग्रहकी योजना बनी। इसके बाद एन्टोनीने कहा कि सुचारु रूपसे राज संचालनके लिये सबसे बड़े बाधक होंगे, बुद्धिजीवी। अतएव इन्हें भी अविलम्ब समाप्त कर देना चाहिये। ऐसे नामोंकी सूची बनी, पहला नाम था सिसेरोका।

आक्टेवियस इस पर अड़ गया। कहने लगा, "जिसकी सहायतासे मैं वर्तमान स्थिति पर पहुँच सका, जो मेरे लिये पितृतुल्य है, उनकी हत्याके लिये मैं सहमति कैसे दे सकता हूँ।" समझौता उस दिनके लिये रुक गया किन्तु दूसरे दिन उस महान विचारककी हत्याके लिये तीनों एकमत हो गये। इस प्रकार रोमन साम्राज्यका बँटवारा हुआ।

सिसेरोको सूचना मिल गयी। कुछ समय बाद 'रिपब्लिका' ग्रन्थ पूरा कर अपने पुत्र और मित्रोंको सौंपते हुए उसने कहा, "मेरे जीवनका उद्देश्य पूरा हुआ, अब तुम्हें कष्ट न दूँगा।" उन लोगोंने समझानेकी कोशिशकी, "सामने ही द्रुतगामी नौका है, स्वीकृति दें, हम आपको सकुशल ग्रीक पहुँचा देंगे। ग्रीक आपका स्वागत कर गौरव बोध करेंगे"।

सिसेरोका उत्तर था, "मृत्यु अवश्यम्भावी है, थोड़े दिन जीनेके लिये मातृभूमि छोड़कर नहीं जाना चाहता। इसी मिट्टीमें पैदा हुआ, इसीमें मिल जाने पर मेरी आत्माको शान्ति

मिलेगी मनुष्यका जन्म एक उद्देश्यसे होता है, उसकी पूर्ति ही जीवनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। अब जीवनका मोह क्यों।"

सूचना राजधानीमें पहुँची। सिसेरोके सिरके लिये बहुत बड़ा इनाम घोषित था। बीसियों सशस्त्र सिपाही उसे बन्दी बनाने आये। उसके साथियोंने अपनी तलवारें निकाल ली।

"सावधान, रक्तपात नही, बिलकुल नहीं" कहते हुए सिसेरोने आत्म समर्पण कर दिया।

सैनिक उसका सिर और हाथ काट कर रोम ले गये। राजधानीके उसी चौकमें इन्हें सलीब पर टाँगा गया जहाँ उसने सैकड़ों बार लोगोंको अपने सारगर्भित उपदेशोंसे अभीभूत किया था।

सिसेरोका आत्मोत्सर्ग व्यर्थ नहीं गया, उसका उद्देश्य जनतन्त्र जनमानसमें अमर हो गया। सम्राट और सामन्तोंकी भोगलिप्सा बढ़ती गयी। अत्याचार बढ़ते-बढ़ते कुछ वर्षो बाद सम्राट नीरोकी सनक और क्रूरतामें साकार हो उठे। अबाध भोग-लिप्साका अगला कदम पतनकी ओर बढ़ता है, वही हुआ। जनताके अन्दर अधिनायकवादसे मुक्तिकी चिनगारीने ज्वालाका रूप धारण किया। उसकी लपटमें नीरो भस्म हुआ। साम्राज्य, खण्ड-विखण्ड हो गया, और साक्षी देनेके लिये बच गये खण्डहर।

प्यार की कीमत

दिल्लीके लाल किलेमें शाहजादी जैबुन्निसाका महल, जनवरी की कँपानेवाली ठंढ और सनसनाती हुई सर्द हवायें। सूरज ऊपर चढ़ आया था, शाहजादी अपने महबूब अकिल खाँकी बाहोंमें अलसायी हुई लेटी थी।

बांदी गुलरुखने दौड़ते हुए आकर कहा—"शाहजादी साहिबा गजब हो गया,बादशाह हुजूर इस तरफ आ रहे हैं।

शाहजादी घबरायी हुई चारों तरफ देखने लगी, सामनेके गुसलखानेमें एक बड़ी देग पानीसे भरी हुई रखी थी। जल्दी से अकिल खाँको उसमें छिपा दिया।

नंगी तलवारोंसे लैस ८-१० तातारी बांदियों और ख्वाजा-सरोंके साथ औरंगजेबने प्रवेश किया। हरमकी बांदियें सहमी सी एक तरफ खड़ी हो गयीं। शाहजादीने झुककर कोरनिस करते हुए कहा, "अब्बा हुजूरने इस बेवक्त कैसे तकलीफकी।"

बादशाहने चारों तरफ नजर दौड़ाते हुए कुटिल मुस्कानमें कहा, "पहरेदारोंने खबरदी है कि सल्तनतका एक बागी इस तरफ आया है।" सफेद मोतियोंके से दाँतोंमें बरबस लायी हुई हँसीमें शाहजादीने जवाब दिया कि भला इस तरफ आनेकी जरूरत किस मूजीको हो सकती है।

पासमें शाहजादीकी मुँहलगीवांदी गुलरुख खड़ी थी। वाद-शाहने डपटते हुए कहा "तेरे बच्चे और खाविन्द को कोल्हूमें पिरा दिया जायगा और तेरी वोटी-वोटी जंगली कुत्तोंसे नुचवा दी जायेगी, नहीं तो वता कि वह वागी कहाँ छिपा हुआ है।" डरसे काँपती हुई उसने देगकी तरफ इशारा कर दिया।

सूरज इतना ऊपर चढ़ आया था, अभी तक शाहजादीने गुसल नहीं किया था। "अव्वा हुजूर जरा सर भारी था इसलिए उठनेमें देर हो गयी। गुसल करके जल्दी ही आपके हुजूरमें हाजिर होती हूँ।"

वादशाहने भट्टीकी तरफ देखते हुए कहा कि अभीतक तो आग ही नही जलाई गयी है फिर भला कव पानी गर्म होगा और कव शाहजादी गुसल करेगी।

वादियोंको हुक्म हुआ कि देगके नीचेकी भट्टीमें वहुतसी लकड़ियाँ जलाओ जिससे जल्द पानी गर्म हो जाय।

थोड़ी देरमें ही आगकी लपटे उठने लगीं, वादशाह पहरे पर तातारी वांदियों को छोड़कर अपने महलमें चला गया।

गर्म भापसे देगका ढक्कन उठने-गिरने लगा, शाहजादीने देगके पास आकर धीरेसे कहा, "अकिल मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ में है। तिल-तिल करके जल जाना, मगर ऐसा नही हो कि मुँहसे आह निकल जाय।"

थोड़ी देरमें ही शाहजादी जेवुन्निसा मूर्छित होकर एक तरफ

गिर पड़ी, जब होश आया तो देखा कि किसी समयकी दी हुई प्यारकी निशानी उसका जड़ाऊ कंगन देगके बाहर पड़ा हुआ है।

पिछले बारह महीनोंकी बातें—चित्रपटकी तरह उसके मानस पर उभर आयी।

अब्बा हुजूरकी तबियत नासाज थी. दिल्लीकी खटपटसे कहीं दूर जाकर आराम लेना चाहते थे। जेबुन्निसा उसकी सबसे प्यारी औलाद थी। निगहदारी और बन्दोबस्तके लिये उसे साथ लिया और एक बड़े काफिलेके साथ लौहार आ गये।

हकीमोंने बादशाहको दरियामें घूमनेकी सलाह दी, इसलिए शाम होते ही एक बड़े बजरेमें रावीमें घूमने जाते। साथमें रहती उनकी बेगमें और शाहजादी जेबुन्निसा।

कभी-कदास सल्तनतके कामोंसे उन्हें रुकना पड़ता तब शाहजादी अकेली ही चली जाती, उसे रावीकी चंचल लहरोंसे एक प्रकारका लगाव सा हो गया था।

उसने महसूस किया कि जिस दिन बादशाह नहीं आते, उसे किलेकी बुर्जकी तरफसे एक दर्द भरी गजल सुननेको मिलती है। गायककी लय और तान मंजी हुई थी, परन्तु उसमें एक तड़पन सी रहती। गजल सुनकर उसके मन पर उदासी छा जाती। गजलके बोल कुछ इस प्रकारके होते—

"ऐ आकाशमें उड़ने वाले पंक्षी तू कितना सुन्दर है, मैं तुम्हें

बहुत प्यार करता हूँ, परन्तु तू ऊँचे आकाशमें है, मेरी पहुँचसे बहुत दूर। ऐसा लगता है कि जीवनमें कभी तुझे नजदीकसे नहीं देख पाऊँगा, न तेरे सुन्दर मुलायम पंखों पर हाथ फेर सकूँगा। इसी तरह घुटनसे भरी मेरी जिन्दगी जल्द ही खत्म हो जायेगी। मेरी आरजू है कि अगर कभी मौका मिले तो पासके बगीचेसे अपनी चोंचमें एक फूल लाकर मेरी कब्र पर चढ़ा देना। इससे मेरी तड़पती हुई रूहको राहत मिलेगी, यही मेरा सबसे बड़ा सकून होगा।"

कभी-कभी उसके भाव इस प्रकारके होते—"ऐ, हवाओं, मेरा प्यारा नजदीक होते हुए भी बहुत दूर है, वह मेरी जुदायीके दर्दको पहचानता नहीं है। क्या तुम उसके दरबारमें मेरी तड़पन और दर्दके बारेमे बयान कर दोगी।"

शाहजादीने गुलरुखको उस शख्शको ढूँढ़कर हाजिर करनेके लिए कहा—परन्तु कुछ भी पता नहीं चला।

आखिर लाहौरके सूबेदार आकिल खाँकी तलबी हुई। वह कोरनिस करके दस्त बस्ता एक तरफ खड़ा हो गया। २५-२७ का सिन, गठीला बदन, सुन्दर घुँघराले बाल, गोरा रोबदार चेहरा, परन्तु गमगीन सा दिखाई देता हुआ।

शाहजादी बजरेमें थी और वह पासकी नौकामें। पर्देमें से गुस्से भरी आवाज आयी "कौन है वह शख्स जो अपनी दर्दभरी गजलें गाकर हमारी तनहायीमे दखल डालता है? हम

यहाँ आराम करने आये है न कि मजनुओंकी जुदायीका दुख-दर्द सुनने ? उसे कल तक हाजिर किया जाय, यह हमारा हुक्म है।"

"गुस्ताखी माफ हो, शाहजादी हुजूर, वह एक पागल आदमी है. उसे आज रातको ही पकड़ कर दूर भेज दिया जायगा।"

"हमें लगता है कि हमारे सूबेदार बातको टालनेकी कोशिश कर रहे हैं। हम उस अभागेसे बात करके उसके रंजोगमके बारेमें सुनना चाहेंगे, अगर हो सका तो उसकी तकलीफ दूर करनेकी कोशिश की जायगी।"

आकिल खाँने देखा शाहजादीके चेहरे पर कुछ उदासी सी है, हुक्ममें भी एक प्रकारकी आरजू है। मनको कड़ा करके सहमते हुए कहने लगा, शाहजादी हुजूर यह खता इस गुलामसे हुई है, यह सर हाजिर है, भले ही कलम करा दिया जाय।

शाहजादीको भी कुछ अंदेशा तो था ही, उसका दिल भर आया। कुछ वर्षो पहले ही उसकी मंगनी ताऊ द्वारा शिकोहके शाहजादे सिपरशिकोह के साथ हो गयी थी, अभी बचपन ही था फिर भी दोनों प्यारमें सराबोर थे। परन्तु होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है।

दादा बीमार हुए, उन्हें कैदमें डालकर अब्बाने बड़े भाई दाराका सर काट लिया और उसके मंगेतर शाहजादेको ग्वालियरके किलेमें पोश्त पी-पीकर मरनेको कैद कर दिया। इस

प्रकार पूरे खान्दानको अव्वाने दुश्मन बना लिया, परन्तु जेवके लिए सिपरको दुश्मन मानना किसी हालतमें मंजूर नहीं था। कभी-कभी चुपकेसे ग्वालियर जाकर मिलनेका भी मन होता, परन्तु पिताके डरसे मन मशोश कर रह जाती। आज न जाने क्यो वहुत वर्षोंसे सोयी हुई तमन्नायें जाग उठी, सोचने लगी, मुगलिया खान्दानके वादशाह और शाहजादे दसों वेगम और सैकड़ों रखैल रख सकते है, जवकि शाहजादियोंकी उम्र भर कुँवारी रहकर ज्यादातर जवानीकी उमंगोंको जवरन दफना देना पड़ता है। पचास वर्षकी वुआ जहानआरा अभी तक कुँवारी रहकर आगरेके किलेमे अपने पिता शाहजहाँके साथ कैदमें दिन गुजार रही है। इससे तो वेहतर है कि खुदा भले ही गरीव घरमे पैदा कर दे, जिससे ताजिन्दगी इस घुटनमे तो नही रहना पड़ेगा।

उसे लगा कि आकिलकी जगह किशोर सिपर उसके सामने खड़ा है। कहने लगी—"सच्ची मुहव्वत भी वेवफा नहीं होती आकिल ; दिया जलता है तो पतंग भी जलता है। हमारी तरफ इस तरह न देखो, हमारा भी दिल दर्दसे भरा हुआ है, उसको समझनेकी कोशिश करो।"

आकिलको लगा कि उसके भटकते हुए सपने डूवनेसे वचकर लहरों पर थिरक रहे है। फिर तो दो दिलोंका रुका हुआ बाँध टूट गया। रोजाना वे कहीं न कहीं मिलते रहे। प्यारमें

शाहजादी हुजूरका नाम रह गया केवल 'जेव' और लाहौरके युवक सूबेदार का 'आकिल'।

औरंगजेबके हजारों आँखें थी—पहले दर्जेका सक्की तो था ही, उसे शाहजादीके अकस्मात बदलावसे वहम हो गया। सजीदा आकिल भी चहकता सा रहने लगा। आखिर उसने किसी प्रकार वाकयाका पता लगा ही लिया।

एक हफ्तेमे ही लाहौरसे कूचका हुक्म हुआ। पालकियों और रथोंमे बेगमें और शाहजादी जा रही थी। हिफाजतके लिए तातारी वादियों और खोजाओंका पहरा था। दूसरी शामको शाहजादीने देखा घोड़े पर चढ़ा हुआ रंजसे गमगीन आकिल किसी तरह उसकी पालकीके पास पहुँच आया है। जल्दीसे एक जड़ाऊ कंगन उसको देते हुए सिसकियों भरी आवाजमे कहा कि प्यारे मेरी यह आखिरी निशानी अपने पास ताजिन्दगी रखना। हमारी यह आखिरी मुलाकात है, अब्बाको सब पता चल गया है, तुम्हे जल्दी ही कत्ल कर दिया जायेगा, ऐसी मुझे पोशीदा खबर मिली है। अगर हो सके तो हिन्दसे भागकर काबुल या अफगानिस्तान चले जाओ। खुदा ने चाहा तो कभी न कभी फिर मिलना हो जायगा, नहीं तो फिर उस दुनियाँमें तो मुलाकात होगी ही, जहाँ न शाहंशाहका डर है, न उनकी फौजोंका।

आकिल खाँने सर झुका कर कंगनको लेकर चूम लिया और केवल इतना ही कह पाया कि बंदा मर मिटेगा परन्तु

आपकी इज्जत पर आँच नही आने देगा। उसका गला भर आया, आवाज काँपने लगी, आँखें पोंछता हुआ जल्दीसे आगे बढ़ गया।

दिल्ली आकर बादशाहने अपनी प्यारी बेटीका गम दूर करनेकी बहुत कोशिश की। कई मुल्कोंके शाहजादोंकी तस्वीरें मँगाई गयी, उनमेंसे किसी एकको शादीके लिए चुन लेनेका सुझाव दिया।

परन्तु शाहजादीका एक ही जवाब रहता कि मैं तो ताजिन्दगी अब्बा हुजूरकी खिदमतमें रहूँगी। अभी तक तो मेरा कुरान-शरीफका तुजर्मा भी पूरा नहीं हो पाया है। भला हमारी ऐसी क्या खता हो गयी कि अब्बा हमे आँखोंसे दूर करना चाहते है।

हाँ, तखलियामें वह गुलरुखसे कहती, "गुल अब्बा रियासती मामलोको समझते हैं परन्तु किसीके दर्दकी तड़पनको नही। वे सारे हिन्दके बादशाह हो सकते है, फिर भी उन्हें क्या हक है कि प्यारसे लगाये हुए किसी मासूम पौधेको कुचल कर फेंक दे।

इतना कहकर, औरंजेबके बाद हिन्दुस्तानकी सबसे ताकतवर शख्सियत बिलख-बिलख कर रोती हुई बेहोश होकर गुलरुखकी बाहोंमें गिर जाती।

एक दिन यह भी सुना गया कि आकिल खाँकी दिल्ली दरबारमें तलबी हुई है, परन्तु वह भागकर कहीं चला गया है। उसे ढूँढनेके लिए चारों तरफ फौजें भेजी गयी हैं।

इसके एक महीने बाद एक दिन जब शाहजादी सदाकी तरह गमगीन बैठी थी, तो गुलरुख दौडती हुई आयी और धीरेसे कहने लगी। शाहजादी हुजूर खुशखबरी है, कानमें कही हुई बात सुनकर शाहजादीके बीमार और मुरझाये चेहरे पर चमक सी आगयी. चहक कर कहने लगी, कहाँ है ? तुझे कैसे पता चला।

कल रातमें ही तो मेरे गरीबखाने पर आकर ठहरे है। बढ़ी हुई दाढ़ी, मैले कपड़े, किसी समयके सजीले जवान, दुखोंके मारे बीमारसे दिखाई दे रहे है।

उसी रातसे एक लम्बी तगड़ी बांदी गुलरुखके साथ शाह जादीके हरममें आने लगी। पूछने पर उसने अपनी मामूकी बेटी बतायी। औरतोंके सामने भी वह पर्दा करती इसलिए कुछ कानाफूसी होने लगी—परन्तु बेगमों और शाहजादियोंके हरममे इस प्रकारकी मामूजाद और फूफीजाद बांदिये प्रायः ही आती रहती थीं, इसलिए थोड़ी सी चर्चा होकर बात दब जाती।

परन्तु शाहजादी जेबुन्निसाके महलके लिए यह नयी बात थी। वह कट्टर महजबी थी, रोज तरन्नुमके साथ कुरानशरीफका पाठ करती, हर जुम्माको मस्जिद में जाती, दिनमें पाँच बार नमाज पढ़ती। बादशाह हुजूर तक खबर पहुँची। उनको अंदेशा तो था ही कि बागी जरूर दिल्ली आयगा क्योंकि इश्कमें मौतका डर नहीं रहता। आखिर परिन्दा जलनेके लिए ही तो दीयेके पास झूमता हुआ चला आता है।

इधर जब १५ दिन हो गये तो एक रातमें आकिल कहने लगा, "जेब इस प्रकार कितने दिन चलेगा, हमें यहाँसे कहीं दूर निकल जाना चाहिए, मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे केवल मेरी जेब चाहिए न कि उसकी दौलत और रुतबा। कहीं भी दो पैसे मजदूरी करके पेट भर लेंगे।"

मुस्कराती हुई जेबने कहा कि आकिल कल जरूर फैसला कर लेंगे। और दूसरे दिन अपने आप फैसला हो गया।

फूलों की घाटी

सन् १९५० और १९६४ में १३४०० फीटकी ऊंचाई पर स्विटजरलैंडमें आल्पस पर्वतकी चोटी यंग फ्राउ पर हो आया था। लोगोने कहाकि शायद वहाँ पतली हवाके कारण स्वास लेनेमे कष्ट होगा, परन्तु मुझे ऐसी कोई तकलीफ नहीं हुई। हाँ, यह जरूर था कि स्विस इंजीनियरोंने पहाड़के भीतर सुरंग काट कर ऊपर तक ट्रेन पहुंचा दी है। इसलिये यात्री विना थकावटके दो घटेमें इण्टरलाकनसे वहाँ पहुंच जाते है। ऊपर जाते ही ताप नियंत्रित होटलमें चाय, और नास्तेकी व्यवस्था रहती है।

देश लौटने पर जब वहाँकी सुन्दरता और भव्यताके वारेमें लिखा तो कई मित्रोंने कहा कि तुम एक वार हिमालयके लोक-पाल हेमकुण्ड और फूलोंकी वाटी जाकर आओ, फिर दोनोंकी तुलना करो।

स्माइथकी वहुचर्चित पुस्तक 'फूलोंकी घाटीके' वारेमें वहुत कुछ सुन रखा था, परन्तु उसे कभी पढ़नेका मौका नहीं मिला।

जुलाई ७२ में दो मित्रोंके साथ उत्तराखण्डकी यात्राके लिए गया। अधिक वर्षाके कारण रास्तेमें रुकावट आगयी इसलिए

केवल जमुनोत्तरी-गंगोत्तरी जाकर वापस आना पड़ा, बद्री-केदार नहीं जा सका।

सौराष्ट्रकी यात्रा करता हुआ १६ अगस्तको नयी दिल्ली आया। बद्री-केदार जाकर उत्तराखण्ड पर कुछ लिखनेका विचार था इस लिए वहाँ २५-३० बार गये हुए मित्रवर गंगाशरणजी सिन्हा, संसद सदस्यसे सलाहकी।

उन्होंने कहा कि अगर जानेका मन है तो फूलोंकी घाटी देखनेका भी यही उपयुक्त समय है, इसलिये हिम्मत करके हेमकुण्ड और फूलोंकी घाटी हो आओ।

मुझे २४ तारीखको कानपुर वापस लौटना था इसलिये उसी रात हरिद्वारके लिये रवाना हो गया, गर्म कपड़े दिल्लीमें थे नहीं-इसलिये केवल खादीके कुर्ते-धोती और तीन कम्बल साथमें ले लिए और प्रबोध सन्यालके उस 'महाप्रस्थानके पथ पर' चल पड़ा।

केदारनाथके लिए ऋषिकेशसे बस द्वारा गुप्तकाशी गया—परन्तु वर्षाके कारण आगेका रास्ता खराब था इसलिए वापस रुद्रप्रयाग होता हुआ बद्रीनाथ चला आया। सन् १९४५ में पिताजी-माताजीके साथ वहाँ आ चुका था, परन्तु इन २७ वर्षोंमें बद्रीनाथकी काया पलट हो गयी है—छोटेसे पहाड़ी गाँवकी जगह अब एक सुन्दर कस्बा बसा हुआ है, जिसमें पाचसों गेस्ट हाउस, धर्मशाला और अतिथिशालाएँ हैं—

विजलीकी जगमगाती रोशनीसे सुसज्जित दुकानें। खैर, यहाँ तो मुझे केवल फूलोंकी घाटीके वारेमें ही लिखना है।

प्रसिद्ध पर्वतारोही स्माइथने १९३१ में कामत चोटीसे उतरते हुए, इस स्थानकी झलक देखी थी, परन्तु उस समय उसके साथ बड़ा काफिला था—प्रोग्राम भी नहीं बना हुआ था, इसलिये वहाँ बिना रुके वापस यूरोप चला गया। परन्तु उसके मनमें इसे देखनेकी प्रबल आकांक्षा बनी रही। उसने लिखा है कि एक प्रकार अनजाना आकर्षण-सा रहा। आखिर १९३८ में वह कुछ पहाड़ी मार्ग दर्शको और कुलियोंके साथ उत्तराखण्डकी सुन्दर घाटीके इस स्थान पर आ पहुँचा।

यहाँ वह दो महीने रहा और पूरी खोज-बीनके बाद अपनी प्रसिद्ध पुस्तक वेली आफ फ्लावर्स लिखी फिर तो इस अचिन्हें अजाने स्थानका विश्वमें नाम हो गया और बहुतसे साहसिक यात्री अनेक देशोंसे यहाँ आने लगे। कहते हैं कि यहाँकी मादक हवा और सुगंधसे बेहोशी-सी आ जाती है। एक विदेशी महिला जोआन मार्गरेट लेग तो बेहोश होकर यहीं खड्डमें गिरकर मर गयी। मैंने उसकी समाधि इस वीराने स्थान पर देखी। पर्यटक आज भी श्रद्धा स्नेहसे उस पर दो फूल चढ़ाते है। स्वदेश और बन्धु-बान्धवोंसे हजारों मील दूर पुष्पोंकी शय्या पर चिर निद्रामें सोयी हुई है।

संयोगसे यहाँसे चार मील पर सिक्खोंके दसवें गुरु गोविन्द सिंहके पूर्व जन्मकी तपस्थली लोकपाल हेमकुण्ड है,

जिसका पता बड़ी खोजके बाद १६३२ में लग पाया। हजारोंकी संख्यामें श्रद्धालु सिक्ख स्त्रीपुरुष प्रति वर्ष तीर्थयात्राके लिए जाते हैं, इसलिए अब साधारण पर्यटकके लिये भी फूलोंकी घाटीमें जाना सहज हो गया है।

बद्रीनाथसे १३ मील पहले ६००० फीटकी ऊँचाई पर गोविन्द घाट गुरुद्वारा है, यहाँ तक मोटरें और बसें आती हैं। मैं ग्यारह बजे वहाँ पहुँचा। ग्रन्थीजीने बड़े प्रेमसे लंगरमें खाना खिलाया और ऊपर जानेके लिये चार आदमियोंकी एक डण्डी कर दी। वैसे घोड़ा सस्ता और ज्यादा आरामदेह रहता, परन्तु उस दिन सारे घोडे ऊपर जा चुके थे और मुझे जल्दी थी। वहाँसे साढ़े सात मील ऊपर चढ़कर दस हजार चार सौ फीटकी ऊँचाई पर घाघरिया नामके स्थान पर भी गुरुद्वारा है। फूलों की घाटी और हेमकुण्ड जाने वालों के लिए यह सुस्ताने को जगह है। रातमें वहाँ ठहर गया। यहाँ भी ग्रन्थ साहब की आरतीके बाद कड़ा प्रसाद मिला और सादा भोजन। हेमकुण्ड जाने वाले दस-पन्द्रह सिक्ख यात्री ठहरे हुए थे, फिर भी जगह काफी थी। रात्रिमें ओढ़नेके लिये व्यवस्थापक ने ४-५ कम्बलें दे दीं।

दूसरे दिन सुबह साढ़े छः बजे हेमकुण्डके लिये रवाना हुआ। यहाँसे ४ मील दूर १५१०० फीटकी ऊँचाई पर यह पवित्र मनोरम स्थान है। इसके बारेमें दूसरे लेख में वर्णन करूँगा

यहाँकी पतली हवासे मुझे किसी प्रकारके चक्कर नहीं आये। कपड़ोंमें केवल एक कुर्त्ता और एक खादीकी जाकेट थी, ऊपरसे एक कम्बल ओढ़े था। इतनी ऊँचाई पर आनेका मेरा यह पहला मौका था।

दो बजे जब वापस घाघरिया पहुँचा तो काफी थक गया था। मैंने डाडी केवल ऊपर चढ़नेके लियेकी थी। खड़ी उतरायीमें बिना अभ्यासके पैरोंके घुटनोंमें दर्द हो गया। भोजन करके आराम कर रहा था कि संयोगसे एक घोड़ा मिल गया और फूलोंकी घाटी उसी दिन चला गया।

मार्ग अत्यन्त विकट है। विष्णुगंगाके किनारे ऊँची-नीची पथरीली संकरी सड़क पर घोड़ा चला जा रहा था। कहीं-कहीं तो केवल दो फीट चौड़ाई भी मुश्किलसे हो। हिचकोले लगते थे। मन दूर अतीतकी ओर खिंच जाता। मुक्तिकी कामनासे किस प्रकार एकाकी त्यागी संन्यासी इन वन प्रान्तरोंसे गुज़रते होंगे। क्या मिलता होगा उन्हें इन बीहड़ और निर्जन मार्गों पर। क्षण भरमें दृष्टि चली जाती नीचे गहराईमें, गरजती विष्णु गंगा पर। झाग उड़ाती पत्थरोंसे टकराती बढ़ती जा रही थी, किसी भी अवरोधकी अटक नहीं जैसे इसीमें जीवन की सार्थकता हो। एक पुलसे घोड़ा गुजरा। ऊँचे दो पर्वतोंके बीच सँकरा सा पुल, नीचे वेगवती नदीका उफान। जरा सी चूक हुई कि सब खेल खत्म। जिन्दगी और मौतका फासला ही कितना।

मैं गौर कर रहा था पहाड़ी घोड़ा हमेशा गर्तकी तरफ चलता है पर उसकी सधी चालमें फर्क नहीं आता। घोड़ेका मालिक मुझ पर नजर रखे था। जरा भी भय-भीत देखता तो दम दिलासा बढ़ाता। साहसिक घटनाओं, देवता-पुराणोंकी न जाने कहाँ-कहाँकी बातें कहते सुनाते दो-तीन मीलकी बीहड़ चढ़ाई पार करा दी। हँस कर अन्तमे कहा, "शाब आगयी फूल घाटी।"

सचमुच, सामने फूलोंकी घाटीने मुस्कुरा कर स्वागत किया। जीवनमें देश-देशान्तरोंके भ्रमण-पर्यटनके बहुतसे अवसर मुझे मिले। उत्तरी ध्रुवाचलमें निशासूर्यके दर्शन किये। स्विटजरलैण्ड, फ्रान्स, आस्ट्रियाकी सौन्दर्य स्थलियाँ देखीं। सहाराके धधकते मरुस्थलमें रेतकी आँधियोंको देखा और विसूवियसकी उगलती आगमें प्रकृतिका रौद्ररूप महाकाली को देखा। परन्तु यहाँ जो कुछ देखा वह तो प्रकृतिकी अद्भुत और अवर्णनीय रचना थी। मुझे कविवर श्रीधर पाठककी पंक्तियाँ याद आगयीं।

"प्रकृति यहाँ एकान्त बैठी निज रूप संवारिति,
पल-पल पलटति, द्वैय क्षणिक छवि छिन-छिन धारति।"

लगता है, देवाधिदेव शिवको प्रसन्न करनेके लिये आद्यशक्ति पार्वती अपना श्रृंगार कर रही है।

मेरा भाग्य अच्छा था। मुझे रुपहली धूपमें पूरी घाटीके

फूल दिखाई पड़े। बहुत बार घने कोहरेके कारण पर्यटकोंको वहाँसे निराश लौटना पड़ता है। जो कुछ देखा, वह लिखना सम्भव नहीं। अनुभवको शब्द उतार सकते हैं, अनुभूतिको नही। स्विटजरलैण्डको देखनेके बाद मैंने उसे 'भूलोकका नन्दन कानन, समझा था यहाँ आने पर लगा कि यह धारणा भ्रान्ति-मूलक थी।

इस अंचलका नाम भूयन्दरकी घाटी है। मैं सोचने लगा कहीं यह भू इन्द्रका अपभ्रंश तो नहीं। भाषा विज्ञान माने न माने, मैं तो मान बैठा। पता नहीं, इस जगह पर ही प्रकृतिने इतनी कृपाकी, सैकड़ों-हजारों तरहके फूल बिखेर दिये।

ऐसा लगता है कि ऊन और रेशमसे बुना गया विविध रंगोंका एक गलीचा सा बिछा हुआ है। आमतौर पर दस हजारसे अधिक ऊँचाई पर फूलोंकी तो बात ही क्या हरियाली नहीं मिलती। परन्तु यहाँके हिमशिखरोंकी गोदमें फूलों की बारात भूगोल और प्रकृति शास्त्र के लिये एक जिज्ञासा प्रस्तुत करती है।

डालियासे भी बड़े और राईके समान छोटे सैकड़ों तरहके फूल देखनेमें आये। आश्चर्यतो यह है कि बर्फानी तूफान, अत्यधिक शीत और ओलोंकी वर्षाको सहकर किस प्रकारसे ये कोमल पुष्प विकसित हो जाते है।

कई विशेषज्ञ यहाँके फूलोंके बीज और पौधे विदेश ले गये,

परन्तु अनेक प्रयत्नोंके बावजूद इस प्रकारकी सुगन्ध और रूप-रंगके पुष्प पैदा नहीं कर पाये।

जाते समय मित्रोंने चेतावनी दी थी कि वहाँ पर इतनी ज्यादा सुगन्ध है कि बेहोशी सी आ जाती है। मुझे लगा कि, सुगन्ध वहाँ जरूर है। किसी फूलमें लेवेण्डरकी किसीमें ताजा पिसी हुई काफीकी, तो किसीमें अजवायन, दालचीनी और लौंग जैसी। परन्तु बेहोशी अगर किसीको आती भी है तो केवल सुगंधीसे नही बल्कि यहाँके प्राकृतिक सौन्दर्य और १२००० फीट की ऊंचाई की पतली हवा से।

मनुष्य की तरह पशु भी शायद सौन्दर्य प्रेमी होते हैं। वंशीलाल और मैं जब इस नन्दन काननमें एक घंटा ठहर कर नीचे उतरने का विचार करने लगे तो देखा कि उसका हीरू घोड़ा फूलोंके ऊँचे-ऊँचे पौधोंमें छिपा हुआ खड़ा है।

पुकार-पुचकारने के बाद किसी प्रकार नीचे जानेको उसे तैयार किया और ६ै बजे तक हम उस अद्भुत वर्णनातीत और अनोखे स्थलसे वापस लौटे।

रात्रिमें गुरुद्वारेमें लेटा हुआ सोचता रहा कि अगर यह स्थान स्विटजरलैण्ड या हालैण्डमें होता, तो विश्वमें बड़े पैमाने पर प्रख्यात होकर हजारों-लाखों विदेशी यात्रियोंका आकर्षण पर्यटन केन्द्र बन जाता। पक्की सड़क बन जाती। ठहरनेके लिए ताप-नियंत्रित होटल-मोटल हो जाते, करोड़ों डालर पाउण्ड

मार्के आकर यहाँ बिखर जाते। परन्तु हमें तो इन सब बातोंको सोचने-समझनेकी फ़ुरसत ही नहीं है। बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें अजन्ताके अनमोल भित्ति चित्रोंका भी एक विदेशी पर्यटकने ही पता लगाया था और बीसवीं शताब्दीमें विश्वके इस अद्वितीय आश्चर्यका भी स्माइथ नामके विदेशी पर्वतारोही पर्यटक ने।

लोकपाल—हेमकुण्ड

भारतीय ऋषि-मुनियोंने न जाने क्यों अपनी तपस्थली दुर्गम हिमाच्छादित देवात्मा हिमालयको चुना था। शायद उनको वहाँकी शुद्ध हवा, स्वच्छ वातावरण और बर्फानी चोटियों ने आकर्षित किया हो।

पर्वतराज हिमालयको केवल मात्र तपस्थली कहना भूल होगी। शिव-पार्वती, दुष्यन्त-शकुन्तला और अनिरुद्ध-उषाका प्रथम प्रणय यहींके पहाड़ोंके वन-प्रान्तरमें हुआ था। मादक हवा और वातावरणसे विमोहित होकर अश्वनी कुमारोंकी चेतावनीको भूलकर पाण्डुराजने अपने क्षय रोगकी परवाह न कर माद्रीके साथ संभोग करके एक प्रकारसे मृत्युका आह्वान किया था।

तपोलीन ऋषि-मुनियोंके साथ-साथ आज भी यहाँके खेतों, खलिहानोंमें ढोर चराती हुई या नदीसे पानी लाती हुई उर्वशी, मेनका और रम्भाएँ देखी जा सकती हैं। इस स्थानकी हवामें इतनी मादकता है कि जिससे उद्वेलित होकर शिवजी जैसे तपस्वीके मनमें भी कामोत्तेजना हो आई। आखिर, उन्हें देवको भस्म कर देना पड़ा।

यहींकी एक परम रमणीय मनोहारी वर्फानी घाटीमें सिक्खोंके दशमेश गुरु गोविन्द सिहजीने अपने पूर्व जन्ममें तपस्याकी थी। उन्होंने स्वरचित ग्रन्थ विचित्र नाटकमें लिखा है :—

"अब मैं अपनी कथा वखानो।
तप साधत जिह विधि मुहि आनो॥
हेम कुण्ड पर्वत है जहाँ।
सपत श्रृंग सोभित है तहाँ।
सपत श्रृंग तह नाम कहावा।
पांडु राज जहँ जोग कमावा।
तहि हम अधिक तपस्या साधी।
महाकाल कालिका आराधी॥"

गुरुजीके स्वर्गवासके वाद २२५ वर्षों तक यह स्थान जनतासे छिपा हुआ था।

वीसवीं सदी के शुरू से ही सिक्खों के मन में इस पवित्र तीर्थ को खोज निकालने की आकांक्षा रही। सन् १९३२ में वावा करतार-सिह वेदीको पाण्डूकेश्वरमें एक वयोवृद्ध महात्मा द्वारा इस स्थानका पता चला और वे अनेक प्रकारके कष्ट सहते हुए यहाँ पहुँच गये।

यहाँ आकर उन्होंने गुरुजी द्वारा वर्णित सात चोटिएँ देखी और उसके वीचमें स्वच्छ निर्मल जल का एक कुण्ड। वहीं पर

रखी हुई एक शिलापर ध्यानमग्न होकर बैठ गये। अधिक सर्दी और पतली हवाके कारण बेहोश हो गये।

उसी बेहोशीमें उन्हें आभास हुआ कि एक महात्मा कह रहे है कि अरे भाग्यवान तेरा जीवन सफल हुआ। यही वह शिला है, जिसपर बैठकर गुरु गोविन्द सिंहजीने तपस्या की थी। चेतना आने पर बाबा करतार सिहको एक विचित्र आनन्दकी अनुभूति हुई। सारा शरीर हर्षसे रोमाचित हो गया, एक प्रकारकी दैवी शक्तिके प्रादुर्भावका आभास हुआ।

अमृतसर आकर उन्होने सारा वृत्तान्त सिक्खोंके नेता भाई वीरसिहजीको सुनाया। वीरसिंहजीने कुछ साहसी मित्रोंको तैयार किया और उनको साथ लेकर इस दुर्गम स्थान पर पहुँचे। बहुत परिश्रमके बाद सन् १९३६ में उसी शिला पर एक छोटेसे गुरुद्वारे का निर्माण हुआ।

सन् १९३९ के बादसे श्रद्धालु सिक्खोंके जत्थे प्रति वर्ष यहाँ आते रहते हैं। उनमेंसे कइयोंने रात्रिमें सरोवरमें बिजलीकी सी चमक देखी। हेमकुण्ड दर्शनके लेखक-डा० जवाहर सिह ने लिखा है कि उन्होंने अपने कई एक साथियों सहित एक बाज पक्षी देखा, जो इनके जत्थेके साथ-साथ घाँघरिया तक आया। यही बाज उन्होंने अमृतसरमें गुरुके बागके मोरचेके समय देखा था। उनलोगोंकी धारणा है कि जो बाज गुरुजीके पास रहता था—वही उनके गुरुद्वारे और तपस्थली में आज तक है।

२० अगस्त १९७२ को बद्रीनाथकी यात्रा करके लौटते समय लोकपाल–हेमकुण्ड जानेके लिए गोविन्द घाट गुरुद्वारेमें आया। हेमकुण्डके लिये जोशीमठ या बद्रीनाथके तहसीलदारसे परिपत्र ले लेना पड़ता है, क्योंकि यह क्षेत्र तिब्बत की सीमा पर है।

अलकनन्दाके किनारे गोविन्द घाट गुरुद्वारा पाण्डूकेश्वरसे एक मील दूर ६००० फीटकी ऊँचाई पर है। यहाँ पर ५०-६० यात्री आरामसे ठहर सकते है। चाय-पकौड़ी और मिठाईकी एक दूकान भी है। वैसे, गुरुद्वारेमे यात्रियोंके लिए चाय और भोजन की व्यवस्था रहती है।

दूसरे दिन, इस क्षेत्रके निरीक्षणके लिए जिलाधीशका ऊपर जानेका प्रोग्राम था इसलिए अंचलके सारे घोड़े पहलेसे ही आरक्षित कर लिये गये थे। ग्रन्थीजीने मेरे लिये ८०) रु० में हेमकुण्ड जानेके लिए चार आदमियोंकी एक डाडी कर दी। अगर घोड़े पर जाता तो केवल ४०) लगते। भोजन करके १२ बजे खाना हुआ।

अलकनन्दा पर लकड़ीका एक पुल बना हुआ है, उसे पार करते ही खड़ी चढ़ाई मिलती है। रास्तेमे जगली झाड़ियाँ और वृक्ष बहुतायतसे थे।

२ घण्टे चलनेके बाद तीन मील पर एक गाँव मिला, यहाँ एक चायकी दूकान थी। डाडी वाले काफी थक गये थे, थोड़ी देर सुस्ताकर आराम करने लगे।

अब शायद हम ८००० फीटकी ऊँचाई पर आगये थे। हवा में ठंडक थी—रास्ता भी कुछ सीधा था। डांडीसे उतर कर मैं पैदल चलने लगा। एक पढ़ा-लिखा पहाड़ी युवक ऊपर जा रहा था। उसकी बकरियाँ और भेड़ें फूलोंकी घाटीमें चरनेको गयी हुई थीं। ढोरोंकी ऊन काटनेका समय था। फूलोंकी घाटीके बारेमें बहुत तरहकी जानकारी मिली। मैं तो थोड़ी-सी चढ़ाईमें हाँफ जाता परन्तु वह टेढ़े-मेढ़े रास्तेमें दौड़ता हुआ ऊपर पहुँच जाता। उसने बताया कि जून तक यह रास्ता बर्फसे ढँका हुआ रहता है। उस समय यहाँके ग्रामीण ही आ-जा सकते है और वे भी केवल भुयन्दर गाँव तक।

लगभग ३-३० बजे हमलोग गोविन्दघाटसे ५ मील पर भुयन्दर गाँवमें पहुँचे। यहाँ चाय पी और गर्म पकौड़ियाँ खायी।

बहुत वर्षोंसे इस गाँवमें एक वृद्ध बंगाली साधु रहते है। उनसे मिलने गया। जवानीमें हिमालयके बहुतसे हिस्सोंकी उन्होंने यात्राकी है। भुयन्दर घाटी और आसपासके क्षेत्रकी जानकारीकी अंग्रेजीमें एक पुस्तक भी लिखी है।

उनको घेरे हुए पहाड़ी-स्त्री-पुरुष बैठे थे। वे उन्हें होमियोपैथिक दवा देते है। एक प्रकारसे उनके अपने परिवारकी तरह हो गये है।

मैंने बंगलामें बात शुरूकी–बहुत दिनों बाद मातृभाषाको सुनकर उनके मनमें खुशी हुई। शायद ५०-६० वर्ष पहले छोड़े हुए स्वजन और गाँव-घर फिर याद आगये।

मैंने पूछा, "महाराज, तीर्थ तो बंगाल-आसाममें भी है। पड़ोसकी काशी भी बड़ा तीर्थ है, वहाँ बन्धु-बान्धव भी मिल जाते, फिर आप इस अजाने-अचिन्हे बीहड़ स्थानमें अकेले रहकर क्यों कष्ट सहते है ?"

उन्होंने हंसते हुए कहा—"मेरे ये पूर्व जन्मके बन्धु है। इनकी पुकार सुनकर ही यहाँ रहता हूँ। यही मेरे लिए तीर्थ और तपस्थली है। माँ गंगा कलकत्ता और काशीमें है और उसका उद्गम स्थल इस क्षेत्रमें है इसलिए एक प्रकारसे मैं अपने ननिहालमें आया हुआ हूँ।"

"जीवनके तीसरे दशकमें भ्रमण करता हुआ–न जाने किस आकर्पणसे यहाँ आ पहुँचा—उन बातोंको पचास वर्प हो गये। अब तो प्रभुसे यही प्रार्थना है कि देवताओंकी इस हिमाच्छादित भूमिमें किसी दिन इन सब लोगोंके हाथसे गंगा लाभ करूँ।"

महाराजका एक श्रद्धालु भगत चाय बनाकर लाया। 'ना' नहीं कर सका। विदाके समय उन्होंने स्वरचित पुस्तक भेंटकी।

भुयन्दरसे आगे फिर कड़ी चढ़ाई है—बांघरिया पहुँचे तब ५ बज गये थे। डाडी वाले इस सर्दीमें भी पसीनेसे तर-बतर होकर हाँफ रहे थे। मनुष्यको अपने और परिवार वालों

के पेट भरनेके लिए सब कुछ करना पड़ता है। अगले दिन फिर इन्हें इससे भी कड़ी चढ़ाई-हेमकुण्ड पर जाना होगा, जहाँ की हवा भी पतली है। इसलिए उबकाई और चक्कर आते है। शायद जीवनके अन्तिम दिनों तक इनका यही कार्यक्रम चालू रहेगा।

घांघरियाका गुरुद्वारा १०,००० फीटकी ऊँचाई पर है। श्रद्धालु सिक्खोंने १९३९ में यात्रियोंके सुस्तानेके लिए इसे बनाया था। अब तो काफी बड़ा हो गया है। १५-२० स्त्री-पुरुष ठहरे हुए थे। ग्रन्थीजीने बड़े प्रेमसे कोनेमें एक जगह बता दी। थोड़ी देर बाद प्रसादके रूपमें गर्म चाय मिली।

सर्दी और थकावटके कारण कंबल ओढ़कर सो गया था। गुरुग्रन्थ साहबकी आरतीका समय हो गया—ग्रन्थीजीने जगाकर कीर्तनमें चलनेको कहा। सिर पर ओढ़नेको साफा या टोपी नहीं थी-इसलिए कंबल ओढ़े माथा टेककर कीर्तनमें बैठ गया।

जो भजन-कीर्तन हुए, वे सब वैष्णव धर्मसे मिलते-जुलते थे। भाषा भी समझमें आ रही थी। आरतीके बाद सुस्वादु कड़ा प्रसाद मिला।

गुरुद्वारेमें भोजनके लिए लंगरमें बैठना पड़ता है। इसमें छोटे-बड़ेका भेदभाव नहीं रहता। बड़े-बड़े अफसर और धनी सिक्ख भोजन परोसते हैं तथा अन्य सफाई वगैरहका कार्य बड़े प्रेमसे करते है।

गरम फुलके, दाल और आलू-प्याजकी सब्जी थी। भूखमें यह सादा खाना भी अमृत-तुल्य लगा। भोजनके बाद सबोंने अपनी थाली-कटोरीको राखसे अच्छी तरह मलकर धो पोंछकर रख दिया।

रातमें काफी सर्दी थी। व्यवस्थापकने ५ कम्बलें दीं—दो मेरे पास थीं। सोते ही खूब नींद आ गयी।

दूसरे दिन सुबह ६ बजे उठा। नित्य कर्मसे निवृत्त होकर तैयार हुआ—इतनेमें डांडी वाले आगये। आज चलना तो केवल ४ मील ही था, परन्तु चढ़ाई थी ५,००० फीटकी।

मैं अचानक ही, बिना प्रोग्रामके इस यात्रा पर निकल पड़ा था। इसलिए, गरम कपड़े साथमें नहीं ला सका था। दो कंबलें ओढ़कर डांडी पर बैठ गया। आमतौर पर १०-१२ हजार फीट पर हरियाली नहीं रहती, परन्तु इस अंचलमें ही विश्वप्रसिद्ध फूलों की घाटी है इसलिए हमें रास्तेमें जगह-जगह सुन्दर फूल और पौधे दिखाई दिये। वैसे बर्फ गल चुकी थी, परन्तु फिर भी दोनों तरफ पहाड़ोंके कोनोंमें बर्फकी चौड़ी पट्टी थी। कहीं-कहीं इनके बीचसे झाँकती हरियाली प्रकृतिकी जीवन शक्तिका परिचय देती थी। काफी कड़ी चढ़ाई पड़ती है, हवा भी पतली है।

डांडी वाले धीरे-धीरे रेंगतेसे ऊपर चढ़ रहे थे, जब थक जाते तो आराम करने लगते। मुझे उनकी थकावट देखकर कैसा ही लग रहा था, परन्तु मेरा इतनी ऊँचाई और खड़ी

चढ़ाई पर जानेका पहला ही मौका था। फिर भी बीच-बीचमें पैदल चलनेसे उन्हें राहत मिल जाती थी। हमें कुछ पहाड़ी मजदूर लोहेके खम्भे लिए हुए ऊपर जाते मिले। गोविन्दघाट गुरुद्वारेसे १२ मीलकी चढ़ाईके उन्हें २० रु० मिलते है। एक मन बोझ लेकर दो दिनोंमें अथक परिश्रम करके वे ऊपर हेम-कुण्ड पहुचते है जहाँ पर गुरुद्वारे का निर्माण हो रहा है।

एक अधेड़ सिक्ख दम्पत्ति मेरे साथ-साथ पैदल चल रहे थे। आधी दूरी तो हिम्मत करके पत्नीने किसी प्रकार पार कर ली इसके वाद एक शिला पर वैठ गयी। पतिकी वहुत आरजू-मिन्नतके वाद भी वह जानेको तैयार नहीं हुई। मैंने अपनी डांडीमें वैठ जानेको कहा, परन्तु ऐसा लगा कि वे पैदल यात्रा की मनौती मानकर घरसे चले थे। हम जव करीव एक मील रह गये तो वहुत ऊँचे पर एक झण्डा दिखाई दिया। डांडी वालेने वताया कि वहीं हेमकुण्ड लोकपाल है। ऊँचाई देखकर मनमें कैसा ही भय—सा समा गया। रामनामका जप करता हुआ आँख मींचकर डांडी पर वैठ गया। जीवनमें पहाड़ों पर काफी घूमा हूँ, परन्तु इतनी कड़ी ऊँचाई कहीं भी देखनेमें नहीं मिली। मेरे ऊपर पहुँचनेके थोड़ी देर वाद ही वे दोनों भी थके-हाँफे ऊपर पहुँच गये।

१५,१०० फीट पर यह पवित्र स्थान है—इतनी ऊँचाई पर आनेका मेरा पहला मौका था। हवामें आक्सीजनकी कमीके कारण पतलापन था, फिर भी श्वास लेनेमें खास तकलीफ

नहीं हुई। वहाँ जाकर जो कुछ देखा, वह तो वर्णनातीत था। तुलसीदासजीकी उक्ति याद आ गयी, "गिरा अनयन, नयन बिनु पानी।"

सातों चोटियोंके बीच की घाटीमें एक सुन्दर सरोवर है—उसके किनारे एक छोटा-सा गुरुद्वारा बना हुआ है। कहते है इसके भीतर रखी हुई शिला पर पूर्व जन्ममें गुरू गोविन्द सिंहजीने तपस्याकी थी।

नये गुरुद्वारेका भव्य भवन बन रहा था। वर्षमें केवल तीन महीने काम हो पाता है, इसलिए पाँच वर्ष हो गये और समाप्ति में और पाँच वर्ष लग जायेंगे। ५० लाख रुपये इसके लिए श्रद्धालु सिक्खोंने इकट्ठा किया है। ७४ वर्षीय रिटायर्ड इंजीनियर श्री बसनसिंहजी प्रति वर्ष तीन महीने यहाँ रहकर निर्माण कार्यकी देखभाल करते हैं—और भी तीन-चार स्वयं-सेवक उनके साथ रहते हैं। चौगुनी मजदूरी देकर नीचेसे मजदूर लाते है, जिनमें से कुछ ठंढ और पतली हवा नहीं सह सकनेके कारण वापिस चले जाते हैं। उन सबके रहनेके लिए चार-पाँच कोठरियाँ बनी हुई है।

'वाह गुरुजीकी फतह' के बाद गर्म चायका गिलास मिला। ग्रन्थीजीने गुरुग्रन्थ साहबके दर्शन कराये। सरोवर में स्नान करनेका मन तो बहुत था, परन्तु हड़कम्प ठंढके कारण विचार छोड़ दिया। मेरे साथ आये हुए पति-पत्नीने जल्दीसे २-३ डुबकी ले ली।

गुरु गोविन्द सिंहजीने अपनी वाणीमें कहा है कि 'चित न भयो हमारो आवनको।' वास्तवमें ही यह जगह ऐसी रमणीक और पवित्र है कि नीचे उतरनेका जी नहीं चाहता। यहाँसे ४,००० फीटकी ऊँचाई पर सात चोटियोंके बीचकी चोटी पर एक झंडा फहरा रहा था। पूछने पर पता चला कि कुछ हिम्मती सिक्ख प्रतिवर्ष वहाँ जाकर झंडा लगाते हैं।

संयोगसे आती दफे रास्तेमें वे लोग मुझे मिले। उन्होने बताया कि यद्यपि ऊपर जानेका तो रास्ता नही है, पर 'वाह गुरु' का जाप करते हुए किसी न किसी प्रकार पहुँच जाते हैं।

बाबाजीने भोजनके लिए ठहरनेका आग्रह किया, परन्तु डांडी वालोंको नीचे उतरनेकी जल्दी थी और मैं रास्तेकी बीहड़ता और सूनेपनको ध्यानमें रखकर उनके साथ ही जाना चाहता था इसलिए आधा घंटा ठहरकर वहाँसे रवाना हो गया।

मातृ दर्शन

सन् १६५७ की अक्टूबरकी एक साँझ—सुहावनी संध्या—गुलाबी मौसम शिवाजी देवी भवानीके मन्दिरसे बाहर आये तो चकित रह गये।

खच्चरों और बैलोंका लम्बा-सा कारवाँ—हीरे, पन्नों और जवाहरातों भरे सोने-चाँदीसे दबे पशु धीरे-धीरे किलेमें प्रवेश कर रहे थे।

पंत प्रधान मोरोपंतने जिज्ञासा शान्तकी—महाराज, अम्बाजी सोनदेवने कल्याणके सूबे पर अधिपत्य कर लिया है और लूटका सामान लेकर आये हैं। शिवाजीने अम्बाजीको गले लगाया और बहुमूल्य कंठहारसे पुरस्कृत किया। वे विस्मित थे कि कल्याणका शक्तिशाली सूबेदार इतनी आसानीसे कैसे हार गया।

शाबाश अम्बाजी, तुम्हारी स्वामी-भक्ति और बहादुरी पर हमें गर्व है। शिवाजीकी छाती फूल उठी अपने बहादुर सेना-पतिको देखकर।

पर वे चौंके, पूछा, इस पालकीमें क्या है? अम्बाजीने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, महाराज इस पालकीमें कल्याण

की सबसे सुन्दर नाजनीन है। मुल्ला अहमदकी पुत्र-वधू सलमा, जिसकी खूबसूरतीकी शोहरत सारे महाराष्ट्रमें फैली हुई है। इसके क्रूर श्वसूरने सैकड़ों हिन्दू ललनाओंके आबरूके साथ खेला है—आज उससे बदला लेनेका सुन्दर अवसर मिला है।

अम्बाजी अपनी सफलता पर फूले नही समा रहे थे।

परन्तु शिवाजी विचलित हो उठे, उन्होंने आँखें मूँद ली—उन्हें अपना बचपन याद आने लगा।

पिता शाहजी बीजापुरके सुलतानोंके यहाँ जागीरदार एवं फौजी अफसर थे। तीन हजार मराठा घुड़सवार और पैदल सिपाहियोंकी उनकी निजी फौज थी। माता जीजा बाई कर्तव्यनिष्ठ, साहसी एवं धर्मपरायण थी किन्तु परमात्माने उन्हें रूप नहीं दिया था।

शाहजीने तीस वर्षकी अवस्थामें तुका बाई नामकी एक युवतीसे विवाह कर लिया और उसीके साथ बंगलौरमें रहने लगे। सन् १६२६ में उन्होंने जीजा बाईको दो वर्षके पुत्र शिवा के साथ शिवनेरके किलेमें भेज दिया। दुखिया जीजाबाईने अपना सारा प्यार बालक शिवा पर उढ़ेल दिया और धैर्यपूर्वक दिन बिताने लगी।

सौभाग्यसे दादाजी कोणदेव जैसे स्वामिभक्त अभिभावक तथा समर्थ गुरु रामदासका मार्ग दर्शन मिला। इस कारण

बचपनसे ही शिवामें अच्छे संस्कार जमने लगे, साहस और वीरताके साथ धर्मके प्रति आस्थाके लक्षण नजर आने लगे।

उन दिनों विवाह बचपन में ही हो जाते थे। वे चौदह वर्षके हुए तो माताने पतिको उनके विवाहके लिए लिखा। शाहजीने उन दोनोंको बंगलौरमें अपने निवास स्थान पर बुला लिया। वहाँ सौत तुका बाईने उनका तरह-तरहसे अपमान किया। परन्तु जीजा बाईने बारह वर्षकी कठिन तपस्या से अपने को बहुत संयत कर लिया था।

उन्होंने शाहजी से केवल इतना कहा—आपके सुख में ही मेरा सुख है। आपका सारा धन और जागीर तुका बाई और उनके पुत्र व्यंकोजीको फलेफूले। शिवाको केवल पूनाका गाँव दे दीजिये। फिर यदि उसमें योग्यता होगी तो वह उसे बढ़ा लेगा।

इस प्रकार पन्द्रह वर्षकी छोटी सी अवस्थामें वे पूनाके जागीरदार बने। उन्होंने घुड़सवारोंकी एक छोटी सी टुकड़ी तैयार कर ली और मौका देखकर आसपासके इलाकों पर छापे मारने लगे। मुसलमान सुलतानों और अधिकारियोंके अत्याचारसे लोग बहुत दुखी थे इसलिए उनको विशेष रोकथाम नहीं मिली। लूटका सामान लाकर माताके सामने रख देते। इसमेंसे तीसरा हिस्सा सिपाहियोंमें बाँट दिया जाता। कुछ अंश जीर्ण-शीर्ण मन्दिरोंके पुनरुद्धार, कुएँ, बावलियोंकी मरम्मत

या निर्माणमें व्यय किया जाता। बाकी बचा हुआ, बेहतरीन घोड़े और नये-नये अस्त्र-शस्त्रके खरीदनेमें लगाया जाता।

सर्व प्रकारसे साधन सम्पन्न होते हुए भी वे अपनेको स्वामी रामदासका सेवक मात्र मानते थे। इसीलिए अपने ध्वज का रंग भी भगवा रखा। सन् १६५७ में उनकी अवस्था केवल तीस वर्षकी थी, किन्तु इसी बीच महाराष्ट्रके बहुतसे किलों पर कब्जा कर लिया। बीस हजार सुसज्जित मराठा वीरोंकी उनके पास फौज थी। दुश्मनोंकी बड़ीसे बड़ी फौज पर बाजकी तरह झपटते और लूटकर वापस रायगढ़के अपने अभेद्य दुर्गमें चले आते। पचीस कोसका धावा मारकर मराठा फौज रायगढ़ बेखटके वापस पहुँच जाती तो लोगों को शुरू-शुरूमें विश्वास नहीं होता। बादमें अफगानों और पठानोंमें धारणा बन गयी कि शिवाजीको जिन्नातोंका सहारा है। फिर तो वे उनका नाम सुनते ही हथियार छोड़ भाग खड़े होते।

दिन-रात युद्ध में लगे रहने पर भी अपनी मातासे उन्हें धार्मिक प्रेरणा मिलती रहती थी। यद्यपि हिन्दू धर्मके प्रति पूरी आस्था थी, यवनोंके आये दिनके अत्याचार और मन्दिरोंके विध्वससे उनका चित्त बहुत खिन्न हो उठता, फिर भी दूसरे धर्मोंकी उन्होंने कभी निन्दा नहींकी और न किसी मस्जिद अथवा गिरजेको नष्ट-भ्रष्ट किया। यही नहीं उन्होंने जीर्ण-शीर्ण मस्जिदोंकी मरम्मत भी कराई। अपने सेनापतियोंको भी

आदेश दे रखा था कि किसी भी धार्मिक स्थानको हानि न पहुँचायी जाय और न दुश्मनोंकी किसी स्त्रीकी वेइज्जती हो।

शिवाजीने देखा कि जवाहरातोंसे सजी हुई एक परम सुन्दरी युवती सहमी और सिमटी सी एक ओर खड़ी है। कुछ देर तक वे अपलक उसकी ओर देखते रहे। फिर कहने लगे—वहन उम्रमें तुम मेरेसे छोटी हो पर तुममें मुझे अपनी मातुश्री दिखाई देती है। फर्क इतना ही है कि परमात्मा ने तुम्हें अतुलनीय रूप सम्पत्ति दी है, लगता है, फुर्सतके समय अत्यन्त साधसे तुम्हारी रचना की है। सौभाग्यसे इस सौन्दर्यका थोड़ा सा अंश भी मेरी माँको मिल जाता तो उसे दुहागका दुःख नहीं सहन करना पड़ता और मैं भी सुंदर होता। मेरे सेनापतिने तुम्हारा अपमान किया, तुम्हें बिला-वजह तकलीफ दी। जिस धारणासे वह तुम्हें यहाँ ले आया, उसे सोचकर लज्जासे मेरा सर झुका जा रहा है, यदि माँ और गुरूजी सुनेगें तो सोचेंगे इसके लिए शिवाका संकेत अवश्य रहा होगा। तुम चिन्ता न करो। तुम्हें इज्जतके साथ तुम्हारे खाविन्दके पास पहुँचा दिया जायगा। मेरे वहन नहीं है, आजसे तुम मेरी छोटी वहन हुई और मैं तुम्हारा वड़ा भाई।

पास खड़े सैनिकोंने देखा शिवाजीकी आँखें गीली हो गयी हैं। थोड़ी देर वाद आश्वस्त होकर क्रोधमें काँपते हुए उन्होंने कहा—अम्वाजी, तुमने अपनी मूर्खतासे इतनी बड़ी

जीतको हारमें बदल दिया। लोग जब सुनेंगे कि शिवाजी भी अपने हरमके लिए पराई बहू-बेटियोंको लूटता है तो हमारे बारेमें क्या सोचेंगे। कहाँ रह जायगी मेरी इज्जत? फिर तो मराठे सिपाही और सरदार औरतोंको दिन-दहाड़े बेआबरू करेंगे। पिछले चौदह वर्षोंसे तुम मेरे साथ हो। क्या कभी इस प्रकार की इच्छा या लालसा का आभास भी तुम्हे दिखाई दिया? फिर कैसे तुम्हें हिम्मत हुई कि मेरे आदेश की उपेक्षा कर एक अबला दुःखी नारीको यहाँ ले आये। अम्बाजी तुमने मेरी आबरूमें बट्टा लगा दिया। यदि राजा स्वयं अपना शील खो बैठेगा तो सैनिकोंका तो बाँध ही टूट जायगा। क्या यही मेरी हिन्दू पद-पादशाहीका रूप होगा? कसूर तो तुम्हारा इतना है कि तुम्हे फांसी पर लटका दिया जाय। किन्तु, चूंकि इस समय मैं स्वयं क्रोधमें हूँ, इसलिए तुम्हारा फैसला मैं प्रधान मंत्री मोरोपंत पर छोड़ता हूँ।

कहाँ तो अम्बाजी विजयकी खुशीमें झूमता हुआ आया था और कहाँ सबके सामने उसे यह अपमान सहना पड़ा। पंत प्रधान मोरोपन्तका अम्बाजी पर स्नेह था। उसने अपनी देख-रेखमें उसे सब प्रकारसे योग्य बनाकर इतने बड़े ओहदे पर पहुँचाया था। हाथ जोड़ते हुए शिवाजीसे उन्होंने प्रार्थना की कि महाराज अम्बाजी अभी युवक है और कुछ अबोध भी, किन्तु वीर और सच्चा स्वामिभक्त है। यह इसका पहला अपराध है, इसे क्षमा किया जाय।

सलमा समझनेकी कोशिश करने लगी कि शिवाजी इन्सान या फरिश्ता।

उसके स्वसुरके यहाँ लड़ाईमें जीती हुई सैकड़ों स्त्रियाँ लायी जातीं। कुछको तो चुनकर वह अपने लिए रख लेता, बाकियों को सिपाहियोंको बाँट देता। उसकी आँखोंसे अश्रुओंकी अविरल धारा फूट पड़ी।

कुछ दिन बाद सलमा विदा हो रही थी, भाईके यहाँसे अपने ससुराल। शिवाजीने अपनी मुँह बोली बहिनको गले लगाकर विदाई दी। खच्चरों और घोड़ों पर दहेजका सामान था। सुनहरे-रूपहले पर्दोंसे ढंकी पालकीके बगलमें सुरक्षाके लिए घोड़े पर चढ़ा हुआ जा रहा था अन्नाजी सोनदेव। अब वह अपने महाराजकी थातीको वापस लौटाने जा रहा था।

पालकी जब आयी थी, तो सिसक रही थी भय, चिन्ता और आशंकाके आँसुओंसे—पालकी जब जा रही थी तो भी सिसक रही थी, प्यार, आनन्द और उल्लास भरे आँसुओंसे।

सम्राट और साधु

तेइस सौ वर्ष पहलेकी बात है, यूनानी विजेता सिकन्दर तुर्की आदि देशोंको रौंदता हुआ हमारे यहाँ पंजाब और सिन्धमें पहुँच गया। उसके साथ साठ हजार फौज थी जिनमें प्रशिक्षित घुड़सवार, तीरन्दाज और पैदल सैनिक थे। उनके पास बेहतरीन किस्मके तीर-धनुष, भाले और तरह-तरहके नये हथियार थे। वर्षों पहले यूनान सेरवाना हुआ, कहीं भी पराजय नहीं देखी, इसीलिये मनोबल ऊँचा था।

पंजाबमें उस समय पुरु नामका पराक्रमी और वीर राजा था। वह औरों की तरह सहज ही में परास्त न किया जा सका। अनेक प्रकारके छल-कपट और देशद्रोही सैनिक अधिकारियोंसे भेद लेकर सिकन्दरने उसके राज्यको जीत लिया। वहाँ की व्यवस्था करनेके बाद वह पाटलिपुत्र, मगध और वैशालीकी ओर बढ़ना चाहता था जो उन दिनो भारतके समृद्धतम राज्योंमें थे।

इसी बीच, उसने सुना कि रावीके तट पर एक त्रिकालदर्शी महात्मा रहते हैं। सिकन्दरके मनमें उनसे मिलनेकी इच्छा हुई। दूसरे दिन, अपने कुछ अधिकारियोंको उन्हें बुलानेके लिये एक सुसज्जित रथ के साथ भेजा। साधुके आश्रम पर पहुँचकर

उन्होंने सिकन्दरका सन्देश सुनाया। महात्माजीने कहा "भाई, मैं यहाँ वनमें रहकर जितना हो पाता है परमात्माके चिन्तनमें लगा रहता हूँ। राजा-महाराजाओंको मुझ जैसे व्यक्तियोंसे भला क्या काम?" सेनाके अधिकारी पशोपेशमें पड़ गये। सम्राट सिकन्दर महानके निमंत्रणको आज तक किसीने अस्वीकार करनेका साहस नहीं किया था। उन्हें चिन्ता हुई कि वे क्या उत्तर देंगे। सिकन्दरने चलते समय यह भी कह दिया था कि संयासीसे जोर-जबर्दस्ती न की जाय। उन लोगोंने बहुत अनुनय-विनयकी, किन्तु महात्माजी नहीं गये।

डरते-डरते सैनिक अधिकारी सिकन्दरके शिविरमें आये। सम्राटने जब सुना कि उसके आदेशकी अवज्ञा हुई तो नथुने फड़क उठे। महात्माजीको हाजिर करनेके लिए कड़क कर आदेश देनेको ही था कि उसे अपने गुरु अरस्तूकी बात याद आयी। विश्व-विजय अभियानके पूर्व उसने कहा था कि भारत विचित्र देश है, धन-धान्य और शौर्यसे पूरित, किन्तु वहाँ वैभव माना जाता है त्याग मे, भोगमें नहीं। तुम देखोगे कि वहाँके लोग आध्यात्म चिन्तनमें अतुलनीय है।

सिकन्दरने सोचा कि गुरुकी बात परखनेका अच्छा मौका है। आदेशकी प्रतीक्षामें खड़े अधिकारियोंसे गंभीरतापूर्वक इतना ही कहा कि वह स्वयं ही जायगा।

अगले दिन सैकड़ों घोड़ो, हाथी और सैनिकोंके साथ वह महात्माजीकी पर्णकुटी पर पहुँचा। जाडेके दिन थे, ठंडी तेज

हवा चल रही थी। वैसे भी पंजाबकी सर्दी कड़ी होती है। उस
देखा, वे सिर्फ एक लंगोटी लगाए ध्यानमें बैठे है। वह आगे
बढ़ा और अपने सेनापतियोंके साथ बिल्कुल करीब आकर खड़ा
हो गया, फिर भी महात्माजी का ध्यान न टूटा। उनके मुख
मण्डल पर ऐसी आभा दिखाई पड़ी कि विश्वविजेता सिकन्दर
आत्म-विस्मृत-सा देखता रहा। कुछ देर बाद समाधि भंग
हुई। उनके सामने भेंट लाये हुए फल-फूल, शाल-दुशाले
रत्नादि सोनेके थालोंमें सजा कर रख दिये गये।

महात्माजीने कहा—"भाई ईश्वरके दिये ताजे फल मुझे
वृक्षोंसे हमेशा मिल जाते है। माता रावी दूधके समान
स्वच्छ जल पीनेके लिए दे देती है। दिनमें भगवान सूर्य गरमी
पहुँचा देते हैं और रातमें कुटीमें जाकर वल्कल ओढ़ लेता हूँ।
फिर भला, मुझे इन चीजोंकी क्या आवश्यकता है ?"

सिकन्दरने कहा, "इतनी ठंढी हवा चल रही है और आपके
शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं, हम पाँच-पाँच गर्म कपड़े पहने हुए
हैं, फिर भी सर्दी लग रही है।" महात्माजीका उत्तर था,
"राजन, यह तो अभ्यासकी बात है, जैसे, तुम्हारी नाक और
मुँहको ठंढ सहनेका अभ्यास हो गया है, वही बात मेरे सारे
शरीर पर लागू होती है।"

सिकन्दर घुटने टेक कर उनके पास बैठ गया। वह कहने
लगा, "महाराज मैंने इतने सारे देश जीते, मेरे पास अपार धन-
राशि है और असंख्य दास-दासियाँ, फिर भी, न जाने क्यों

मेरे मनमें अशान्ति बनी रहती है और अधिक पानेकी लालसा मिटती नहीं।" महात्माजीने उसके ललाटकी ओर देखते हुए कहा, युवक सम्राट! जिसकी तृष्णा मिटी नहीं वह चाहे कितना ही धनी हो, मनसे भिक्षुक होता है, यह बात तुम्हारे लिये भी है। अपनी महत्वाकांक्षाके आवेशमें तुमने इस छोटी-सी आयुमें कितनी महिलाओंको विधवा किया, बच्चोंको अनाथ बनाया, गाँव और खेड़े उजाड़ दिये, मगर अतृप्त ही रहे। अब भी तुम्हारे मनमें इसी प्रकारकी भूल करनेकी प्रबल इच्छा है। परन्तु यह सब किस लिये? ये सारे धन दौलत, फौज, हथियार तुम्हारे काम नहीं आयेंगे। जीवनकी घड़ीको एक पल भी नहीं बढ़ा पायेंगे।

सिकन्दरके साथी आश्चर्य कर रहे थे कि जिसके सामने बड़ेसे बड़े पराक्रमी योद्धा, राजा और सम्राट सर झुकाते रहे, वह आज एक मामूली फकीरसे हाथ बाँधे कह रहा है कि मेरा भविष्य क्या है, इसे बतानेकी कृपा करें।

महात्माजी थोड़ी देर मौन रहे। फिर उन्होंने कहा, लगता है कि जीवनकी उपलब्धियोंकी सीमा पर तुम आ गये हो। इस समय तुम्हारी आयु ३३ वर्षकी है। आजसे एक सौ बीस दिन बाद तुम्हारा ऐहिक जीवन समाप्त हो जायगा। दुर्योगसे तुम अपने परिवारवालोंसे भी नहीं मिल पाओगे। क्योंकि तुम्हारी मृत्यु रास्ते में एक गाँवमें होगी। जीवनके इस थोड़ेसे समयको यदि भगवत् भजन और अच्छे कामोंमें लगा पाओ

तो तुम्हें शान्ति मिलेगी। आजतक जोर-जुल्म कर बहुतोंसे लिया, अब जरूरतमन्दोंको, दीन-दुखियोंको देनेका आयोजन करो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है। यह शाश्वत सत्य है कि धन और धरती किसीके साथ जाती नही। मनुष्य जैसे खाली हाथ आता है, वैसे ही संसारसे चला जाता है।

महात्माजीका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि सिकन्दर महान विजय अभियानके लिए पूर्वकी ओर न बढ़कर वहीसे वापस लौट गया। महात्माजीके बताये हुए दिन उसकी मृत्यु हो जायेगी, इसका एक भय-सा उनके मन पर छा गया।

कहा जाता है कि आखिरी दिनोंमें उसके मनोभावोंमें परिवर्तन आ गये। वह पहले जैसा नहीं रह गया जिसकी भृकुटि मात्रसे बड़े-बड़े सेनापति और राजा आतंकित हो उठते थे।

इतिहास प्रसिद्ध है कि बेबीलोनके एक गाँवमें अपनी मृत्युके दिन सम्राटने सभी प्रमुख दरबारियों एवं सेनानायकोंको बुलाया और उन्हें आदेश दिया कि सभी जवाहरात, आभूषण, हाथी-घोड़े, रथ और मेरी निजी तलवारको मृत्युके बाद मेरे शवके पास सजा देना। ध्यान रहे, दोनों हाथ चादरसे बाहर निकले रहें ताकि लोग देख सके कि विश्वविजेता सम्राट सिकन्दर अपना समस्त वैभव पृथ्वी पर छोड़कर खाली हाथों जा रहा है।

विश्व का सबसे धनी हावर्ड ह्यूजेस

सन् १९६० तक मान्यता थी कि फोर्ड और राकफेलर विश्व के सबसे धनी है। वैसे पहले पन्द्रह धनियोंमें आगा खॉ और निज़ाम हैदराबादका नाम भी लिया जाता था। परन्तु समय बदलता रहता है—आज निजाम हैदराबाद और आगा खॉ के उत्तराधिकारी केवल १०-१५ करोड़के आसामी रह गये है। उन जैसे सैकड़ों हजारों धनी विभिन्न देशोंमें बिखरे पड़े है।

फोर्ड और राकफेलर घराने यद्यपि पहले दस धनियोंमें है, जबकि पिछले बारह वर्षोंसे प्रथम स्थान मिल गया है हावर्ड ह्यूजेस को, जिसके पास लगभग १२०० करोड़ की सम्पत्ति कूँती जाती है।

हारल्ड रोबिन्सका प्रसिद्ध उपन्यास 'कारपेट बैगर्स' पढ़ रहा था। प्रकाशकोंका दावा है कि इसकी लगभग ६० लाख प्रतियॉ बिक चुकी है। मुझे भी इसका वर्णन रोचक किन्तु अजीब-सा लगा। २० प्रतियॉ खरीदकर मित्रोंको भेंट दी। उपन्यास के नायक जोनाका करोड़पति पिता मर गया। उसकी लाश को छोड़कर वह अपनी युवती विमाता रोना (जो विवाहसे पहले उसकी प्रेयसी थी) के पास जाकर प्रेमालाप करने लगा।

रोना कहती है कि अगर तुम्हारा पिता आ जायेगा, तो उसका जवाब होता है कि पिता अब कभी नहीं आयेगा। इसी प्रकार की और भी बहुत-सी बातें इस किताबमें हैं जो हमारे देश की लक्ष्मण रेखासे तो दूर हैं ही, फ्लावरकी मैडम बोवरी और लोरेन्सकी लेडी चेटरलीज़ लभरसे भी कहीं ज्यादा अश्लील है। पुस्तक पढ़ते हुए मैं सोच रहा था कि अगर यही अमरीकी जीवन है तो फिर हम भले और हमारा देश भला।

जानकार मित्रोंने बताया कि उपन्यासका जोना वास्तवमें हावर्ड ह्यूजेस है, जिसकी जीवनी पर यह उपन्यास आधारित है।

इसके बाद ह्यूजेस के बारेमें अधिक जानकारी लेने की इच्छा हुई। जो कुछ सामग्री मिली, उसे जान-सुनकर ऐसा लगा कि अत्यधिक धन-सम्पत्ति अधिकांश मनुष्योंको वास्तवमें ही बौरा देती है, खास करके जवानी के समय में।

१९०५ में ह्यूजेस का जन्म हुआ। उसका पिता एक सफल उद्योगपति था। प्रथम महायुद्ध में उसका बारूद और हथियारोंका कारखाना था, जिसके लाभसे युद्ध समाप्तिके समय उसके पास १५-२० करोड़ रुपये हो गये।

उसकी मृत्यु पर २० वर्षके युवक पुत्र के हाथमें व्यापार-उद्योग आया। पहले से ही पिता-पुत्रमें मेल नहीं था, क्योंकि उस छोटी उम्रमें ही जितनी आदतें बहुतसे उच्छृंखल धनी युवकोंमें होती हैं, वे सब पर्याप्त मात्रामें ह्यूजेसमें थीं।

पिताके मरने पर थोड़ समयके लिए पुरानी आदतें छोड़कर जिस दृढ़ता और लगनसे उसने कारवार को सम्हाला और बढ़ाया, इसे देखकर दूसरे उद्योगपतियों और उसके अपने कारखानेके कर्मचारियों को आश्चर्य हुआ।

शुरूसे ही वह दक्ष पाइलेट था, उसने हवाई जहाज वनानेका कारखाना खोला और उसके हवाई जहाजोंने तेज चलनेमें विश्वमें नया रिकार्ड कायम किया। उसने स्वयं भी तेज उड़ानो के लिए राष्ट्रीय इनाम जीते, जिससे उसका चारों तरफ नाम फैल गया और उसके उद्योगो को बड़े आर्डर मिलने लगे।

१६३१ में विश्व में, खास करके अमरीका मे वड़ी मंदी आयी। घटे दामोंमें भी चीजों के खरीददार नहीं थे। ह्यूजेस ने हिम्मत करके जमीन, मकान, फिल्म स्टूडियो, विभिन्न उद्-योगों के शेयर, वड़े-वड़ होटल-मोटल और कैवरे खरीद लिये। अगले ७ वर्षो में यूरोपमें द्वितीय महायुद्ध की तैयारी होने लगी। उसकी खरीदी हुई वस्तुओं के दाम वहुत बढ़ गये और कारखानों को अनाप-सनाप आर्डर मिले। सन् १६४५ में जव युद्ध समाप्त हुआ तव उसके पास ५००-६०० करोड़ रुपये हो गये। उन दिनों अमरीकामें कैपिटल नफे पर टैक्स बहुत कम थे। तेरह वर्षोंमें ३० करोड़ से ५०० करोड़ होना एक अचम्भे की सी वात है, इस सन्दर्भमें मुझे अपने देश की नयी दिल्लीकी वात याद आजाती है।

१६२२ में मेरे एक जान-पहचानके व्यक्तिने रेटेन्डन रोड में १२००० गज जमीन ४,५००) रुपयेमें खरीदी। उस समय वहाँ जंगल था। रातमें सियार, गीदड़ और अन्य वन्य पशु घूमते रहते थे।

नयी दिल्ली बढ़ती गयी, उसी अनुपातमें जमीनोंके दाम भी ऊँचे होते गये। आज भी वह जमीन उसी व्यक्तिके पास है और उसकी कीमत है—२५०) रुपये प्रति गजके हिसाबसे लगभग तीस लाख रुपये।

अमरीका और यूरोपमें ह्यूजेसके बारे में अनेक प्रकारकी किम्वदंतियाँ फैलने लगीं। हजारों स्त्री-पुरुष विभिन्न कामोंसे उससे मिलने का प्रयत्न करने लगे। उसके पाँच सचिवोंके जिम्मे तो केवल यही काम था कि उनमेंसे थोड़े से लोगोंको चुनकर ह्यूजेससे मिलने दिया जाय।

इतना व्यस्त रहते हुए भी उसकी एक अपनी रंगीन दुनिया थी, जिसके लिए वह बहुत जरूरी कामोंको छोड़कर पर्याप्त समय निकाल लेता था। भेष बदलकर बदनाम जुआघर कैबरे और रात्रिक्लबोंमें वह प्रायः ही चला जाता।

पाँच-दस की जगह सौ-दो सौ डालर की बक्सीश देता, इसलीये वहाँ की सब नर्तकियाँ उसके इर्द-गिर्द इकट्ठी रहतीं। उनमेंसे दो-चार को चुनकर वह गुप्त फ्लैटमें ले जाता। उन सब स्थानों का पता केवल उसके निजी सचिवको ही रहता और वह भी बहुत जरूरी होने पर ही वहाँ फोन करता।

१९६५ में ह्यूजेस साठ वर्ष का हो गया। उस समय उसकी सम्पत्ति थी, लगभग १२०० करोड़ रुपये और अब वह विश्व का सबसे धनी व्यक्ति था।

निजाम हैदराबादकी तरह ह्यूजेस भी बहुत साधारण लिबासमें रहता है। एक बार सैरके लिए लन्दन गया। उसे अपनी किसी प्रेमिकाको एक हीरों का हार उपहार देना था। वहाँकी रिजेण्ट स्ट्रीट की एक प्रसिद्ध जवाहरात की दूकान में चला गया। साथमें उसका निजी सचिव था। वेश-भूषा देखकर उन्होंने पचास-साठ हजारके कई हार दिखाये। उसने कहा मुझे कीमती हार चाहिए, दो-चार लाखके दिखाये गये। ह्यूजेस ने कुछ रोबसे कहा कि मैंने सुना था कि आपकी दूकान में बेहतरीन गहने रहते है, फिर यह सब सस्ती चीजें दिखाकर मेरा और अपना समय क्यों नष्ट कर रहे हैं।

अगर भारतीय जौहरी होते तो समय को व्यर्थ बरबादी समझकर उसे टरका देते, परन्तु यूरोपके दूकानदार बहुत शालीन और सभ्य होते है। उन्होंने एक पन्द्रह लाखका हार दिखाया। हार खरीदकर उसने अपने सचिवसे चेक देनेको कहा। जब दुकानवालोंको पता चला कि अरबपति हावर्ड ह्यूजेस उनकी दूकानमें खड़ा है, तो फिर लगे खातिरदारी करने और दूसरी कीमती चीजें दिखाने।

१९६६ में वह इकसठ वर्ष का था। परन्तु ऐय्यारी, अबाध भोग-विलास और नाना प्रकारके व्यापारिक झंझटोंके

कारण उसका शरीर थक गया। याददाश्त भी कम हो गयी। लोगों मे चर्चा होने लगी कि वह विक्षिप्त होता जा रहा है। आखिर उसने मौज-शौक और व्यस्त जीवनसे ऊबकर अवकाश लेने का तय किया।

न्यूयार्क, लासएंजल्स और हालीवुड महलोंको छोड़कर लासवेगास में रहने का तय किया।

तीस वर्ष पहले टी० डब्लू० ए० (प्रसिद्ध हवाई जहाज कम्पनी) के ६६ लाख शेयर लगभग २५ करोड़ में खरीदे थे। वे ४१५ करोड़ में बेच दिये।

लासवेगासमें कुछ दिनों तक तो वह ठीक से रहा, परन्तु फिर पुराने संस्कार उभरने लगे और १९७० तक के ४ वर्षोंमें वहाँ पर बहुतसे जुआघर, कैबरे, रात्रि क्लब और होटल-मोटल खरीद लिये, जिनकी कीमत थी १५० करोड़। अपने रहनेके लिये एक बहुत बड़े होटलका पुर्ननिर्माण कराया, जिसके चारों तरफ काँटेदार बिजलीके तार हैं, रात-दिन कड़ा पहरा रहता है। एक प्रकार से उसे भव्य और सुन्दर जेलखाना ही कहना चाहिये।

मनमें कुछ इस प्रकारका भय-सा समा गया है कि बाहर नहीं निकलता। उसके विशेष सचिव और कुछ प्रेमिकाएँ भी फोन पर ही बात कर लेती है। केवल निजी डाक्टर जाँच और चिकित्साके लिए मिल पाते हैं।

वैभव, विलास और अन्त

पिछले एक लेखमें मैंने विश्वके सबसे धनी हावर्ड ह्यूजेसके बारेमें लिखा था। उसके पास १२०० करोड़की सम्पत्ति है। आय है लगभग पचीस लाख प्रतिदिन यानी १७००) रुपये प्रति मिनट। इन सबके बावजूद ह्यूजेस अर्ध विक्षिप्त सा, लासवेगासके एक एकान्त महलमें रहता है।

वास्तवमें, इतनी बड़ी सम्पत्ति और आय आश्चर्यकी सी बात लगती है। पिछले दिनों मुगल साम्राज्यके उत्थान और पतन पर कुछ पढ़ते हुए मुझे बादशाह शाहजहाँकी धन-दौलतका जो ब्यौरा मिला उसकी तुलनामें ह्यूजेस, मैलन, राकफेलर, फोर्ड और ओनासिस बहुत ही गरीब दिखायी देंगे।

अकबरके समयसे ही मुग़लिया खजानेमें जवाहरात और सोना जमा होना शुरू हो गया था, जो एक सौ वर्षोंमें शाहजहाँके शासन तक बढ़ता ही गया। इसके बाद १६५८ से १७०७ तक ४९ वर्षोंके औरंगजेबी शासनकालमें यह सब अथाह धन-दौलत समाप्तप्राय हो गयी। सिक्खों, राजपूतों, मरहठों और दक्षिणके सुलतानोंसे लड़नेके लिए औरंगजेबकी फौजमें सवार और पैदल मिलाकर लगभग सात लाख सिपाही थे, जो काबुल-कन्धारसे लेकर दक्षिणमें कर्नाटक तक फैले हुए थे। वह

स्वयं १६८१ से १७०७ तकके २६ वर्षोंमें अधिकांशतः दक्षिणकी लड़ाइयोंमें उलझा रहा इसलिए केन्द्रीय शासन खोखला होता गया और आयमें कमी होने लगी।

शाहजहाँका शासनकाल सन् १६२७ से १६५८ तक रहा। इन ३१ वर्षोंमें न तो देशमें कोई बड़ा अकाल पड़ा और न उल्लेखनीय युद्ध ही हुए। हाँ, दो हजार स्त्रियोंके शाही हरम, शाहजादे और शाहजादियोंकी मौज शौक और ऐय्याशियों पर बहुत बड़ा खर्च होता था। बादशाहकी अपनी बेगमोंके सिवाय सैकड़ों रखैलें और माशूकाएँ थीं। अमीर खलीलुल्ला खाँकी बेगम इनमें प्रधान थी, उसकी जूतियोंमें २० लाखके हीरे पन्ने जड़े थे। फिर भी शाहजहाँके जमानेमें आय इतनी अधिक थी, जिस कारण प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खजानेमे बढते चले गये।

शाही खजानोंके सिवाय वलीअहद दाराशिकोह, शाहजादी जहाँनआरा तथा अन्य बेगमों और शाहजादोंके अपने खजाने भी थे। बादशाहके जखीरा और भौरा नामके दो निजी खजाने थे, जिनकी लम्बाई–चौड़ाई ७०×३० फीट गहरायी १० फीट थी। इनमेंसे एकमें हीरे, पन्ने, मोती, माणिक आदि जवाहरात भरे रहते थे और दूसरेमें सोना-चाँदी। जब ये दोनों खजाने भर गये तो खजांचीने अर्जकी कि एक दूसरा बड़ा हौज और बनाना होगा एक दिन दक्षिणका सूबेदार मीर जुमला बादशाहके हुजूरमें आया। उसने अंडेके बराबर एक बेशकीमती

हीरा भेंट किया, जिसकी चमकसे दीवाने खास जगमगा उठा। उस समय तक गोलकुण्डाकी हीरोंकी खानें विश्वमें सबसे बड़ी थीं।

बादशाह बड़ी देर तक हाथमें लेकर हीरा देखता रहा। भेट मंजूर करते हुए कहा, मीरजुमला मा वदौलत तुमसे बहुत खुश हैं। इस वेहतरीन हीरेका नाम हम कोहेनूर रखते हैं।

अपने लन्दन प्रवासमें मैंने देखा कि वही कोहेनूर ब्रिटेनके बादशाहके ताजमें जड़ा हुआ टावर आफ लन्दनके संग्रहालयमें रखा हुआ है। मैं जब भी लन्दन पहुँचता, इस हीरेको अवश्य देखता। मनमें दुःख होना स्वाभाविक ही था। भारतीय इतिहासकी अनेक बाते उभर कर मानस पर छा गयीं।

शाहजहाँने तख्तेताऊस नामका सोनेका सिंहासन बनवाया। इसकी लम्बाई चौड़ाई १०×७ फीट थी और ऊँचाई १५ फीट। यह ठोस सोनेका था जिसमें बेशकीमती जवाहरात लगे हुए थे, और इसको बनानेमें सैकड़ों कारीगरोंको ८ वर्ष लगे थे। उस सस्तीके जमानेमें इस पर सात करोड़ रुपये लगे, जो आजकी क्रयशक्तिके हिसाबसे तीन-चार सौ करोड़के लगभग होगा। फारसके शाहने बादशाह जहाँगीरको एक अलभ्य मणि भेंटकी थी। वह भी इस सिंहासनमें जड़ी हुई थी। आज केवल उस मणिकी कीमतही कई करोड़ रुपये होगी। पता नहीं, अब वह किसी दूर देशमें है अथवा नादिरशाह या

अहमदशाह अब्दालीके वंशजने उसको छिपा रखा है या फिर जमींदोज होकर पृथ्वीकी गोदमें सो रही है।

इस संदर्भमें मुझे टर्कीमें इस्ताम्बूलके म्यूजियममें भूतपूर्व सुलतानोंके खजानेके दो पन्नोंकी याद आ जाती है। एकका वजन था १५०० और दूसरेका ९०० ग्राम। मैंने कल्पना भी नहींकी थी कि इतने बड़े पन्ने हो सकते हैं। क्यूरेटरसे कीमतके बारेमें पूछा तो उत्तर मिला कि दाम देकर विश्वका बड़ेसे बड़ा धनी भी शायद ही इन्हें खरीद सके। जिस प्रकार आपके कोहेनूरका इतिहास रहा है, उसी ढंगका इन पन्नोंका है।

हमारे देशमें रोम और ग्रीसकी तरह इतिहास लिखनेकी प्रथा नहीं थी इसलिए वाल्मीकि, पाणिनी और कालिदास जैसे विशिष्ट विद्वानोंके समयको लेकर केवल मन गढ़ंत अन्दाज लगाते है परन्तु मुगल बादशाहोंमें अपना रोजनामचा लिखनेकी आदत थी। उनके यहाँ अरब-फारसके सिवाय फ्रान्स और ब्रिटेनके विद्वान भी रहते थे, इसलिए उस समयके प्रामाणिक तथ्य और अंक उपलब्ध है।

सन् १६५८ में बादशाह शाहजहाँके पास, जब वह औरंगजेब द्वारा कैद कर लिया गया था, निम्नलिखित संपत्ति थी। छोटे बड़े तराशे और बिना तराशे हीरे ५० लाख, मानिक ६० लाख, पन्ना ६० लाख, और मोती ३६० लाख रत्ती थे। कुल मिलाकर सारा वजन ५३० करोड़ रत्ती होता है। आज इन सबकी

कीमत जोड़नेके लिए शायद कम्प्यूटरकी दरकार पड़े। हजारों तलवारें, कटारें और दूसरे हथियार थे, जिनकी मूठोंमें बेशकीमती हीरे-जवाहरात जड़े हुए थे। तख्तेताऊसके सिवाय बादशाह और शाहजादोंके लिए ठोस सोनेके नौ सिंहासन और थे। सैकड़ों सोने-चाँदीकी कुर्सियाँ थी। जिस सोनेके हौजमें बादशाह गुसल करता था, वह ७×५ फीट लम्बा चौड़ा था। इसमें बेशकीमती हीरे-पन्ने माणिक जड़े हुए थे। आज इसकी कीमत भी ५०-६० करोड़के लगभग होगी।

इन सबके सिवाय सात सौ मन सोनेके बरतन थे, जो आजके हिसाबसे लगभग ६० करोड़के होते हैं। ये सब बातें भूल भुलैयाकी सी लगती हैं पर हैं सब ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित।

१६५८ की १० जूनको आगरा गरमीसे लोहेके उबलते लावाकी तरह तप रहा था। औरंगजेबका बड़ा बेटा महमूद सुलतान पाँच हजार चुने हुए सिपाही लेकर लालकिलेमें गया। वहाँके सब पहरेदारोंको मौतके घाट उतार दिया और ६८ वर्षके बुजुर्ग दादा शाहजहाँको कैद कर लिया।

जिसकी टेढ़ी भृकुटीसे चारों शाहजादे और उनके पुत्र काँपते थे, जिस महमूद सुलतानको शाहजहाँने गोदीमें खिलाया था, उसी १८ वर्षके नौजवान शाहजादेके सामने आज वह बिलख-बिलख कर रो रहा था।

इसके वाद भी किलेकी ऊपरी बुर्जमें कैदी वादशाह सातवर्ष तक जिन्दा रहा। जिसकी खिदमतमें हजारों वाँदी, मुगलानी, तातारी, हथियारवंद औरतें और खोजे रहते थे। वहाँ अव केवल उसकी वड़ी वेटी जहाँनआरा रह गयी थी।

अपनी जवानीके दिनोंमे उसने सैकड़ों वेकस औरतोंकी असमत लूटी। वजीरे आजम साइस्ताखाँकी युवती वेगमने तो अनशन करके अपने प्राण त्याग दिये थे। वे सव भयावने रूप में उसे नींद में दिखायी देतीं। दारा, सुजा और मुराद तीनों वेटोंकी और उनके अधिकांश शाहजादोंकी औरंगजेव द्वारा हत्या कर दी गयी थी। वादशाह को रातमे भयानक सपने आते रहते और वह चौंक कर जग जाता। ताजमहल को देखते हुए फिर सारी रात गुजारता। कभी कभी वचाओ वचाओ कह कर चिल्ला उठता था। सन् १६६५ में इस प्रतापी और विश्व में सवसे वड़े धनी वादशाह ने रोते विलखते अपना दम तोड़ दिया। विना किसी आडम्बर के उसकी लाश वेगम मुमताज महल की कब्र के पास ताजमहलमे दफना दी गयी।

सोचता हूँ क्या मिला शाहजहाँ को इतने वड़े साम्राज्य और वैभवसे, क्या दिया अपरिमित सम्पत्तिने ह्यूजेस को। एक नहीं, अनेक दृष्टान्त इतिहासके पृष्ठोंमें है। शंकराचार्य ने कहा है :—

अर्थअनर्थं भावयनित्यं नास्तिततः सुखलेश सत्यम्

पुत्रादपि धनभाजां सर्वत्रैषा विहिता नीतिः ॥

अर्थ ही अनर्थ है। सत्य है कि उसमें सुख लेश मात्र भी नहीं है। अधिक धन होने पर पुत्रोंसे भी भय बना रहता है। यही नीति सर्वत्र लागू है।

सती मस्तानी

बुन्देलखण्ड पर मुगलों की आँखें लगी थीं। कई बार चढ़ाई की परन्तु बहादुर बुन्देलो ने उन्हें पीछे ढ़केल दिया। अन्त में मुहम्मद खाँ बंगश के सेनापतित्व में फौज भेजी गयी। वह बड़ा दुधर्ष और कट्टर मुसलमान था। प्रत्येक बार जब महाराज छत्रसाल के राज्य पर चढ़ आता तो मन्दिरों को तोड़ मस्जिद बनवाता और हिन्दुओं पर नाना प्रकार के अत्याचार करता। महाराज उसके आक्रमण को विफल कर देते और फिर से मस्जिदों को तुड़वा कर मन्दिर बना देते। पराजय और अपमान की ज्वाला से वह भुन उठा। बादशाह भी अधीर हो उठा।

जबर्दस्त हमले के लिए पूरी योजना बनी। सन् १७२६ में बहुत बड़ी फौज लेकर मुहम्मद खाँ छत्रसाल की राजधानी पन्ना तक बढ़ आया।

विशाल मुगल साम्राज्य की बड़ी सेना के मुकाबले शुरू से ही अस्त्र-शस्त्र और साधन बुन्देलों के पास कम थे। संख्या की दृष्टि से भी वे बहुत थोड़े थे। उनका सम्बल था शौर्य, साहस और देशप्रेम। बार-बार के आक्रमण ने छत्रसाल की सेना को जर्जरित कर दिया। महाराज की अवस्था ७० वर्ष

की थी। पहले का सा बल भी शरीर में नही रहा। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह था कि इस बार के आक्रमण में बहुत से हिन्दू राजाओं और जागीरदारों ने मुसलमानों का साथ दिया।

महाराज ने देखा कि अन्तिम दिनों में शायद तुर्कों का दास होकर रहना पड़ेगा। बुन्देलखण्ड पर उनके ही जीवनकाल में बोरिक ध्वज के स्थान पर मुसलमानी हरा निशान फहराने की आशंका से वे बेचैन हो उठे। पूना के श्रीमन्त पेशवा बाजी-राव की वीरता और साहस की गाथाएँ उन्होंने सुन रखी थीं। छत्रसाल ने उन्हें एक दोहा लिखकर भेजा—

"जोगति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुँची आज,
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज।

पत्र मिलते ही पेशवा ने निर्णय ले लिया। लम्बी यात्रा थी, फिर भी दक्षिण से अपनी अजेय मराठा सेना लेकर बीस दिन में ही ओरछा पहुँच गये। मराठे और बुन्देलों ने मिल-कर घेरा डाले हुए मुगलों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया।

मराठे और बुन्देलों ने शत्रुओं पर निर्णायक विजय पायी। अपार युद्ध सामग्री छोड़ वे भाग खड़े हुए। मोहम्मद खाँ बंगश दूर के एक किले में जा छिपा और रात के अंधेरे में बुर्का ओढ़ कर भाग निकला।

एक रात बाजीराव को नींद नहीं आ रही थी। करवटे बदलते आधी रात हो गयी। उनका ध्यान बरबस अपनी माता, पत्नी और पूना की ओर चला जाता। परेशान होकर

छज्जे पर चले आये। ठण्डी हवा में कुछ शान्ति मिली। सहसा एक मधुर रागिनी सुनाई पड़ी। स्वरों के उतार-चढ़ाव और तान ने उन्हें मंत्रमुग्ध कर दिया। खिंचे हुए उसी ओर बिना अंगरक्षक के ही बढ़ते गये।

राजप्रसाद की निर्जन वीथियों को पार कर वे एक जगह पहुँच गये। देखा, तन्मय होकर एक किशोरी संगीत साधना कर रही थी। जितना सुरीला कंठ उतना ही सुन्दर रूप था। गीत की समाप्ति पर उसने वीणा एक ओर रख दी। एकाएक उसकी दृष्टि बाजीराव पर पड़ी—केवल इतना ही कह सकी "श्रीमन्त"।

दोनों की आँखें एक दूसरे में खो गयीं। बाजीराव शौर्य के साथ बुद्धि, सुन्दरता और गुणग्राहकता के लिए सुविख्यात थे। कुछ क्षणों के लिए दोनों ही निर्वाक रह गये। उन्होंने धीरे से आगे बढ़कर अपना बहुमूल्य कंठहार किशोरी के गले में डाल दिया। लाजभरी झुकी पलकों को लिए सपने की तरह वह ओझल हो गयी।

महाराज छत्रसाल ने विजयोत्सव दरबार किया। श्रीमन्त बाजीराव पेशवा को तृतीय युवराज के पद दिये जाने की घोषणा की एवं राज्य के तृतीयांश का अधिकारी बनाया। सोने के थालों में हीरे-मोती और जवाहरात की भेंट देते हुए उनका अभिषेक सम्पन्न हुआ। ज्येष्ठ युवराज से पाग, पेंच और तलवार बदली गयी।

विदा के कुछ दिनों पहले अपने निजी कक्ष में पेशवा के साथ बैठे वार्तालाप करते हुए महाराज ने कहा—तुमने समय पर पहुँच कर इस बुढ़ापे में मेरी और हिन्दू धर्म की लाज रख ली। एक बात और रखनी होगी।

इतना कहकर उन्होंने प्रहरी को संकेत किया। कुछ ही क्षणों में एक रूपवती किशोरी ने कक्ष में प्रवेश किया। पेशवा चकित रह गये। उसी रात सपने सी ओझल हो जाने वाली वही रूपसी।

छत्रसाल ने भरी हुई आवाज में कहा—मैंने इसे पिता का सा प्यार दिया है, कहने को यह मुसलमान है किन्तु आचार-विचार और संस्कार में किसी भी हिन्दू से कम नहीं।

चित्तपावन ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण पेशवा आचारवान और धर्मनिष्ठ थे। माता राधा बाई भी कट्टर धार्मिक थीं। उलझन में पड़े थे कि उनकी दृष्टि किशोरी पर पड़ गयी। छलछलाती आँखें और काँपते ओठ न जाने क्या कह गये।

महाराज ने बाजीराव का हाथ पकड़ लिया, कहने लगे—तुम-सा कोई पात्र इस रत्न के लिए मिलेगा नहीं। अब मैं अधिक दिनों तक नहीं बचूँगा, यदि इसे कोई कष्ट हुआ तो मेरी आत्मा की शान्ति नहीं मिलेगी।

पेशोपेश में पड़े पेशवा को छत्रसाल के अन्तिम शब्दों ने मानों जगा दिया। उन्होंने स्वीकृति दे दी।

महाराज ने राजसी धूमधाम एवं हिन्दू रीति से मस्तानी का कन्यादान किया और उसे भारी दहेज के साथ विदा किया। मराठा फौज में बाजीराव पेशवा का बड़ा अनुशासन और आदर था। किन्तु उन दिनों इस प्रकार के संबंध उच्च कुल के ब्राह्मणों के लिए वर्जित थे। मराठा सरदारों में काना-फुसी होने लगी। पेशवा के पहुँचने के पहले ही पूना मे बातें बढ़-चढ़कर फैली।

राजधानी प्रवेश के समय पेशवा के आगमन पर न तो तोरण सजे और न अगवानी के लिए कोई आया। महल में डोली के प्रवेश का आदेश भी नहीं मिला। श्रीमन्त समझ गये कि माता अत्यन्त रुष्ट हैं। भविष्य का आभास उन्हें हो गया। वे चरण स्पर्श के लिए गये परन्तु माता ने अपने पैर एक ओर हटाते हुए तीखे स्वर में कहा—मराठों का श्रीमन्त पेशवा हिन्दू-पद-पादशाही का जहाँ गौरव बढ़ाकर आया है, वहीं एक मुस्लिम नर्तकी को वधू बनाकर उसने कुल को कलंकित किया है। इससे तो अच्छा था बाजी, तू मेरी कोख में आता ही नहीं, है। मुझे यह पाप तो वहन नहीं करना पड़ता।

बाजीराव चुपचाप भूमि पर मस्तक टेक वापस आ गये। पत्नी काशीबाई पति परायणा थीं। उस समय तक एका-

धिक पत्नी अथवा रक्षिता की प्रथा भी मराठों में चल पड़ी थी, किन्तु विधर्मी स्त्री से संबंध हेय माना जाता था। फिर भी उसने छोटी बहिन की तरह मस्तानी को अपने महल में रखा।

इधर माता की प्रेरणा से पंडितों की सभा बैठी। उन्होंने निर्णय दिया कि तुर्कनी को पेशवा महल में प्रवेश का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। विवश होकर बाजीराव ने शहर के बाहर शनिवार बाड़ा नाम का एक छोटा सा महल बनवा दिया। मस्तानी वहाँ शुद्ध हिन्दू आचार विचार से रहने लगी। अध्ययन एवं भजन-पूजन में समय बिताती। बाजीराव के दुखी होने पर केवल एक ही उत्तर देती, प्रेम सुख का मुखापेक्षी नहीं, वह स्वयं में आनन्द की अनुभूति है। आप सुखी रहें, इसी में मेरे जीवन की सार्थकता है।

यद्यपि बाजीराव ने मराठों की शक्ति और कीर्ति बहुत बढ़ा दी, किन्तु उनका व्यक्तिगत जीवन उदासी से भरा था। वे पारिवारिक और धार्मिक अनुष्ठानों में सम्मिलित नहीं हो पाते। यहाँ तक कि भाई-भतीजे के विवाह और उपनयन संस्कार में भी उनका प्रवेश वर्जित था। राजकाज, युद्ध और सरदारों के पारस्परिक विग्रह से ऊबकर मस्तानी के पास जब कभी जाते तो उन्हें सांत्वना मिलती, बच्चों की तरह कहते, सभी चाहते हैं, मैं श्रीमन्त पेशवा रहूँ पर कोई कभी यह नहीं सोचता कि मुझे बाजीराव रहने का भी अधिकार है। हँसकर मस्तानी कहती-क्यों, मैं तो हूँ ?

कठिन से कठिन परिस्थिति में मस्तानी उनके साथ रहती। कई युद्ध-स्थलों में भी वह पेशवा के साथ गई। बाजीराव को उसके स्नेहिल व्यवहार से बड़ी शान्ति मिलती। अगले दस वर्षों में उन्होंने बहुत से विजय-अभियान किये। नये-नये राज्यों पर मराठों के गैरिक ध्वज फहराने लगे। कभी-कभी परिहास में वे मस्तानी से कहते—बाजीराव ने बड़ी-बड़ी बाजियाँ जीतीं, पर अपनी बाजी हार गयी।

वर्षों के कठिन परिश्रम और पारिवारिक क्लेश ने पेशवा के स्वास्थ्य पर असर दिखाना शुरू कर दिया। नर्मदा के तट पर दरवा नामक गाँव में भग्न हृदय बाजीराव बीमार थे। मराठा गौरव की दीपशिखा धीरे-धीरे मलिन होती जा रही थी। काशीबाई, राजवैद्य, सामन्त और सचिव पास बैठे थे। श्रीमन्त कुछ कहना चाहते थे। अवरुद्ध कंठ से अस्फुट स्वर निकले—मस्तानी . .।

मस्तानी को खबर मिल चुकी थी किन्तु प्रियतम के अन्तिम दर्शन के लिए उसके अनुनय-विनय को ठुकरा दिया गया। वह पूना के पास के किसी किले में राधाबाई की कैद में थी। उसने सती होने की अनुमति माँगी, वह भी नहीं मिली। चालीस वर्ष की अल्पायु में पेशवा का देहान्त हो गया। पुराने वैर-भाव भूलकर पूना की सारी जनता के साथ कुटुम्बी, सरदार, सचिव और सामन्त शवयात्रा में सम्मिलित हुए। सभी रो रहे थे। अनोखी सूझ-बूझ का योग्यतम नेता और योद्धा अब न रहा।

सुसज्जित चंदन की चिता पर शव लिटाया गया। मंत्रोच्चार के साथ अग्नि प्रज्वलित कर दी गयी। अपार जनसमूह देख रहा था कितनी निर्ममता से सुन्दर देह को भस्म करने के लिए आग बढ़ती जा रही है।

उस भीड़ के बीच से मुख पर अवगुंठन डाले शृंगार और आभूषणों से सजी एक युवती चिता की ओर सम्हलते कदम से बढ़ती गयी। स्वर्णथाल में कपूर, अबीर, कुंकुम और पुष्प थे। यह सोचकर कि शायद श्रीमन्त को अंतिम श्रद्धांजलि देना चाहती है लोगों ने हटकर मार्ग दे दिया। पास पहुँचते ही वह चिता में कूद गयी। ब्राह्मण, सरदार, सामन्त 'रोको' रोको', कहते ही रह गये। तेज हवा में आग की लपटों ने खुद ही घेरा डाल दिया।

लोगों ने देखा, मस्तानी के चेहरे पर एक अपूर्व तेज था और बाजीराव का सर उसकी गोद में था।

स्नेह सूत्र

बात शायद बीसवीं शताब्दी के शुरू की है। राजस्थान के किसी कस्बे में राधेश्याम और रामस्वरूप दो सगे भाई थे। सम्पन्न परिवार था। व्यापार और धन-दौलत के अतिरिक्त दो-तीन गावों की जमींदारी थी। जमींदारी और व्यापार के सब काम को छोटा भाई राधेश्याम संभालता था। बड़े भाई के जिम्मे गाँवकी पंच-पंचायती, अपने धर्मादा खातेका काम और परिवार वालों तथा पड़ोसियों की विभिन्न समस्याओं का समाधान करना था। दोनों भाइयों के प्रेम को देख कर लोग उन्हें राम-लक्ष्मण की जोड़ी बताते थे। उन दोनों के बीच में रामस्वरूप के केवल एक ३ वर्ष का लड़का था। बच्चा अधिकतर अपनी चाची के ही पास रहता था। रात में भी उसी के साथ सोता था। कभी कदास उसकी माँ ले लेती तो जोर-जोर से रोने लग जाता। वह हंस कर कहती, 'छोटी बहू, तुमने किशन पर टोना कर दिया है'।

वास्तव में, वह टोनों का युग था। राधेश्याम की पत्नी सन्तान प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के जप-तप, देवी-देवताओं की पूजा आदि करती थी।

एक बार बालक किशन बीमार पड़ा। लगातार ज्वर रहने से बहुत दुबला हो गया। वैद्य-डाक्टरों के अनेक उपचारों के

बावजूद बीमारी बढ़ती गयी। पड़ोस की एक महिला ने बड़ी बहू के मन में विश्वास जमा दिया कि तुम्हारी देवरानी बाँझ है इसलिये उसने बच्चे पर टोना कर दिया है। वैसे, वह देवरानी को बहुत प्यार करती थी। दोनों की आयु में पर्याप्त अन्तर था। वही अपनी पसन्द से उसे घर की बहू बना कर लायी थी। परन्तु दुर्भाग्य से उस दिन इस अनहोनी बात को उसने सच मान लिया।

पत्नी की बात में आकर रामस्वरूप ने दूसरे दिन छोटे भाई को बुला कर बहुत बुरा-भला कहा। क्रोध में मनुष्य की मति मारी जाती है। उसने यहाँ तक कह दिया कि तुम पति-पत्नी चाहते हो कि बच्चा न रहे तो सारी सम्पत्ति तुम्हें मिल जाये।

राधेश्याम बड़े भाई को पिता-तुल्य मानता था। कभी उसके सामने सिर उठा कर बात भी नहीं की थी। इस प्रकार अप्रत्याशित रूप से ऐसा लांछन सुन सुबक-सुबक कर रोने लगा। कहने लगा कि भैय्या जी, इतना बड़ा कलंक लेकर अब हम किस मुंह से यहाँ रह सकेंगे? थोड़ी देर बाद स्वस्थ होकर बड़े भाई के पैरों में गिर कर कहा कि हम आज ही नगर छोड़ कर गाँव के घर में चले जायेंगे। मुन्ना जितना आपको प्यारा है, उससे कम हम लोगों को नही। उसकी चाची तो उसके बिना एक घड़ी भी नहीं रह सकती। हमारे भाग्य फूट गये कि आपके प्रति मन में इस प्रकार के विचार आये। आपके चरणों की

सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि आगे हमें कभी इस घर की देहली पर नहीं पायेंगे।

अपना जन्मस्थान सभी को प्यारा होता है। अगर चाहता तो राधेश्याम घर का आधा हिस्सा लेकर वहीं रह सकता था, परन्तु उसको किसी प्रकार भी यह स्वीकार नहीं था कि उसके कारण से परिवार का अनिष्ट हो। विदा के समय पति-पत्नी ने दोनों भाभी-भैय्या के पैर छुए, वहुत मन होने पर भी कमरे में जाकर वीमार वच्चे के सिर पर हाथ नहीं फेर सके।

उनके जाने के वाद वड़ाभाई रामस्वरूप गुमसुम सा रहने लगा। कुछ इस प्रकार का मानसिक कष्ट हुआ कि उसने खाट पकड़ ली। थोड़े दिनों वाद वच्चा भला-चंगा हो गया परन्तु वाप दिन पर दिन सूखने लगा। उसको लगातार खाँसी और ज्वर रहने लगा। उस समय तक क्षय रोग का निदान नहीं था।

पत्नी से वीमारी का कारण छिपा नहीं था परन्तु संकोच-वश गाँव जाकर देवर-देवरानी को मना कर लाने का साहस नहीं हुआ। उधर, आरम्भ में तो राधेश्याम लोगों द्वारा वडे भाई की वीमारी के समाचार मंगवाता रहा परन्तु जव नहीं रहा गया तो गाँव से आकर हवेली के वाहर वैठ जाता और वैद्य-डाक्टरों से पूछ-ताछ कर चिकित्सा की व्यवस्था करता रहता। सौगन्ध खाई हुई थी, इसलिए वहुत इच्छा होते हुए भी घर में जाकर अन्तिम घड़ी में भी भाई की सेवा नहीं कर

सका। चलेवे (मृतक के क्रियाकर्म) के सारे कामों के लिए पति-पत्नी पास के एक घर में आकर ठहर गए। बारह गाँवों के गरीबोंको भोजन कराया गया। काशीके पण्डितोंको श्राद्ध-कर्म के लिये बुलाया। इतना बड़ा आयोजन आज तक इस कस्बे में कभी नहीं हुआ था। तेरहवें दिन पूरी बिरादरी को न्योता गया और चौदहवे दिन वे पुनः अपने गाँव चले गये।

समय बीतता गया किशन का बड़ी धूम-धाम से विवाह हुआ। उसकी माँ बीमार रहने लगी थी। इसलिये चाचा-चाची ने दिन-रात परिश्रम करके सारे नेगचार बड़ी अच्छी तरह से निपटाये।

राजस्थानमें नई बहूसे पैर छुआई और उसकी मुंह दिखाई का नेगचार होता है। परिवार के और पास-पड़ोस के लोग उसके घर आकर कुछ न कुछ भेंट देते हैं।

जब वह पड़ोस के घर में चाची जी के पैर छूने गयी तो उन्होंने सन्दूक में से एक डिब्बा निकाला और अपना सारा गहना जो उन्हें विवाह के समय मिला था-बहू को पहना दिया। कहा कि इस शुभ दिन के लिये मैंने भगवान से न जाने कितनी मनौतियाँ मानी और कितने व्रत-उपवास किये। उन्होंने मेरी लाज रख ली, मेरा कलंक मिट गया। पितरों के आशीर्वाद से मेरा किशन फले-फूले और तुम सदा सुहागिन रहो। दूधों नहाओ और पूतों फलो। इसके बाद उसका गला भर आया। शुभ घड़ी में आँसुओ से कहीं अमंगल न हो जाये इसलिये शीघ्र ही भीतर के कमरे मे चली गयी।

पिता का कर्ज़

राजस्थान में चुरू एक पुराना कस्बा है। आज से सवा सौ, डेढ़ सौ वर्ष पहले यहाँ एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार रहता था जिसका मालवा में बड़े पैमाने पर व्यापार था। जब अफीम को लेकर ब्रिटेन और चीन का युद्ध हुआ तो इनको घाटा लग गया, काम बन्द हो गया और देनदारी रह गयी।

इसके बाद परिवार के स्वामी सेठ उजागरमल को घर के बाहर निकलते नहीं देखा गया। कभी-कदास कोई आदमी उनसे मिलने भी गया तो उनका चेहरा नहीं देख पाया क्योंकि वे अपना मुंह चदर से ढ़के रहते थे। इसी शोक से उनका छोटी उम्र में ही देहान्त हो गया। परिवार में उनकी विधवा पत्नी और तेरह वर्ष का पुत्र रामदयाल रह गये।

गहने और जमीन-जायदाद बेचकर उजागरमल ने अपना बहुत-सा कर्ज तो चुका दिया था, फिर भी, मरते समय कुछ बाकी रह गया। अन्तिम समय में उन्होंने पत्नी और पुत्र रामदयाल को एक कागज दिया जिस पर कर्जदारों के नाम और रकमें लिखी थी। पुत्र को उनका अन्तिम आदेश था कि मेरी आत्मा को तभी शान्ति मिल पायेगी, जब किसी दिन तुम यह कर्ज ब्याज समेत चुका दोगे।

दो वर्ष बाद रामदयालका विवाह हुआ। इस मौके पर विधवा माँ ने थोड़ा बहुत कर्ज लेकर पूरी बिरादरी को न्यौता दिया। बहू की अगवानी के समय किसी ने ताना कस दिया कि बाप का कर्जा तो चुका ही नहीं और विवाह में इतनी धूमधाम है! किशोर रामदयाल को यह बात चुभ गयी और विवाह के कगन-डोरे खुल भी नहीं पाये थे कि उसने सुदूरपूर्व असम जाने का निश्चय कर लिया। माँ और पड़ोसियों ने रायदयाल को बहुत समझाया कि कुछ दिन ठहर जाओ और थोड़े बड़े हो जाने पर चले जाना पर उसने किसी की भी न सुनी और रोती बिलखती माँ और बालिका बहू को छोड़कर, कुछ लोगों के साथ, जो पूरव की यात्रा पर जा रहे थे, वह भी चल पड़ा।

उस समय की यात्रा में तीन-चार महीने लग जाते थे। ट्रेन कलकत्ते से कानपुर तक ही बनी थी। राजस्थान से कानपुर जाने में २५—३० दिन लगते थे। कलकत्ता से नौका में बैठकर असम जाने में भी डेढ़-दो महीने लग जाते थे। रास्ते में पद्मा नदी पड़ती थी जिसके तेज बहाव में कभी-कभी नौकाएँ डूब जाती थीं। इसके सिवाय, जल-दस्युओं का भी डर बना रहता था, इसलिये कई आदमी एक साथ मिलकर और पूरा बन्दोबस्त कर असम यात्रा पर जाते थे। एक बार जाकर लोग ८-१० वर्ष की मुसाफिरी करके लौटते थे। रास्ते इतने संकटमय थे कि बहुत से लोग तो वापस ही नहीं आ पाते थे। यात्रा के समय रामदयाल के पास संबल स्वरूप एक धोती;

एक लोटा और कुछ चना-चबैना था और था दृढ़ विश्वास एवं साहस।

असम की आबहवा बहुत ही नम रहने के कारण वहाँ मलेरिया और काला-ज्वर का प्रकोप बना रहता था। पर व्यापार में गुंजाइश थी, इसलिए लोग पानी की जगह चाय पीकर रहते। बुखार हो जाने पर दवाइयाँ खाते रहते। कुनैन का उस समय तक अविष्कार नहीं हुआ था।

रामदयाल को राजस्थान से तिनसुकिया (असम) पहुँचने में चार महीने लग गये। वहाँ जाकर उसने फेरी का काम शुरू किया। सुबह कन्धे पर कपड़े लादकर गांवों में निकलता और शाम को एक या दो रुपया कमाकर अपने डेरे पर वापस आ जाता।

इस समय तक वहाँ मारवाड़ियों की कुछ दुकानें हो गयी थीं और यह आम-रिवाज था कि नया आया हुआ कोई भी व्यक्ति निस्संकोच उनके वासे में खाना खा सकता था। जब अच्छी कमाई होने लगती तो अपनी अलग व्यवस्था कर लेता। इसके सिवाय, पहले से बसे हुये मारवाड़ियों से व्यापार में भी वाजिब सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहता था। रामदयाल को इनका पूरा सहयोग मिला।

कड़ी मेहनत और ईमानदारी से दस वर्षों में उसने इतना धन कमा लिया जिससे वह अपने पिता का पूरा कर्ज़ व्याज

बड़े संकट में भी उसे सबसे बड़ा संतोष और सहारा इसी बात का था कि उसने पिता का सारा कर्ज ब्याज सहित चुका दिया था।

रामदयाल के पिता ने उसे केवल एक कागज दिया था जिस पर लेनदारों के नाम और रकमें लिखी थी। उस समय न तो स्टाम्प के कागज पर ही कर्ज की लिखा-पढ़ी होती थी और न कोई गवाह या जामिन ही होते। परन्तु वे लोग सबसे बड़ी लिखा-पढ़ी और गवाह-जामिन तो ईश्वर को मानते थे और पिता-पितामह का कर्ज चुकाये बगैर सार्वजनिक उत्सवों में भी कभी-कदास ही शामिल होते थे। ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे कि ३०-४० वर्ष बाद तक पुत्र और पौत्रों ने अपने पिता और पितामह के कर्ज चुकाए हैं।

यही कारण है कि हाल के वर्षों तक हमारे पूर्वजों के, बिना मात्रा के हरफों में लिखे बही-खातों की अदालत में भी साख और इज्जत थी।

राजा और रंक

राजस्थान के बूंदी राज्य में हाड़ा राजपूतों का शासन था। सन् १७५० ई० में महाराज उमेद सिंह यहाँ राज्य करते थे। छोटी आयु में ही पिता की मृत्यु हो जाने से इन्हें राजगद्दी मिल गयी। आपको शिकार खेलने का बड़ा शौक था। प्रायः ही १०-१५ मुसाहबों और शिकारियों को साथ लेकर पहाड़ों और जंगलों में शिकार के लिए चले जाते।

माघ का महीना था। एक दिन महाराज अपने सरदारों और शिकारियों के दल के साथ पास के पहाड़ों में शिकार के लिये गये। दिन भर कुछ भी हाथ नहीं लगा। शाम होते-होते एक बड़े चीतल को देखा तो राजा ने अपना घोड़ा उसके पीछे छोड़ दिया। दौड़ते-दौड़ते जंगल में रास्ता भूलकर दूर निकल गये। सभी साथी पीछे छूट गये।

रात हो गयी और भयंकर तूफान के साथ ओले और वर्षा शुरू हो गयी। रास्तों में चारों तरफ पानी जमा हो गया। ऊपर से बर्फीली हवा सॉय-सॉय करके चल रही थी।

ऐसी भयंकर सर्दी में महाराज ठिठुर कर बेहोश हो गए किन्तु घोड़ा बहुत समझदार था। वह उन्हें अपनी पीठ पर

लादे घूमता हुआ एक झोपड़ी के द्वार पर आया और हिन-हिनाने लगा। जब कुछ देर तक किवाड़ नहीं खुले तो घोड़े ने दरवाजे पर पैरों की टाप लगाई। हाथ में दीपक लिए एक वृद्ध बाहर आया और कुछ क्षणों में सारी परिस्थिति समझकर बेहोश युवक को पीठ पर लादकर भीतर ले गया। कीमती कपड़े और गहने देखकर वह यह तो समझ गया कि यह अवश्य ही कोई बड़े घर का युवक है, परन्तु उसने स्वप्न में भी यह न सोचा कि स्वयं महाराज उसके अतिथि बने हैं।

झोपड़ी में उसकी किशोरी पुत्री रूपमती के सिवाय और कोई न था। पिता-पुत्री दोनों ने मिलकर युवक के भींगे वस्त्र उतारे और उसे आग के पास लिटा दिया। चम्मच से मुंह खोलकर गरम दूध पिलाने लगे। बहुत प्रयत्न करने पर भी युवक की बेहोशी दूर नही हुई। शरीर ठंढा ही बना रहा। डर लगा कि वह कहीं मर न जाय। एक क्षण को वृद्ध विचलित सा हुआ किन्तु वह अनुभवी था, वैद्यक का ज्ञाता भी। उसने पुत्री को बहुत संकुचाते हुये कहा-"बेटी, इसके शरीर में गरमी लाने का अब एक ही उपाय है। तुम इसकी शैय्याचारिणी बनो, इसके शरीर को अपने शरीर की गर्मी पहुँचाओ।" बेटी को लज्जित देखकर वृद्ध ने दृढ़ स्वरों में कहा-,,घर आये अतिथि के प्राण बचाना हमारा कर्तव्य है। इससे बड़ा पुण्य पृथ्वी पर नहीं है। तुम संकोच त्यागकर धर्म का पालन करो अन्यथा नर हत्या का पाप हम दोनों के मत्थे चढ़ेगा ,"

उच्च आचार-विचार वाली कुमारी कन्या के लिए जिसने पिता के सिवाय किसी पर-पुरुष को छुआ तक नहीं था, अपने पिता की यह आज्ञा बहुत ही कठोर थी। गहरे मानसिक द्वन्द्व के उपरान्त वह उनके आदेश को मानते हुये मेहमान को भीतर ले गयी।

बहुत देर बाद युवक के शरीर में गरमी आयी। उसने अपने आपको एक किशोरी की नग्न बाहों में पाया तो विचलित हो उठा। जब सुबह हुई तो कुमारी रूपमती स्त्री बन चुकी थी।

महराज ने अपने वृद्ध मेजबान के कुल, जाति आदि की जानकारी ली तो ज्ञात हुआ कि वह चारण सरदार है, अपनी स्त्री के किसी सामाजिक अपराध से दुःखी होकर एकमात्र कन्या के साथ लोगों की दृष्टि से दूर १४ वर्षों से इस निर्जन गाँव में रहने लगा है। परन्तु अब उसे अपनी जवान पुत्री के विवाह की चिन्ता है।

दूसरे दिन, सुबह महाराज के साथी उन्हें खोजते हुए इसी झोपड़ी के पास आये, बाहर खड़े अश्व ने हिनहिनाकर स्वामी के अन्दर होने का संकेत दिया। महाराज को सुरक्षित पाकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

राजा ने वृद्ध को बहुत सा धन उपहार में देना चाहा, परन्तु बाप-बेटी दोनों ने नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया कहने लगे कि हमने जो कुछ किया वह सब कर्त्तव्य के वश किया है, न कि धन के लोभ मे।

विदा होते समय महाराज ने वृद्ध के समक्ष उसकी पुत्री को अपनी रानी बनाने का प्रस्ताव रखा। एक बार तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ, परन्तु जब हीरे जड़ी अंगूठी पहना दी गयी तो उसकी आँखों में हर्ष के आंसू आ गये।

तीन-चार महीने बीत गए। इस बीच बेटी के कहने से दो बार पिता बूंदी गए। महाराज से भेंट हुई, कन्या के विवाह की उन्हें याद दिलाई तो वे क्रोधित हो उठे। कहा—"आदमी को अपनी हैसियत देखकर संबंध की बात करनी चाहिये। तुम लोग चाहो तो सौ-दो सौ रुपये महीने का वसीका राज्य से मिल सकता है। फिर कभी मत आना, नहीं तो अपमानित होकर जाना पड़ेगा।"

आखिर, एक दिन रूपमती ने अपने पिता को संकोच त्याग कर सारी बात कह दी और बता दिया कि उसे महराज का गर्भ है। यह सुनकर वृद्ध को कुछ ऐसा सदमा पहुँचा कि वह थोड़े दिनों में ही मर गया।

समय पाकर रूपमतीने एक बहुत ही सुन्दर बालक को जन्म दिया। सेवा-सुश्रूषा के लिए देहाती स्त्रियाँ थीं जो इस पितृहीन युवती को प्यार करती थी।

पूछने पर रूपा बराबर यही कहती कि उसका पति एक बहुत बड़ा राजा है और जल्द ही उसे राजधानी ले जायेगा।

एक दिन उसने सुना कि महाराज आमेर की राजकुमारी से विवाह करके बारात लिए लौट रहे हैं। यद्यपि रूपमती ने राजधानी जाने की एक प्रकार से सौगन्ध खा ली थी, पर उस दिन मन को कड़ा करके, बच्चे को गोद में लेकर वह बारात का जुलूस देखने नगर की ओर चल दी।

सारे शहर में अपूर्व सजावट हुई थी। चारों तरफ तोरण-वन्दनवार बँधे थे। शहनाइयाँ बज रही थीं, पटाखे छूट रहे थे, पुर-नारियाँ मधुर गीत गा रही थीं।

रूपमती ने देखा गाजे-बाजे सहित महराज की सवारी आ रही है। सोने के हौदे से सजे हाथी पर महाराज और उनके पीछे रथ में नव-विवाहिता महारानी। लोग गर्व से एक दूसरे को कह रहे थे कि महाराज कितने प्रतापी है तभी तो आमेर की राजकुमारी से सम्बन्ध हुआ है, आदि।

लोगों के धक्कों से किसी प्रकार बचती हुई रूपमती अपने शिशु को लेकर राजा के सामने जा पहुँची। महाराज ने उन्हें क्षण भर के लिए देखा और मुँह फेर लिया।

थोड़ी देर बाद भीड़ में शोर मचा, कुछ हलचल हुई। लोगों ने देखा कि अतीव सुन्दर नवयौवना अपने शिशु के साथ जमीन पर कुचली पड़ी थी। कसूमल ओढ़नी थी और हाथ में एक बेहतरीन हीरे की अंगूठी, चारों तरफ ताजे लहू की धार बह रही थी। उनमें से कुछ लोग कह रहे थे—"हमने इसे, दौड़कर हाथी के पैरों के नीचे जाते देखा था"।

विदा होते समय महाराज ने वृद्ध के समक्ष उसकी पुत्री को अपनी रानी बनाने का प्रस्ताव रखा। एक बार तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ, परन्तु जब हीरे जड़ी अंगूठी पहना दी गयी तो उसकी आँखों में हर्ष के आंसू आ गये।

तीन-चार महीने बीत गए। इस बीच बेटी के कहने से दो बार पिता बूंदी गए। महाराज से भेंट हुई, कन्या के विवाह की उन्हें याद दिलाई तो वे क्रोधित हो उठे। कहा—"आदमी को अपनी हैसियत देखकर संबंध की बात करनी चाहिये। तुम लोग चाहो तो सौ-दो सौ रुपये महीने का वसीका राज्य से मिल सकता है। फिर कभी मत आना, नहीं तो अपमानित होकर जाना पड़ेगा।"

आखिर, एक दिन रूपमती ने अपने पिता को संकोच त्याग कर सारी बात कह दी और बता दिया कि उसे महराज का गर्भ है। यह सुनकर वृद्ध को कुछ ऐसा सद्मा पहुँचा कि वह थोड़े दिनों में ही मर गया।

समय पाकर रूपमतीने एक बहुत ही सुन्दर बालक को जन्म दिया। सेवा-सुश्रूषा के लिए देहाती स्त्रियाँ थीं जो इस पितृहीन युवती को प्यार करती थी।

पूछने पर रूपा बराबर यही कहती कि उसका पति एक बहुत बड़ा राजा है और जल्द ही उसे राजधानी ले जायेगा।

एक दिन उसने सुना कि महाराज आमेर की राजकुमारी से विवाह करके बारात लिए लौट रहे है। यद्यपि रूपमती ने राजधानी जाने की एक प्रकार से सौगन्ध खा ली थी, पर उस दिन मन को कड़ा करके, बच्चे को गोद में लेकर वह बारात का जुलूस देखने नगर की ओर चल दी।

सारे शहर में अपूर्व सजावट हुई थी। चारों तरफ तोरण-वन्दनवार बँधे थे। शहनाइयाँ बज रही थीं, पटाखे छूट रहे थे, पुर-नारियाँ मधुर गीत गा रही थीं।

रूपमती ने देखा गाजे-बाजे सहित महराज की सवारी आ रही है। सोने के हौदे से सजे हाथी पर महाराज और उनके पीछे रथ में नव-विवाहिता महारानी। लोग गर्व से एक दूसरे को कह रहे थे कि महाराज कितने प्रतापी है तभी तो आमेर की राजकुमारी से सम्बन्ध हुआ है, आदि।

लोगों के धक्कों से किसी प्रकार बचती हुई रूपमती अपने शिशु को लेकर राजा के सामने जा पहुँची। महाराज ने उन्हें क्षण भर के लिए देखा और मुँह फेर लिया।

थोड़ी देर बाद भीड़ में शोर मचा, कुछ हलचल हुई। लोगों ने देखा कि अतीव सुन्दर नवयौवना अपने शिशु के साथ जमीन पर कुचली पड़ी थी। कसूमल ओढ़नी थी और हाथ में एक बेहतरीन हीरे की अंगूठी, चारों तरफ ताजे लहू की धार बह रही थी। उनमें से कुछ लोग कह रहे थे—"हमने इसे, दौड़कर हाथी के पैरों के नीचे जाते देखा था"।

लाशों को रास्ते से अलग हटा दिया गया। बाजे और नगाड़े फिर जोरों से बजने लगे। आखिर किसी पगली के पीछे जाने वाले उत्सव में व्यवधान क्यों आवे?

छज्जों से महाराज के हाथी पर फूलों की वर्षा हो रही थी। 'महाराज की जय हो', 'अन्नदाता घणी खम्मा' की आवाज़ों से आकाश गूँज रहा था।

चन्दरी बुआ

राजस्थान में पुराने जमाने में ऐसी प्रथा थी कि एक ही गॉव में शादी-विवाह नहीं होते थे। लड़की को दूसरे गॉव में देते और दूसरे गाँव की लड़की को बहू बनाकर लाते थे। यहाँ तक होता था कि अगर किसी गॉव में बारात आती तो वर-पक्ष के गॉव की जितनी भी लड़कियॉ वहॉ ब्याही होतीं, सबको मिठाइयॉ भेजी जाती थी।

अपने गाँव की लड़की को चाहे किसी भी जाती की हो, आयु के अनुसार भतीजी, बहिन या बुआ कहकर पुकारा जाता था। मुझे याद है कि हमारे घर के पास मुसलमान लखारों का एक घर था, हम उन सबको चाचा, ताऊ या चाची, ताई कहकर पुकारते थे।

अब गॉव, कस्बों मे परिवर्तित हो गए हैं और यातायात के साधन सुलभ होने से आवागन भी बढ़ गए है, इसलिए यह प्रथा कम होती जा रही है।

इस कथा की नायिका चन्दरी बुआ का जन्म राजस्थान की बीकानेर रियासत के एक गॉव में आज से करीब १२ वर्ष पहले एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था।

जब चन्दरी १२ वर्ष की हुई तो उसका विवाह हुआ। पास के गाँव से बारात आयी और सारे कार्य धूम-धाम से सम्पन्न हुए।

उसका पिता साधारण स्थिति का ब्राह्मण था, परन्तु उन दिनों विवाह-शादियों में घर वालों को कुछ विशेष नही करना पड़ता था। गाँव के पुरुष और स्त्रियाँ सारे कामों को आपस में बँटवारा कर लेते थे। प्रति घर से एक-दो रुपए टीके या बाना के रूप में दिये जाते, जिससे माँ-बाप के लिए खर्च का बोझ कम हो जाता था।

विवाह तो बचपन में हो जाते, पर गौना तीन या पाँच वर्ष बाद होता था। इससे पहले बहू ससुराल नही जाती जाती थी। चन्दरी के पति का देहान्त गौना होने के पूर्व ही हो गया, फिर वह ससुराल नही गयी और मायके में ही रहने लगी।

पहले तो शायद बेटी या बहिन के नाम से पुकारी जाती होगी, पर मैंने जब होश संभाला, तब तक वह प्रौढ़ हो चुकी थी और उसे बुआ का पद मिल चुका था। उसके माँ-बाप स्वर्गवासी हो चुके थे। वह सारे मुहल्ले की बुआ कहलाने लगी थी।

दान-दक्षिणा से उसे प्रारम्भ से ही ग्लानि थी। इसलिए, बावजूद सबके साथ अच्छे सम्बन्धो के, वह श्रम करके ही अपना जीवन-निर्वाह करती थी। सुबह ४ बजे उठकर चक्की पीसने बैठ जाती और सूर्योदय तक ८ से १० सेर तक अनाज पीस लेती। इससे प्रतिदिन २ से २॥ आने की कमाई हो जाती। उसे

कभी काम का अभाव न रहता, क्योंकि एक तो काम से स्वच्छता रखती तथा दूसरे अनाज को साफ करके पीसती तथा पिसाई में आटा घटाती न थी ।

जब कभी हमारी नींद पहले खुल जाती तो चन्दरी बुआ के भजन तथा चक्की की आवाज सुनाई पड़ती। उन दिनों एलार्म घड़ियाँ तो सुलभ थी नहीं, अतः जिसे कभी मुहूर्त साधकर परदेश जाना होता या पहले उठना होता, वह चन्दरी बुआ को समय पर जगाने को कह जाता और वह उसे नियत समय पर जगा देती। उस समय तारों को देखकर समय का ज्ञान बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों को रहता था।

उसकी आवश्यकताएं कम थीं। इसलिए दो-ढाई आने में सामान्य जीवन-निर्वाह हो जाता था। चन्दरी बुआ ने इससे अधिक कमाने की आवश्यकता नहीं समझी। दिन में मुहल्ले के बच्चों की देखभल करती तथा कोई बीमार होता तो उसकी सेवा करती रहती। उन दिनों प्रसव का काम सयानी स्त्रियाँ ही संभालती थीं। कठिन समय में भी चन्दरी के आ जाने से घर वालों को और जच्चा को सान्त्वना व साहस मिल जाता।

उसने जीवन का सारा प्रेम और ममत्व दूसरों के बच्चों पर उड़ेल दिया था। मुहल्ले के बच्चे सारे दिन उसे घेरे रहते। किसी को पतंग के लिए लेई चाहिए तो किसी को अपनी गुड़िया के विवाह के लिए रंग-बिरंगे कपड़े। उसके दरवाजे से निराश जाते किसी को नहीं देखा गया।

संगीत की शिक्षा के बिना ही उसे ताल और स्वर का यथेष्ट ज्ञान था। विधवा होने के कारण विवाह-शादी के गीत तो नही गाती, परन्तु भजन और 'रतजगा' (रात्रि–जागरण) उसके बिना नहीं जमते थे। मीरा और सूर के पदों को इतनी लवलीन होकर मधुर रागिनी से गाती कि सुनने वाले भावविभोर हो जाते।

जब वह काफी वृद्ध हो चली तब भी मैंने उसे देखा था। उस समय अनाज पीसना तो उसके वश की बात नहीं थी, फिर भी कुछ छोटा-मोटा करती रहती थी। वह इतनी बूढ़ी हो चुकी थी कि उसके हाथ और गर्दन काँपने लग गये थे और आवाज में हकलाहट–सी आ गयी थी।

प्रतिवर्ष गर्मी की मौसम में लोग हरिद्वार और बद्रिकाश्रम जाते थे। चन्दरी बुआ से लोगों ने बहुत बार आग्रह किया, परन्तु उसका एक ही जवाब होता कि मुझ गरीब और अभागिन के भाग्य में तीर्थ-यात्रा कहाँ है, यह सब तो भाग्यशाली लोगों को मिलता है।

एक दिन उसने मुझे बुलाया और कहने लगी—"आजकल स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, पता नहीं कब शरीर छूट जाय। मेरे मन में अपनी ससुराल के गाँव में कुंआ बनाने की साध है। वहाँ एक ही कुंआ है। इसलिए गर्मी में गायें और ढोर तो प्यासे रहते ही है, मनुष्यों को भी पूरा पानी नही मिलता।

तुम पता लगाकर बताओ कि कुँए पर कितना खर्च बैठेगा। मैं सोचने लगा कि बुढ़ापे में बुआ का दिमाग खराब हो गया है। आजकल दोनों वक्त का खाना तक तो जुटा नहीं पाती, इस पर भी कुआ बनाने की धुन लगी है।

बात आई-गई हो गयी, परन्तु १०-१२ दिन बाद देखता हूँ कि लाठी टेकती बुआ सुबह ही सुबह हाजिर है। मन में अपने ऊपर ग्लानि और क्षोभ हुआ कि जिसके स्नेह की छाया में बचपन के इतने वर्ष बिताये, जिससे नाना-प्रकार के छोटे-मोटे काम लिए, बहुत रात तक कहानियाँ सुनी, उसके एक छोटे से काम पर भी मैंने ध्यान नहीं दिया !

मैंने कहा, "वहाँ पानी बहुत गहरा है, इसलिए कुंए पर दो-ढाई हजार रुपये खर्च होंगे। यदि कुंई (छोटा कुंआ) बनायी जाय तो शायद डेढ़ हजार तक में बन सकेगी।"

मेरा उत्तर सुनकर बुआ के झुर्रियों से भरे चेहरे पर एक गहरी उदासी छा गयी मन-ही-मन कुछ हिसाब-सा लगाने लगी। दूसरे दिन मुझे अपने घर आने को कहकर चली गयी।

अगले दिन जब मैं उसके यहाँ पहुँचा तो देखा कि वह मेरा इन्तजार कर रही है। थोड़ी देर इधर-उधर देखकर भीतर की एक कोठरी में ले गयी। खाट के नीचे से एक पुराना डिब्बा निकाला और उसे खोलकर मेरे सामने उंड़ेल दिया।

रानी विक्टोरिया, एडवर्ड और जार्ज पंचम की छाप के पुराने रुपये थे तथा कुछ रेजगारी थी। थोड़े-से चाँदी के गहने और सोने की मूरत थी, जो शायद उसकी माँ ने उसके विवाह के समय उसको दी होगी।

मैं रुपये गिन रहा था और पिछले ६०-७० वर्षों का इतिहास मेरे मानस में तैर रहा था। सोच रहा था, इस वृद्धा की सारी उम्र की गाढ़ी कमाई का यह पैसा है जो उसने कठिन जीवन बिताकर यहाँ तक की तीर्थयात्रा की बलवती इच्छा को दबाकर इकट्ठा किया है। आज जीवन के संध्याकाल में सारा का सारा परोपकार में लगा देना चाहती है। गिनकर मैंने बताया कि लगभग ६००) रुपए हैं। ३००) रुपये के गहने होंगे। इतने में काम बन जायगा, जो कुछ थोड़ी कमी रहेगी, उसकी व्यवस्था हो जायगी, कोई चिन्ता की बात नही है।

वह बोली, "बेटा, तेरे फूफे के निमित्त कुआँ बनेगा। इसमें दूसरों का पैसा नही ले सकूगी। नही होगा तो एक मजदूर कम रख कर कुछ काम मैं कर दिया करूँगी।" मैंने पूछा, "बुआ कुएं पर किसके नाम का पत्थर लगेगा"। अपनी धुंधली आँखों को कुछ फैलाने की चेष्टा करते हुए बुआ ने जवाब दिया कि "नाम की इच्छा से पुण्य घट जाता है फिर मानुष तो स्वयं क्षणभंगुर है, उसके नाम का मूल्य ही क्या ?"

मुझे इस अपढ़ वृद्धा के तर्क पर आश्चर्य के साथ श्रद्धा हो

रही थी, यह कुआ बनाने के परोपकारी काम के लिए सर्वस्व लगाकर भी न तो अपना और न अपने पति के नाम का पत्थर लगाने की इच्छा रखती है-जबकि आज १ लाख लगाकर ५ लाख की इमारत या संस्था पर नाम लगाने की खींच-तान धनवान और विद्वानों में लगी रहती है। उद्‌घाटन-समारोह किस मंत्री या नेता से करायें, इस पर भी काफी सोच-विचार होते हैं। तय नहीं कर पा रहा था कि कौन बड़ा दानी है और किसका दान ज्यादा सात्विक है।

कुछ दिनों बाद उस गाव में गया तो कुंआ बन रहा था और चन्दरी बुआ भी मजदूरों के साथ टोकरी ढो रही थी। उसकी लगन और परिश्रम देखकर दूसरे मजदूर-कारीगर भी जी जान से काम में जुटे थे।

किसी ने कहा, "बुआ, तुम्हारे कुंए का पानी तो बहुत मीठा निकला है, परन्तु तुम तो बहुत दिन नहीं पी सकोगी।" वह बोली, भैय्या मेरा इसमें क्या है? तुम सब लोगों में रहकर कमाया हुआ पैसा था, वह भले काम में लग गया। दूसरों के कुंओं से सारी उम्र पानी पिया है, इसलिए इस छोटे से प्रयत्न के द्वारा मैंने अपना ऋण चुकाने का प्रयास किया है। मेरी आखिरी इच्छा है कि जब मेरे प्राण निकलें तो गंगाजल की जगह इसी कुएं का पानी मेरे मुंह में डाल देना।

कुंआ बनकर तैयार हो गया, परन्तु चन्दरी बुआ थक कर

बीमार हो गयी। जिस दिन हनुमान जी का जागरण और प्रसाद हुआ, वह बेहोश-सी थी।

जागरण के आस-पास से देहात के काफी लोग इकट्ठे थे। भजन-कीर्तन चल रहा था, थोड़ी देर बाद वहीं सबके सामने बुआ का देहान्त हो गया।

आज वह गांव बड़ा हो गया है और दूसरे कुंए भी बन गये हैं, परन्तु चन्दरी के कुंए के पानी के समान मीठा पानी किसी का भी नहीं है।

—०—

उतार चढ़ाव

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण की बात है। कराची के एक मध्यमवर्गीय सिन्धी परिवार में हरनाम नाम का बालक था। मां बचपन में ही मर चुकी थी। बाप ने प्रौढ़ावस्था में फिर से एक गरीब घर की लड़की से विवाह कर लिया। उसके दो सौतेले बहन-भाई भी हो गये थे।

हरनाम की शादी-शुदा अपनी एक सगी बड़ी बहन थी। परन्तु उसे कभी त्योहार पर भी पीहर नहीं बुलाया जाता था। कभी-कभी छुपकर भाई की पाठशाला में आती और कुछ चीजें दे जाती। घर में छोटे भाई बहन के लिये विशेष अवसरों पर नये कपड़े और तरह-तरह की मिठाइयाँ बनती, परन्तु हरनाम को कोई नहीं पूछता। बेचारा बालक ललचाई आंखों से देखता रहता। कभी कदास, वे दोनों इसे कुछ देना चाहते तो मां उन्हें मना कर देती।

एक दिन, किसी साधारण से कसूर पर विमाता ने हरनाम को बहुत पीटा। पिता भी पत्नी के डर से कुछ नहीं बोला। भूखा-प्यासा बच्चा घर से भागकर समुद्र के किनारे खड़े किसी भारवाही जहाज में जाकर छिप गया।

थोड़ी देर बाद जब जहाज रवाना हुआ तो उसे वस्तुस्थिति का भान हुआ और सुबक-सुबक कर रोने लगा। परशियन ऑयल कम्पनी का जहाज था। ज्यादातर मल्लाह अरब थे, दो-चार अफिसर भी थे। जब उन्होंने १२-१३ वर्ष के एक अति सुन्दर बालक को इस स्थिति में देखा तो आश्चर्य चकित रह गये। धीरे-धीरे सारी बातों की जानकारी ली। जहाज का करांची वापस जाना सम्भव नहीं था। बालक पर कप्तान का स्नेह हो गया। उसने इसे अपनी केबिन में रख लिया। ईरान पहुंचकर कप्तान ने उसे एक धनी ईरानी परिवार में नौकर रखा दिया। हरनाम की बुद्धि कुशाग्र थी। थोड़े दिनों में ही उसे अरबी, फारसी और अंग्रेजी बोलने का अच्छा अभ्यास हो गया।

उन दिनों ईरान में तेल कम्पनी के बहुत से अधिकारी थे। परशियन ऑयल कम्पनी का बड़ा साहब वहां ब्रिटेन की तरफ से सर्वोच्च राजदूत भी था।

एक दिन साहब और उसकी पत्नी टहलते हुये किसी अरबी शब्द के बारे में बहस कर रहे थे। हरनाम उधर से गुजर रहा था। उसने क्षमा मांगते हुये विनयपूर्वक कहा कि मेम साहिबा का जुमला सही है।

अब तो हरनाम पर उन दोनों की पूर्ण कृपा हो गयी। उसे, उन्हीं के बंगल में रहने, खाने की सुविधा मिल गयी। हाथ-

खर्च के लिये दो सौ रुपया महीना दिया जाने लगा। काम था, मेम साहिबा को अरबी और फारसी पढ़ाना।

इसी बीच उसने अपनी एक गल्ले-किराने की दूकान भी करली थी।

प्रथम महायुद्ध में ईरान, मध्य पूर्व का सप्लाई केन्द्र बना। करोड़ों रुपये महीने का सामान वहां से वितरण होने लगा। तेल कम्पनी का बड़ा साहब निर्देशक नियुक्त हुआ।

अधिकांश सामान के वितरण का काम मिला हरनाम दास एण्ड कम्पनी को। सन १९१८ ई० तक हरनाम दास करोड़पति सेठ बन गया। वहीं चार-छः मुताह (कन्ट्राक्ट मेरिज या अल्पकालीन विवाह) कर लिये। इन बीवियों के अलावा उसके रंगमहल में एक से एक सुन्दरी दासियाँ थी। सैकड़ों नौकर-चाकर, मुनीम—गुमाश्ते घर और आफिस का काम देखते। उसके दरवाजे पर अनेक अतिथि और प्रतिनिधि आते रहते, सबका यथायोग्य आदर-सत्कार होता।

संयोग से एक दिन एक भारतीय साधु घूमता हुआ वहां जा पहुँचा। स्वदेश के संन्यासी की दूसरों की अपेक्षा अधिक खातिरदारी होनी स्वाभाविक ही थी। एक महीने तक किसी राजा-महराजा का सा आयोजन उनके लिये हुआ। विदाई की दक्षिणा में कीमती शाल-दुशाले तथा अच्छी रकम नकद दी गयी।

पन्द्रह वर्ष के लम्बे समय के बाद, एक साधु महाराज हरिद्वार के पास मुनि की रेती में एक बड़े-पकौड़ी की दूकान पर खड़े होकर, दूकानदार को वे बड़े ध्यान से देख रहे थे। महाराज को प्रेम से नाश्ते का निमन्त्रण मिला। पहले से ही ५-४ संन्यासी प्रसाद पा रहे थे। दूकान पर ग्राहकों की अच्छी भीड़ थी।

दूकानदार ने पूछा कि महराज आप इतने ध्यान से मुझे क्यों देख रहे थे ?

संन्यासी ने १५ वर्ष पहले के ईरान प्रवास की अपनी कहानी सुनाकर कहा कि सेठ हरनामदास का चेहरा आपसे एकदम मिलता-जुलता है।

जब उन्हें पता चला कि वे उस हरनामदास से ही बातें कर रहे हैं तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

जो कहानी उन्हें सुनाई गई, वह इस प्रकार थी :—

आपके चले जाने के एक वर्ष बाद बड़े साहब का तबादला हो गया और छोटे साहब ने काम सम्हाला। मैंने कभी उसकी परवाह नहीं की थी, इसलिये वह और उसके मुंहलगे दोस्त एवं कर्मचारी मुझसे जलते रहते थे। कुछ ही दिनों बाद मुझ पर जालसाजी का मुकदमा चलाया गया जिसकी सजा होती मौत।

जल्दी से व्यवस्था करके, मुनीमों को काम सम्हलाकर मैं ४-५ लाख की सम्पत्ति लेकर अपने सचिव के साथ ईरान से छद्मवेश में एक जहाज से रवाना हुआ। रास्ते में मेरा

सचिव सन्दूकें लेकर न जाने कहाँ उतर गया। मैं जब बम्बई बन्दरगाह पहुंचा तो मेरे पास थोड़े से रुपये और एक बहुमूल्य हाथ-घड़ी बची थी।

घड़ी बेचने के लिये दो-तीन दूकानों में गया। दूकानदार मेरी मैली भेष-भूषा और बढ़ी हुई दाढ़ी देखकर सन्देह करने लगे कि शायद मैं घड़ी चुराकर लाया हूं। केवल ५०), ६०) रुपये तक देने को तैयार हुए। मैंने क्रोध में आकर घड़ी को समुद्र में फेंक दी।

जगह—जगह मजदूरी करता हुआ, संयोग से यहाँ आकर बड़े-पकौड़ी की दूकान कर ली। थोड़े दिनों तक तो मन में संताप रहा, फिर एक दिन एक महात्मा आये। उनका उपदेश था, "बच्चा, धन और मान में सच्चा सुख नहीं है। ईश्वर के बन्दों की सेवा करो, शान्ति मिलेगी।" तब से महात्माओं को प्रसाद देकर जो बच जाता है उसी से दो जून की खुराक आराम से मिल जाती है। सुबह ६ बजे से रात के १२ बजे तक मेहनत करने से शरीर स्वस्थ रहता है और मन भी नाना चिन्ताओं से मुक्त है। भगवती गंगा का तट है और साधु महात्माओं का संग-लाभ ; सचमुच, बहुत आनन्द में हूँ।

संन्यासी ने प्रसाद पाकर हरनामदास को प्रणाम किया और कहा कि वास्तव में ही आप सुख-दुःख के समदर्शी-सम-भोगी हैं।

सन् १९६१ मे हरनामदास की मृत्यु हुई। मेरे मित्र स्वर्गीय श्रीराम शर्मा (सम्पादक, विशाल, भारत) के घर पर एक-दो बार उनसे मुलाकात हुई थी। गरीबी होने पर भी आदतें पहले जैसी ही थी। एक-दो-कम्बल या कोट पास में होता तो वह किसी जरूरतमन्द को दे देता। कई दिनों तक कड़ाके की सर्दी भुगतने के बाद फिर बना पाता। परन्तु कभी उसके चेहरे पर दीनता के भाव नहीं दिखाई दिये।

❀

आत्मीयता

बात पुरानी है परन्तु बहुत पुरानी भी नहीं क्योंकि ४०-५० वर्ष पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने सेठ जी को देखा था। इनका अपना गाँव तो राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में था, परन्तु ज्यादातर रहते थे बम्बई में। वहाँ बड़े पैमाने पर रुई और आढ़त वगैरह का कारोबार था।

वर्ष में एक बार गाँव जाते तो गरीब और जरूरतमन्दों में महीनों पहले से चर्चा शुरू हो जाती। गाँव के सैकड़ों व्यक्ति दो-चार कोस अगवानी करने के लिए आते। सेठजी भी छोटे-बड़े सबको उनके नाम से सम्बोधित करके राजी-खुशी का हाल पूछते। इतने बड़े व्यक्ति से अपना नाम सुनकर लोगों के मन में गुदगुदी सी होती और वे अपने को भाग्यवान् मानते।

जितने दिन वे वहाँ रहते, प्रायः रोज ही कभी हनुमानजी के प्रसाद में तो कभी सत्यनारायण भगवान् की कथा उद्यापन के उपलक्ष में गाँव के लोगों को भोजन के लिए बुलाते रहते। ब्राह्मणों को प्रति-घर एक रुपया एक धोती और एक साड़ी भेंट दी जाती। यद्यपि आज के बड़े धनिकों के अनुपात में उनके पास रुपया कम था, परन्तु उन दिनों चीजें बहुत सस्ती थीं और उनका मन बहुत ऊंचा था। इसलिए जितनी आय होती उसका अधिकांश दान-धर्म में खर्च कर देते।

उनके एक मात्र लड़के का विवाह देश के गाँव में ही होना निश्चित हुआ। उन दिनों छपे हुए निमंत्रण-पत्र भेजने की प्रथा नहीं थी। नाई या ब्राह्मण गाँव के सब घरों में जाकर न्यौता-बुलावा देते थे। परन्तु जो गोत्र भाई थे उनको न्यौता देने सेठजी स्वयं गये। वैसे उनके साथ पांच-दस दूसरे व्यक्ति हमेशा रहते ही थे।

संयोग से, उनकी बिरादरी में एक घर ऐसा भी था जिसके भुने हुए चने, मुरमूरे की दुकान थी। लोगों को बड़ा ताज्जुब हुआ जब इतने बड़े सेठ एक गरीब भाई की दुकान पर जाकर रखी हुई मूंज की खाट पर बैठ गए।

दो-तीन बार निमंत्रण की याद दिलाने के बाद भी सामने वाला व्यक्ति चुप रहा। सेठजी उनकी चुप्पी का मतलब समझ गए। उन्होंने कहा, "भाई सुबह से घर से निकला हुआ हूँ, प्यास लग रही है, थोड़ा सा पानी मंगवा दो।" दुकानदार जब लोटे में पानी लेकर आया तो सेठजी ने हँसकर कहा, कि "तुम इतना तो जानते ही हो कि खाली पेट पानी पीने से वायु हो जाती है इसलिए थोड़ा सा गुड़ और चने मुरमुरे खाकर पीऊंगा।" उसने सहमते हुए ये दोनों चीजे लाकर दीं, जिन्हें खाकर बडे प्रेम से सेठजी ने पानी पीया।

पास खड़े हुए लोगों ने देखा कि उस गरीब की आंखों में हर्ष की अश्रुधारा बह चली। इतने बड़े व्यक्ति उनके दरवाजे

पर बड़े प्रेम से चना मुरमुरा खा रहें थे। उसने हाथ जोड़कर कहा "पूज्यवर, भोज में शामिल होने का मन तो नहीं था क्योंकि मेरा ऐसा ख्याल था कि मेरे यहाँ काम पड़ने पर आप आयेंगे नही। परन्तु मेरी धारणा गलत निकली इसलिए मैं लज्जित हूँ और हम सपरिवार भोजन के लिए आपके यहाँ आयेंगे।"

कहा जाता है कि दावत चार-पाँच दिनों तक चलती रही। आसपास के गाँवों से हजारों व्यक्ति आये। सबका यथायोग्य आदर सत्कार किया गया।

विवाह के कामों में व्यस्त रहते हुये भी सेठजी का ध्यान में यह बात आयी कि घर की भंगिन 'भूरी' की जगह काम करने के लिए कोई दूसरी ही आ रही है। उसे बुलाकर पूछा तो कहने लगी कि आपकी भंगिन की लड़की के विवाह पर उसे रुपये की अटक पड़ गई थी इसलिए मैंने एक सौ रुपया उधार देकर आपका घर गिरवी रख लिया है। उसकी बात सुनकर सेठजी बहुत गुस्सा हुए और उन्होंने उसी समय 'भूरी' को बुला भेजा।

बम्बई से बीसों दोस्त-मित्र शादी में आये हुए थे, उन सबके सामने ही सेठजी ने कहा, "भूरी काकी, भला तुमने यह गलत काम क्यों किया? जब-जब तुम्हारे यहाँ से समाचार गये तब तुम्हें बम्बई से रुपये भिजवा दिये थे,।" भूरी ने कुछ-सहमते हुए मे स्वीकार किया कि पहली तीनों लड़कियों के विवाह

सिर्फ इतना ही बोल पाया, "सेठ जी, मैं तो मर गया। जिस जौहरी से वे हीरे लाया था, उसे क्या जवाब दूँगा ?

सेठ ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा, "भाई तुम अच्छी तरह याद करो, जल्दी में कहीं भूल गये होंगे, घर जाकर तालाश करो। मेरे यहाँ तो जो पुड़िया तुम दे गये थे, वैसी की वैसी तुम्हारे सामने है। अभी हड़बड़ाये हुये हो, आश्वस्त होकर शान्ति से घर में ढूंढ़ोगे तो कहीं मिल जायेगी।"

अशरफ़ ने कहा, "सेठ जी वह छोटी पुड़िया इसी बड़ी पुड़िया में थी, ऐसा मुझे याद है। इसे छोड़ कर जैसे ही मैं आपके यहाँ से गया मुझे रास्ते में ही याद आई और वापस यहाँ आया हूँ। आप अपनी आलमारी में फिर से देख लें।" सेठ ने अलमारी खोल कर अशरफ को दिखा दी, वहाँ कोई पुड़िया नहीं थी।

हताश और चिन्तित अशरफ वहाँ से अपने घर आ गया। मन की तसल्ली के लिए उसने अपने यहाँ भी खोज-बीन की पर पुड़िया नहीं मिलनी थी, नहीं मिली। वह रोने लगा। खाना-पिना सब छूट गया। दो एक दिन निकल गए। हिम्मत कर के फिर वह सेठ के यहाँ गया और गिड़गिड़ा कर कहने लगा, "सेठ जी, मुझ गरीब पर रहम कीजिए। पुड़िया आपके यहीं छूटी है। हो सकता है, आप कहीं रखकर भूल गए हों। एक बार फिर देख लीजिए।" सेठजी को अशरफ की इन बातों से

पाप का धन

कुछ वर्ष पहले बम्बई में अशरफ भाई नाम का, जवाहरात का एक दलाल था। धनवान तो नहीं, परन्तु नेक और मेहनतकश इतना था कि व्यापारियों का उस पर पूर्ण विश्वास था। इसीलिये से बहुत रुपयों का माल उसे बेहिचक सौंप देते थे। एक बार, एक सेठ के यहाँ हीरों की खरीदारी थी। अशरफ भाई सेठ की पसन्द के लिए एक पुड़िया ले गया। सेठ ने कहा, "पुड़िया छोड़ जाओ, दो एक दिन में जवाब दूँगा।"

सेठ काफी धनी और नामी-गरामी था। अशरफ ने पुड़िया छोड़ दी और घर लौट आया। रास्ते में उसे ख्याल आया कि एक और छोटी पुड़िया जिसमें १५ बेशकीमती हीरे थे, सेठ के वहीं छूट गई। वह उल्टे पैरों भागा-भागा सेठ की कोठी पर पहुँचा और बहुत ही संकोच के साथ बोला, सेठ जी मैंने अभी जो पुड़िया आपके पास छोड़ी है, उसमें एक छोटी पुड़िया और थी; भूल से वह भी उस बड़ी पुड़िया में रह गई है। कृपया देख कर मुझे लौटा दें।" सेठ जी ने अपनी आलमारी से पुड़िया निकाल कर ज्यों की त्यों अशरफ के सामने रख दी। काफी उलट-पुलट कर देखनेके बाद भी उसको छोटी पुड़िया नहीं मिली, अशरफ के पैरों तले से जमीन खिसक गई। वह रुँधे गले से

के रुपये तो आपके यहाँ से आ गये थे, उस समय आपके काका भी जीवित थे इस समय कुछ जल्दी में थी, अच्छा घर और वर मिल रहा था इसलिए जीवणी से रुपये उधार लेकर धापी (लड़की) का विवाह कर दिया, उसी की एवज में आपका घर गिरवी रखना पड़ा, चार-छः महीनों में छुड़ालूँगी।

एक गरीब भंगिन के प्रति सेठजी द्वारा 'काकी' का सम्बोधन सुनकर उपस्थित लोगों को आश्चर्य होना स्वभाविक था, भूरी भी बिना झिझक के अपने स्वर्गीय पति को सेठजी का काका बता रही थी।

जीवणी किसी तरह भी विवाह के पहले घर छोड़ने को तैयार न थी, किसी तरह समझा-बुझाकर उसे २००) रु० देकर वापस भूरी को नाम सौंप दिया गया।

आजकल की मान्यताओं और तहजीब के आधार पर ये बातें अटपटी सी लगेंगी, परन्तु उस समय तन की छुआछूत रखते हुए भी लोगों के मन में प्यार था, एक-दूसरे के दुख-सुख में शामिल रहते और आत्मीयता के साथ आपस में सम्बोधन भी चाचा, ताऊ, मामा, इत्यादि का था।

❀

पाप का धन

कुछ वर्ष पहले बम्बई में अशरफ भाई नाम का, जवाहरात का एक दलाल था। धनवान तो नहीं; परन्तु नेक और मेहनतकश इतना था कि व्यापारियों का उस पर पूर्ण विश्वास था। इसीलिये से बहुत रुपयों का माल उसे बेहिचक सौंप देते थे। एक बार, एक सेठ के यहाँ हीरों की खरीदारी थी। अशरफ भाई सेठ की पसन्द के लिए एक पुड़िया ले गया। सेठ ने कहा, "पुड़िया छोड़ जाओ, दो एक दिन में जवाब दूँगा।"

सेठ काफी धनी और नामी-गरामी था। अशरफ ने पुड़िया छोड़ दी और घर लौट आया। रास्ते में उसे ख्याल आया कि एक और छोटी पुड़िया जिसमें १५ बेशकीमती हीरे थे, सेठ के वहीं छूट गई। वह उल्टे पैरों भागा-भागा सेठ की कोठी पर पहुँचा और बहुत ही संकोच के साथ बोला, सेठ जी मैंने अभी जो पुड़िया आपके पास छोड़ी है, उसमें एक छोटी पुड़िया और थी; भूल से वह भी उस बड़ी पुड़िया में रह गई है। कृपया देख कर मुझे लौटा दें।" सेठ जी ने अपनी आलमारी से पुड़िय निकाल कर ज्यों की त्यों अशरफ के सामने रख दी। काफी उलट-पुलट कर देखनेके बाद भी उसको छोटी पुड़िया नहीं मिली, अशरफ के पैरों तले से जमीन खिसक गई। वह रुंधे गले से

सिर्फ इतना ही बोल पाया, "सेठ जी, मैं तो मर गया। जिस जौहरी से वे हीरे लाया था, उसे क्या जवाब दूँगा ?

सेठ ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा, "भाई तुम अच्छी तरह याद करो, जल्दी में कहीं भूल गये होंगे, घर जाकर तालाश करो। मेरे यहाँ तो जो पुड़िया तुम दे गये थे, वैसी की वैसी तुम्हारे सामने है। अभी हड़बड़ाये हुये हो, आश्वस्त होकर शान्ति से घर में ढूंढ़ोगे तो कहीं मिल जायेगी।"

अशरफ़ ने कहा, "सेठ जी वह छोटी पुड़िया इसी बड़ी पुड़िया में थी, ऐसा मुझे याद है। इसे छोड़ कर जैसे ही मैं आपके यहाँ से गया मुझे रास्ते में ही याद आई और वापस यहाँ आया हूँ। आप अपनी आलमारी में फिर से देख लें।" सेठ ने अलमारी खोल कर अशरफ को दिखा दी, वहाँ कोई पुड़िया नहीं थीं।

हताश और चिन्तित अशरफ वहाँ से अपने घर आ गया। मन की तसल्ली के लिए उसने अपने यहाँ भी खोज-बीन की पर पुड़िया नहीं मिलनी थी, नहीं मिली। वह रोने लगा। खाना-पिना सब छूट गया। दो एक दिन निकल गए। हिम्मत कर के फिर वह सेठ के यहाँ गया और गिड़गिड़ा कर कहने लगा, "सेठ जी, मुझ गरीब पर रहम कीजिए। पुड़िया आपके यहीं छूटी है। हो सकता है, आप कहीं रखकर भूल गए हों। एक बार फिर देख लीजिए।" सेठजी को अशरफ की इन बातों से गुस्सा आ गया। उनकी नियत पर एक मामूली दलाल शक

करे यह असहनीय था। डाँट कर उन्होंने उसे कोठी से बाहर निकाल दिया।

अब अशरफ की आंखों के सामने अंधेरा छा गया, लेकिन वह हताश नहीं हुआ। वह उस जौहरी के पास गया, जिससे कीमती हीरों की पुड़िया ली थी। बहुत ही स्पष्ट शब्दों में उसने सारी बात बता दी। सेठ पर अपना शक भी जता दिया।

जौहरी अशरफ को बहुत समय से जानता था। उसकी ईमानदारी और नेकनियती में भी शक करने की गुंजायश नहीं थी। वह उसे ढाढ़स देते हुए बोला, "घबराने की कोई बात नहीं कहीं इधर-उधर रख कर भूल गए होंगे, या सेठ के यहां कहीं भूलसे रखी पड़ी होगी, दस-पाँच दिन में मिल जायगी।" अशरफ को सन्तोष तो नहीं हुआ, परन्तु करता भी क्या? घर आ गया।

लेकिन मन को चैन नहीं मिला। ३-४ दिन बाद ही वह फिर जौहरी के पास पहुँचा और बोला—"भाई साहब, वह पुड़िया तो मिली नहीं। मैं जानता हूं कि इस समय उन हीरों की कीमत इतनी अधिक है कि उसे चुकाना मेरे बस की बात नहीं। बड़ी कृपा होगी, यदि आप उसकी लागत कीमत मुझसे ले लें। अधिकांश तो अभी चुका दूँगा, बाकी रकम का रुक्का लिख दूँगा।"

जौहरी ने धीरज से सब कुछ सुना और अशरफ को सलाह दी कि तुम एक बार पुनः सेठ के यहाँ जाओ, शायद पुड़िया

मिल जाए अशरफ ने दिल कड़ा किया और एक बार फिर सेठ-जी के घर पहुँचा और उनके पैर पकड़ कर रोने लगा कि सेठ जी मैं बाल-बच्चों वाला आदमी हूँ, वे सब बरबाद हो जाएंगे। आइंदा कौन मेरा विश्वास करेगा? कौन मुझे जवाहरात सौंपेगा? मेरा धन्धा हो चौपट हो जाएगा। आप एक बार फिर तलाश लें।" सेठ ने सब कुछ सुना और उसे पहले की भाँति इस बार भी दुत्कार कर घर से निकाल दिया।

इसके बाद अशरफ को इतना सदमा पहुँचा कि वह विक्षिप्त सा रहने लगा। कभी-कभी रात में चौंक कर उठ बैठता और रोने लगता। जौहरियों से अशरफ की यह अवस्था छिपी नहीं थी, उन्होंने सेठ से बातचीत की इन दोनों के बीच एक पंच नियुक्त कर दिया।

पंच के सामने अशरफ ने अपना बयान देते हुए बताया कि जिस दिन मैं सेठ जी के पास हीरे रखकर गया था उस दिन और कहीं नहीं गया। १५ हीरों की पुड़िया उस बड़ी पुड़िया में थी, ऐसा मुझे याद है। सेठ जी के यहाँ पुड़िया छोड़ कर घर आ रहा था कि रास्ते में ही दूसरी पुड़िया की याद आई और उन्हीं पैरों लौटकर सेठजी की कोठी पर आया। मुझे यकीन है कि पुड़िया वहीं रह गई हैं। पंच ने प्रत्यक्ष प्रमाण मांगा तो उसने बताया कि न तो मेरे पास कोई तीसरा प्रत्यक्ष गवाह है और न मैंने इन्हें अपनी जानकारी में वह पुड़िया ही दी थी। इधर, सेठ ने अपने जवान लड़के के सिर पर हाथ रखकर सौगन्ध

खाई कि मेरे पास इसकी कोई दूसरी पुड़िया नहीं आई थी। फैसला अशरफ के खिलाफ हो गया।

अचानक अशरफ सेठ के पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा "यह आपने क्या किया ? आपका चेहरा बताता है कि हीरे आपके पास है। क्यों आपने इकलौते जवान बेटे के सिर पर हाथ रखकर इतनी बड़ी कसम खाई ? खुदा का दिया आपके पास सब कुछ है।"

संयोग से तीन-चार दिनों बाद ही सेठ के लड़के को गर्दन तोड़ (मैनेनजाइटीज) बुखार हो गया और वह दूसरे दिन ही चल बसा। उस घर में तो शोक हुआ ही, परन्तु अशरफ भी दुःखी होकर रोने लगा कि शायद उसके कारण से यह संयोग बना।

दो-तीन दिन के बाद सेठ हीरे की पुड़िया लेकर अशरफ के पास आया और उसके गले लगकर बिलख-बिलख कर कहने लगा "अशरफ भाई, मेरे मन में लालच समा गया और मैंने बेटे से अधिक धन को तौला किन्तु भगवान के घर में देर है, अंधेर नहीं। मेरी पत्नी एक प्रकार से विक्षिप्त सी हो गयी है और जोर-जोर से चिल्लाती है कि मेरे ही पापाचार ने बेटे के प्राण ले लिये।"

❀

दान

एक दिन किसी मित्र के साथ एक संस्था देखने गया वहां के पंखों की तीनो ताड़ियों पर बड़े-बडे अक्षरों में उनके द्वारा प्रदान की घोषणा लिखी हुई थी। जब मैंने इस सन्दर्भ में कुछ नहीं कहा तो वे कहने लगे कि पिछले वर्ष यह चारों पंखे हमने ही दिये हैं। मुझे ऐसा लगा कि वे यहाँ आने वालों में से अधिकाश लोगों से यही बात दोहराते है। मैंने हँसकर कहा कि यह तो इतने बड़े-वड़े अक्षरों के विज्ञापन से ही पता चल जाता है। देखा कि मेरी बात सुनकर वे कुछ झेंप-से गये थे।

वैसे दान देकर नाम बड़ाई सभी व्यक्ति चाहते है। परन्तु इसकी भी एक सीमा होनी उचित है। आज, अधिकांश दानी सौ देकर पांच सौ का नाम चाहते हैं परन्तु आज से चार सौ वर्ष पहले अकबर बादशाह के प्रधान मन्त्री अब्दुल रहमान रहीम को किसी ने पूछा था कि आप दान देते समय आँखें नीची क्यों रखते हैं ? इस पर उस दानवीर का जवाब था कि-

"देनहार कोउ और है भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम धरैं याते नीचे नैन॥"

खानखाना अब्दुल रहीम अद्भुत दानी थे परन्तु उस तरह

के कुछ व्यक्ति विरले ही होते हैं। इस सन्दर्भ में विभिन्न समय के तीन चित्र उपस्थित करता हूँ।

देश के प्रसिद्ध नेता श्री प्रकाशजी के पूर्वजों में दो सौ वर्ष पहले इसी प्रकार के दानवीर हो गये है। उनके यहाँ वीसों नौकर, मुनीम-गुमाश्ते थे, जिनका वेतन था, एक रुपया से दस रुपया माहवार। एक वार लगातार दो वर्षों तक अकाल पड़ा, चीजों के दाम महँगे होते गये। सर्वसाधारण के भूखों मरने की नौवत आ गयी। शाहजी ने एक दिन तीन-चार मुनीमों को बुलाकर कहा कि वहुत दिनों से तहखाने में पड़ी रहने के कारण अशर्फियाँ गीली हो गयी हैं इसलिये उनको धूप में सुखा लो। शाम को तौलने पर अशर्फियाँ उतनी ही रहीं, भला सोने की क्या सुखता ? शाहजी ने वनावटी गुस्सा करते हुए उनको कहा, "तुम लोग कुछ काम करना नहीं जानते, कल इनको अच्छी तरह से सुखाओ।" इशारा स्पष्ट था। दूसरे दिन अशर्फियाँ एक पाव कम थीं, शाहजी खुश थे। सूखी हुई अशर्फियाँ वापस तहखाने रख दी गयीं। इसी तरह, जव तक वे जीये, जरूरतमन्दों को गुप्त-रूप से हर प्रकार की सहायता देते रहे। यहाँ तक की एक हाथ का दिया दूसरे हाथ को भी पता नहीं चलता। लोग उन्हें झक्की समझते और प्यार और हंसी में 'झक्कड़शाह' कहने लगे। उनके परिवार वालों ने वड़ावाजर के प्रसिद्ध मनोहरदास कटरा के साथ-साथ धर्मतल्ला के मैदान में मनोहरदास तालाव वनवाया था। इसके चारों तरफ की छतरियों में

आज भी सैकड़ों व्यक्ति धूप और वर्षा में आश्रय लेते हैं और उनके द्वारा छोड़ी हुई गोचर भूमि में सैकड़ों जानवर चरते रहते हैं।

इस प्रसंग में, रामगढ़ (शेखावाटी) के एक सेठ की बात याद आ जाती है। पौष-माघ में, इस क्षेत्र में बहुत ज्यादा सर्दी पड़ती है। कभी-कभी तो रात में बाहर रखा हुआ पानी जम कर बर्फ हो जाता है। ऐसी ही एक रात में सेठ जी ने गीदड़ों की 'हुँआ-हुँआ' सुनी। दूसरे दिन पण्डितों को बुलाकर पूछा तो उन्होंनें बताया कि ज्यादा सर्दी के कारण वे सब ठिठुर रहे हैं। गीदड़ों की संख्या पूछने पर चौदह-सौ, पन्द्रह सौ बता दी और उतनी ही रजाइयों की आवश्यकता भी। सेठ जी ने थोड़े गुस्से से कहा कि महाराज ऐसा अंधेर क्यों करते हैं। पन्द्रह सौ में पाँच सौ बच्चे भी तो होंगे, उनको अलग रजाई की क्या दरकार है? वे तो माँ-बाप के साथ ही सो जायेंगे।

खैर, दो-तीन दिनों में ही एक हजार रजाइयाँ भरवाकर पण्डितों की मार्फत भेज दी गयीं। सेठ जी मित्रों और सेठानी को हँसकर कह रहे थे कि मुझे ठगना सहज नहीं है, देखो किस प्रकार पाँच सौ रजाइयों की बचत कर ली!

दूसरी बात फिर गीदड़ों की दर्द-भरी पुकार सुनकर सेठी जी की नीद उचट गयीं। पण्डितो को बुलाकर पूछा गया तो उत्तर मिला कि श्रीमान्! रजाइयों से सर्दी तो मिट सकती है परन्तु पेट की भूख नहीं; बेचारे कई दिनों से भूखे है इसलिये रो रहे

है। दूसरे दिन बहुत-सा हलुआ पूड़ी बनवाकर भेज दिया गया। परन्तु अगली रात फिर वही आवाजें आयीं। लिहाजा, फिर पण्डितों को बुलाया गया। इस बार हँसते हुये उन्होंने कहा—"सेठ जी! वे अच्छी तरह खा-पीकर आराम से रजाइयाँ ओढ़कर बैठे हैं। आपको आशीर्वाद दे रहे हैं और रोज इसी तरह देते रहेंगे।

मुनीमों ने सेठ जी को बहुतेरा कहा कि इन पण्डितों ने आपको ठग लिया है, भला, कहीं गीदड़ भी रजाइयाँ ओढ़ते हैं या पंगत लगाकर हलुआ पूड़ी खाते हैं? परन्तु सेठ जी किसी तरह यह स्वीकार करने को तोयार नहीं थे। शायद, मन में तो वे भी जानते थे। परन्तु उनको इस प्रकार के कार्यों से एक नैसर्गिक आनन्द मिलता था और इस बहाने गाँव के गरीब ब्राह्मणों के पास कुछ चीजें पहुँच जाती थीं।

ये बातें सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले की है, परन्तु इन दिनो में भी ऐसे व्यक्ति हुए है। मेरे मित्र श्री महावीर त्यागी ने भारत सरकार के तत्कालीन खाद्य मन्त्री स्वर्गीय रफी अहमद किदवई की एक घटना सुनायी थी। जिसे सुनकर वहाँ बैठे हुये मित्रों की आँखें गीली हो गयी।

एक दिन किदवई जी की नई दिल्ली की कोठी में ५-६ मित्र बैठे थे, एक पुराना कांग्रेस कार्यकर्त्ता आकर उदासी भरे लहजे में कहने लगा—"रफी भाई! लड़की बड़ी हो गयी है, विवाह तय हो गया है, तीन हजार की जरूरत है इससे कम में

किसी तरह भी काम पार नहीं पड़ेगा।" रफी साहब के पास अपना तो था ही क्या ? परन्तु उनके कुछ ऐसे मित्र थे जो उनकी ऊलजलूल फर्माइशों को पूरी करते रहते थे। खैर, उसको तीन हजार रुपये दिला दिये।

उसके जाने के बाद स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने कहा—"रफी तुम भी अव्वल दर्जे के बेवकूफ हो, फिजूल में रुपये ठगा बैठे। उस साले की शादी तो हुई ही नहीं, फिर यह बेटी कहाँ से आ टपकी ?" किदवई जी ने मंजूर किया कि वे भी जानते है कि न तो उसकी शादी हुई है और न उसके बेटी ही है। फिर तो त्यागी जी ने किदवई जी को बुरा-भला कहना शुरू किया—"वजारत से कुल बाइस सौ रुपये मिलते है, वे तो नवाब साहब पाँच चार दिनों में खर्च कर दिया कहते हैं।" फिर मित्रों से मांग तांगकर इन लफगाँ को देते रहते हैं। भला, यह भी कोई बात हुई ?"

देखा गया कि किदवई जी की आँखों में आँसू आ गये, कहने लगे, "भाई मेरे, यह बेचारा जरूर किसी आफत में पड़ गया होगा तभी तो बेटी की शादी का नाम लेकर रुपया मांगने आया था। भला, मैं उसको बेईमान साबित करने बैठता या मुसीबत में थोड़ी सी सहायता करा देता ? जिनसे दिलाता हूँ, वे तो लखपति-करोड़पति हैं। उनके लिए १०-२० हजार में क्या फ़र्क पड़ता है।"

कहते हैं कि जब पंडित नेहरू स्वर्गीय किदवई जी के गाँव गये और उन्होंने टूटे खपरैलों का उनका छोटा-सा मकान देखा तो उन्हें रुलाई आ गयी। चारों तरफ गरीबी और अभाव नजर आ रहा था। उन्होंने बेगम से पेंशन लेने को बहुतेरा कहा परन्तु उसका जवाब था, "जवाहर भाई, मुझे ऐसे शख्स की बेवा होने का फ़ख़्र हासिल है जिसने अपनी सारी ज़िन्दगी फाका-मस्ती में गुज़ार दी परन्तु उम्र भर दोनों हाथों से जरूरतमन्दों को दिया ही दिया। भला, अब मैं जिन्दगी के आखिरी दिनों में सरकार से पेंशन लेकर क्या करूँगी? आखिर मेरा अकेली का खर्च ही कितना है?"

❀

बलजी भूरजी

आज से सत्तर अस्सी वर्ष पहले राजस्थान के शेखावाटी अंचल में बलजी-भूरजी धाड़ेतों (डाकुओं) का बड़ा दबदबा था। लोग उनके नाम सुनकर ही कांपने लगते। ऐसे भी घटनाएं सुनने में आयीं कि १००-१५० बारातियों के हथियारों से लैस दल को बलजी-भूरजी के ५-६ साथियों के सामने अपना सामान और धन दौलत रख देना पड़ता था।

जो भी हो, उनका एक नियम था, उन्होंने कभी ब्राह्मण, हरिजन, गांव के बहन-बेटी अथवा दुःखी-दरिद्र को नहीं सताया। इनके प्रति वे इतने सदाशय रहे कि कई बार तो प्राणों की बाजी लगाकर या गिरफ्तारी की जोखिम उठाकर भी वे गरीब ब्राह्मणों की कन्याओं के विवाह में मायरा (भात) भरने के लिये आया करते थे।

कुछ वर्षों बाद, उनके नाम का नाजायज फायदा उठाकर नानिया नाम का एक रूंगा (राजस्थान की एक नीच जाति) अपने को बलजी बता कर निरीह लोगों को सताने लगा। इस बात की चर्चा बलजी-भूरजी तक भी पहुंची, किन्तु उन्होंने इसे गम्भीरता से नहीं लिया।

इसी बीच एक वारदात हो गयी। बिसाऊ नाम का कस्बा

शेखावाटी के उत्तरी कोने में है। यहां के सेठ खेतसीदास पोद्दार अत्यन्त सरल और धर्मप्राण व्यक्ति थे। उनके दान-पुण्य की चर्चा पास पड़ौस के अंचल में फैली हुई थी। लोग उनका नाम बड़े आदर के साथ याद किया करते थे जरूरतमन्दों को वे गुप्तरूप से सहायता करते, नाम या शोहरत की उन्होंने परवाह कभी की नहीं।

एक दिन सेठ जी अपने चीलिये ऊंट पर सवारी कर पास के गाँव में रिश्तेदारी में जा रहे थे। उनके इस ऊंट की चर्चा आस-पास गावों और कस्बों में थी। वह सवारी में जितना आरामदेह था, उतना ही चाल में चील की तरह तेज था इसीलिये उसका नाम चीलीया पड़ गया था। आमतौर से सेठजी के साथ सफर में हमेशा एक-दो ऊंट या घोड़े और दो-चार सरदार रहते थे। किन्तु, संयोग की बात है कि उस दिन वे अकेले ही थे

पौष की संध्या था। हल्की सर्दी पड़ने लगी थी, झुटपुटा हो चला था। सेठजी ने देखा कि कुछ दूर रास्ते के किनारे एक अर्धनग्न वृद्ध उन्हें रुकने का संकेत कर रहा है। तेजी से ऊंट बढ़ाकर वे उसके पास पहुंचे।

पूछने पर पता चला कि वह भी उसी गाँव जा रहा है जहाँ सेठजी जा रहे थे। पैर में मोच आ गयी इसलिये लाचारी से बैठ जाना पड़ा। जाना जरूरी है, यदि सेठजी उसे साथ ले लें तो बड़ी कृपा हो।

सेठजी ने ऊंट के जैका (बैठा) लिया और सहारा देकर वृद्ध को अपने पीछे बैठाकर ऊंट को आगे बढ़ाया।

थोड़ी देर में ही उन्हें पीछे से जोर का एक झटका लगा। वे ऊंट पर से नीचे गिर पड़े। दौड़ते हुये ऊंट पर से गिरने के कारण एक बार तो उन्हें गश आ गया किन्तु किसी तरह से वे सम्हल गये। एक पैर की घुटने की हड्डी टूट गयी, पीड़ा जोरों से बढ़ने लगी।

ऊंट स्वामीभक्त था और समझदार भी। बहुत मारपीट और खींचातानी पर भी वह आगे नहीं बढ़ा। अड़ गया और टरडाने (आवाज़ करने) लगा।

सेठजी ने देखा, ऊंट के सवार की सफेद दाढ़ी-मूंछें हट चुकी थीं, उसकी शक्ल बड़ी भयावनी दिखाई दे रही थी। असह्य पीड़ा से वे विकल हो रहे थे फिर भी स्थिति समझने में उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने सवार से कहा "तुम्हारा परिचय जानना चाहूंगा।"

डाकू ने मूंछों पर हाथ फेरते हुये प्रसन्नता से अट्टहास करते हुए कहा—'मैं बलजी का आदमी हूँ, उनका मन इस ऊंट पर बहुत दिनों से था, पर मौका नहीं लग रहा था। अब आप या तो इस ऊंट को अपने संकेत से मेरे साथ जाने के लिये राजी कर दें, नहीं तो मुझे आपको इस दुनिया से उठा देना पड़ेगा।"

सेठजी बड़े मर्माहित हुये, उन्हें बलजी-भूरजी से इस प्रकार के धोखे की कल्पना नहीं थी। उन्हें सहसा विश्वास भी नहीं

हो पा रहा था। उन्होंने कहा कि बालाजी-भूरजी डाकू जरूर हैं पर इस ढंग की धोखेबाजी उन्होंने की है, ऐसा सुनने में अब तक नहीं आया। मुझे इस बात में कुछ धोखा सा लगता है। खैर, तुम जो कोई भी हो तुम्हें जीण माता की सौगन्ध है कि आजकी इस घटना की बात कहीं भी न कहना। तुम चाहो तो ऊंट के साथ सौ-दो सौ रुपये और दे दूंगा!

डाकू ने देखा कि उसका पाला एक अजीब आदमी से पड़ा है। ऊंट तो जा ही रहा है, कुछ रुपये देने को तैयार है। ताज्जुब तो यह है कि इस घटना के बारे में चुप रहने की शर्त रखता है।

कुछ असमंजस से उसने सेठजी से शर्त को समझाने के लिए कहा। सेठजी ने बताया कि वे डरते है कि इस घटना की चर्चा यदि फैली तो भविष्य में लोग अपरिचित बूढ़ों या असहाय राहगीरों की सहायता करने से डरेंगे। उन्हें इसमें धोखा नजर आएगा। मनुष्य का अपनी ही जाति पर से विश्वास उठ जाएगा। तुमने बेकार ही इतना सब किया। तुम्हें ऊंट इतना अधिक पसन्द था, मुझसे यूं ही मांग लेते।

इतनी बातें सुनने पर भी डाकू ने सेठजी से ऊंट को चलाने के लिये इशारा देने को कहा। सेठजी ने इशारा किया और ऊंट चल पड़ा। डाकू ने उन्हें उसी घायल हालत में बियाबान जंगल में छोड़ दिया।

सेठजी ने ऊंट को जैका (बैठा) लिया और सहारा देकर वृद्ध को अपने पीछे बैठाकर ऊंट को आगे बढ़ाया।

थोड़ी देर में ही उन्हें पीछे से जोर का एक झटका लगा। वे ऊंट पर से नीचे गिर पड़े। दौड़ते हुये ऊंट पर से गिरने के कारण एक बार तो उन्हें गश आ गया किन्तु किसी तरह से वे सम्हल गये। एक पैर की घुटने की हड्डी टूट गयी, पीड़ा जोरों से बढ़ने लगी।

ऊंट स्वामीभक्त था और समझदार भी। बहुत मारपीट और खींचातानी पर भी वह आगे नहीं बढ़ा। अड़ गया और टरडाने (आवाज़ करने) लगा।

सेठजी ने देखा, ऊंट के सवार की सफेद दाढ़ी-मूंछें हट चुकी थीं, उसकी शक्ल बड़ी भयावनी दिखाई दे रही थी। असह्य पीड़ा से वे विकल हो रहे थे फिर भी स्थिति समझने में उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने सवार से कहा "तुम्हारा परिचय जानना चाहूंगा।"

डाकू ने मूंछों पर हाथ फेरते हुये प्रसन्नता से अट्टहास करते हुए कहा—'मैं बलजी का आदमी हूँ, उनका मन इस ऊंट पर बहुत दिनों से था, पर मौका नहीं लग रहा था। अब आप या तो इस ऊंट को अपने संकेत से मेरे साथ जाने के लिये राज़ी कर दें, नहीं तो मुझे आपको इस दुनिया से उठा देना पड़ेगा।"

सेठजी बड़े मर्माहित हुये, उन्हें बलजी-भूरजी से इस प्रकार के धोखे की कल्पना नहीं थी। उन्हें सहसा विश्वास भी नहीं

हो पा रहा था। उन्होंने कहा कि बालाजी-भूरजी डाकू जरूर हैं पर इस ढंग की धोखेबाजी उन्होंने की है, ऐसा सुनने में अब तक नहीं आया। मुझे इस बात में कुछ धोखा सा लगता है। खैर, तुम जो कोई भी हो तुम्हें जीण माता की सौगन्ध है कि आजकी इस घटना की बात कहीं भी न कहना। तुम चाहो तो ऊंट के साथ सौ-दो सौ रुपये और दे दूंगा!

डाकू ने देखा कि उसका पाला एक अजीब आदमी से पड़ा है। ऊंट तो जा ही रहा है, कुछ रुपये देने को तैयार है। ताज्जुब तो यह है कि इस घटना के बारे में चुप रहने की शर्त रखता है!

कुछ असमंजस से उसने सेठजी से शर्त को समझाने के लिए कहा। सेठजी ने बताया कि वे डरते है कि इस घटना की चर्चा यदि फैली तो भविष्य में लोग अपरिचित बूढ़ों या असहाय राहगीरों की सहायता करने से डरेंगे। उन्हें इसमें धोखा नजर आएगा। मनुष्य का अपनी ही जाति पर से विश्वास उठ जाएगा। तुमने बेकार ही इतना सब किया। तुम्हें ऊंट इतना अधिक पसन्द था, मुझसे यूं ही मॉग लेते।

इतनी बातें सुनने पर भी डाकू ने सेठजी से ऊंट को चलाने के लिये इशारा देने को कहा। सेठजी ने इशारा किया और ऊंट चल पड़ा। डाकू ने उन्हें उसी घायल हालत में बियाबान जंगल में छोड़ दिया।

दूसरे दिन सेठजी को ढूंढ़ते हुए लोग वहाँ पहुंचे और उन्हें घर ले गये। क्या हुआ, ऊंट कैसे गया, इसकी चर्चा को उन्होंने टाल दिया।

असलियत बहुत दिनों छिपाये छिपती नहीं। बलजी-भूरजी को सेठजी के ऊंट गायब हो जाने की खबर लग गयी और यह भी पता चला कि नानिया रूंगा के पास वह ऊंट है। वे सारी बातें समझ गये।

कुछ ही दिनों बाद सेठजी का ऊंट उनके नोहरे में बंधा हुआ मिला। उसके गले में बंधी एक दफ्ती पर लिखा था—"सेठ खेतसीदासजी को बलजी-भूरजी की भेंट। वे डाकू जरूर हैं पर धोखेबाज नहीं।"

ठीक इसी के दूसरे दिन नानिया रूंगा की लाश झुंझनू के पास की पहाड़ी की तलहटी में पायी गयी।

❀

भूरी की नानी

बात बहुत पुरानी है पर लगता जैसे कल की हो। भूरी की नानी जाति से वैश्य, दुबली-पतली-सी काठी, साँवले रंग और साधारण नाक-नक्शे की थी। प्रौढ़ अवस्था पार कर वह बुढ़ापे की ओर बढ़ रही थी। प्रातः ४ बजे से रात्रि के १० बजे तक काम करती रहती। अपना काम तो था ही क्या ? परन्तु लोग उसकी कमजोरी पहचान गये थे। "नानी तुम्हारे बिना यह काम पार नहीं पड़ेगा" बस इतना कहना ही पर्याप्त था। फिर तो वह काम में जी-जान से जुट जाती और रात-दिन एक कर देती।

नानी की बेटी या दोहिती 'भूरी' को शायद ही किसी ने देखा था। दोनों बहुत पहले ही मर गयी थी। परन्तु भूरी का नाम सुनकर उसे ३० वर्ष पहले की एक बालिका की याद आ जाती और आँखें गीली हो जातीं। अब तो वह बच्चों से लेकर प्रौढ़ों तक सब की नानी बन गयी थी।

प्रति वर्ष गर्मी में गाँव के लोग बदरी-केदार की यात्रा पर जाते। रास्ते बीहड़ थे। आवागमन के साधनों के अभाव में नाना प्रकार के कष्ट झेलने पड़ते थे। परन्तु "गया बदरी काया सुधरी" की एक ऐसी मान्यता थी कि बिमार और वृद्ध व्यक्ति भी इस विकट और दुर्गम यात्रा के लिये तैयार हो जाते थे।

महीनों पहले से ही साथ ले जाने वाले सामान की तैयारी होने लग जाती, जैसे गरम कपड़े, छाता सूखा साग, फीके-मीठे पकवान, लौंग, जावित्री, जायफल, आदि। पास-पड़ोस के लोगों से मिलकर क्षमा-याचना भी कर ली जाती कि शायद वापस आना न हो सके।

उन दिनों नौकरों का २) रु० माहवार वेतन भी लोगों को भारी लगता था। अतः यात्रा में सब लोग आपस में मिलकर सारा काम कर लेते थे। वैसे तो एक गांव के यात्रियों की संख्या ४०-५० तक हो जाती थी परन्तु वे सब ५-७ दलों में बँट जाते। यात्रा के बहुत दिनों पहले से ही भूरी की नानी से लोग वचन ले लेते कि वह उनके साथ जायगी। क्योंकि, सिवाय खाने के उसे और कुछ देना नहीं पड़ता था और काम करती चार आदमियों के बराबर। इसके सिवा कई बार उत्तराखण्ड की यात्रा कर चुकी थी, अतः एक अच्छे 'गाइड' का काम कर देती थी। कौन सी चट्ठी में ठहरने की सुविधा है, कहाँ देखने योग्य क्या-क्या है—यह सब उसे भली-भाँति मालूम था।

नानी जिनको पहले वचन दे देती उनके ही साथ जाती। उसके बाद नजदीक के सम्बन्धियों के दबाव पर भी अपनी बात नहीं बदलती।

लगभग ३० वर्ष पहले हम लोग बदरी-केदार गये थे। भूरी की नानी को हमने पिछले वर्ष से ही कह रखा था-इसलिये वह हमारे दल के साथ थी।

ऋषिकेश से ही पैदल, टट्टू पर अथवा डांडी में आना पड़ता था। उन दिनों सावित रुपये को भुनाना आज के एक सौ के नोट के बराबर होता था। सामान ढोने के लिये लोग कुली नहीं करते। अपना-अपना बोझा स्वयं लेकर चलते थे। शुरू के दिनों में तो सभी राजी-खुशी जाते परन्तु बाद में किसी को दस्त, किसी को बुखार या किसी को सिर-दर्द की बीमारी हो जाती। तब नानी अपनी गठरी के अलावा बीमार व्यक्तियों का बोझा भी जिद करके ले लेती।

सात-आठ मील चलने के बाद लोग जब लोग चट्टी पर पहुंचते तो थकावट से चूर-चूर होकर लेट जाते। जितने ज्यादा पैर दुखते, उससे कहीं अधिक पेट की भूख बड़ी हुई होती। ऐसी हालत में खाना बनाना भी एक समस्या थी। परन्तु नानी को कहने की आवश्यकता नही पड़ती। चूल्हे पर दाल चढ़ाकर आटा गूँधने बैठ जाती। कभी-कदास हमलोग पूछते, "नानी, कितनी बार बदरी आ चुकी हो?" उत्तर में वह दोनो हाथो की ८ या ६ अंगुलियाँ दिखा देती। वह कहती की मुँह से कहने पर 'पुन्न' घटता है।

जैसे-जैसे ऊपर पहुँचते सर्दी बढ़ने लगती। नानी के पास ओढ़ने के दो कम्बल और बिछाने की एक चादर थी। जोशी मठ पहुंचने के पहले ही उसने अपना एक कम्बल किसी दक्षिणी साधु को दे दिया। जब हम जोशीमठ पहुँचे तब रात हो गयी थी। थोड़ी वर्षा भी शुरू हो गयी थी। चट्टी के बरामदे में

एक वृद्धा सर्दी से ठिठुर रही थी। भूरी की नानी ने अपना बचा हुआ कम्बल उसको ओढ़ा दिया। साथ वालों ने इस पर उसे बहुत बुरा-भला कहा।

सर्दी से बचाव के लिये साथ की एक महिला ने उसे अपना एक कम्बल उधार दे दिया।

जहाँ भी हमलोग पहुँचते, पता नहीं क्यों भूखे व नंगे लोग उसे ही घेरे रहते। हनुमान चट्टी पहुंचते तब तक सर्दी बहुत बढ़ गयी थी। नानी ने उधार लिया हुआ कम्बल एक गरीब महिला यात्री को दे दिया। जिसका कम्बल था वह गाली-गलौज पर उतर आयी। "पास नहीं धेला, चली है दानी-कर्ण बनने को।" दूसरे लोग शायद बीच-बचाव करते परन्तु वे सब भी नानी की इस आदत से खिंचे हुये थे।

वैसे रसोई बनाते समय दोनों वक्त दो-चार व्यक्तियों को चुपचाप रोटी दे देती थी और यह बात बर्दाश्त भी कर ली जाती। लेकिन धीरे-धीरे किसी की जाकेट कम होने लगी तो किसी की चद्दर; जिन्हें नानी दूसरे जरूरतमन्द लोगों को चुपके से दे देती थी।

मैंने देखा कि उसे लोग चोट्टी तक कहे जा रहे थे और वह सबके कटु-वाक्य चुपचाप सुन रही थी। उसकी आँखों से अश्रु धारा बह रही थी।

अगले दिन नानी को दल से एक प्रकार अलग सा कर दिय गया। जब दूसरे साथी पीछे रह गये, मैंने उससे पूछा कि उसने

ऐसा काम क्यों किया ? थोड़ी देर वाद उदास मनसे कहने लगी, "इन लोगों के पास तो जरूरत से ज्यादा कपड़े हैं पर जिनको दिया गया है वे सर्दी से ठिठुर रहे थे। वच्चों के साथ भला वे इस प्रकार की ठंढक कैसे सह पाते ? मैं देश जाकर मजदूरी करके इन सवकी कीमत चुका दूँगी।

सोचने लगा कि नानी ने न तो मार्क्स पढ़ा है और न एञ्जिल्स्। फिर पता नहीं किस प्रकार से इन अपरिग्रह व समता के सिद्धान्तों का उसे ज्ञान हो गया। शायद, मानवीय संवेदना सिद्धान्तों की मुखापेक्षी नहीं होती। सहज करुणा की अनुभूति किसी भी पुस्तकीय ज्ञान से वड़ी है।

लौटते समय भी वह रसोई वगैरह का काम तो उसी प्रकार से करती रही, परन्तु अव उसमें वह उत्साह नहीं रह गया था। सदैव उदास, डरी डरी और सहमी हुई-सी रहती। जव भी दो-चार व्यक्ति कोई वात करते तो वह समझती कि उसकी ही चर्चा हो रही है।

हरिद्वार आने पर कुछ लोग मथुरा-वृन्दावन चले गये, कुछ वापस राजस्थान। सवने आपस में एक दूसरे से क्षमा-याचना की, आलिंगन किया। परन्तु नानी सवसे अलग एक कोने में खड़ी थी, उससे वातचीत करने की शायद किसी ने जरूरत ही नहीं समझी। लोगों ने यह भी नहीं पूछा की उसके पास वापस देश जाने के लिये खर्चा है या नहीं !

हमें वहाँ से काशी जाना था। हमने नानी को साथ चलने के लिये कहा परन्तु उसने ना कह दिया, उसके मनमें एक प्रकार की झेंप-सी आ गयी थी। ऐसा लगा कि कुछ दिनों के लिये वह एकान्त चाहती है। विदा होते समय मैंने नानी को कुछ रुपये देने चाहे परन्तु उसने नम्रतापूर्वक मना कर दिया। वैसे उसकी अपनी जरूरतें थी कितनी।

ट्रेन में बैठा हुआ मैं समाचार पत्र पढ़ने का प्रयत्न कर रहा था परन्तु रह-रह कर नानी की बात याद आ जाती थी। सोचने लगता था कि क्या वास्तव में नानी चोर है? उसके पास तो दो धोती और दो चद्दर के सिवाय कुछ भी नहीं है।

❀

दुःख में सुख

पुराने जमाने में राजस्थान में ऐसी मान्यता थी कि अगर व्यक्ति की अर्थी में पुत्र का हाथ नहीं लगे या क्रिया-कर्म करने के लिये पुत्र न हो तो उसे मोक्ष नहीं मिलता। इसलिये वहाँ निपूते की बहुत खराब गाली मानी जाती थी। पुत्र प्राप्ति के लिये लोग व्रत-पूजन और कठिन तपस्या करते थे।

शेखावाटी अंचल के शहर में एक धनाढ्य सेठ थे। सब प्रकार की धन-सम्पत्ति से भरा पूरा घर होने पर भी सन्तान के बिना पति-पत्नी दुःखी रहते थे। अनेक प्रकार के व्रत-उपवास, दान-धर्म और तीर्थ यात्रा की परन्तु परमात्मा ने उनकी नहीं सुनी। प्रौढ़ावस्था होने लगी तब एक प्रकार से निराश हो गये। पड़ोस में उन्हीं की जाति का एक गरीब परिवार था जिनके यहाँ सात लड़के थे। एक दिन पति-पत्नी उनके घर गये देखा कि डेढ़-दो वर्ष से लेकर १४-१६ वर्ष तकके बच्चे आँगन में खेल रहे थे। उन्हें देख कर दोनों की आँखें भर आईं। सेठानी ने गृह स्वामिनी से कहा कि बहिन, लोग मुझे निपूती कहकर ताना देते हैं। सेठजी जब दूकान से सूने घर में आते हैं तो दुःखी से रहते है। मैं तुम्हारे से आँचल पसार एक बच्चे की भीख माँग रही हूँ। परमेश्वर ने तुम्हें सात दिये हैं, इनसे सात सौ हो

जायें। उन दिनों पुत्र को देना अपमानकी बात मानी जाती थी खास करके माता किसी प्रकार भी तैयार नही होती चाहे उसके यहाँ पूरा खाना कपड़ा भी न हो।

बहुत आरजू-मिन्नत के बाद भी उन लोगों को निराश वापस लौटना पड़ा।

फतेहपुर (शेखावाटी) के पास एक टीले पर नाथ सम्प्रदाय के एक महात्मा रहते थे। सब प्रकार से निराश होकर एक दिन वे उनकी शरण में गये और पैर पकड़कर रोने लगे।

कहते है कि नाथजी महाराज वचन-सिद्ध थे। उन्होंने कहा कि अकाल का वर्ष है। भूखे—नंगे बच्चों का पालन करो, भगवान तुम्हारी सुनेगा।

अपने गॉव आकर वे एक बड़े नोहरे में गरीबों के भूखे बच्चों को खिलाने-पिलाने लगे। दोनों पति-पत्नी सारे दिन उनकी देख-भाल करते रहते। होली दिवाली पर उनके लिए नये कपड़े और मिठाई बनाते।

भगवान की कृपा से एक वर्ष के भीतर ही उनके घर में पुत्र जन्म हुआ। उस अवसर पर सेठजी ने जी खोलकर दान–धर्म और पूजा-पाठ किया। सारे गॉव में मिश्री-बादाम भेजे।

बच्चे को लेकर वे नाथजी की सेवा में गये। महाराज ने कहा कि आप दोनों की अवस्था भगवान के भजन करने की है। संसार की मोह-माया में जितना कम पड़ोगे उतना ही अच्छा है।

सेठ-सेठानी उस समय इतने हर्ष विभोर थे कि नाथजी की इस गूढ़ बात पर उन्होंने ध्यान नही दिया ।

सुख के दिन बीतते देर नही लगती । देखते-देखते बिहारी सोलह वर्ष का हो गया ; बहुत ही सुन्दर, स्वस्थ, शिक्षित और विनयी ।

दीपावली के बाद वे प्रतिवर्ष महाराज के पास धोक खाने को बिहारी के साथ जाते थे । उस बार उन्होंने जब उसके विवाह करने की आज्ञा चाही तो नाथजी ने टाल-मटोल कर दी और कहा कि इतनी जल्दी क्या है ?

लाड़-प्यार का इकलौता बालक था । सेठ-सेठानी कभी उसे आँखों से ओझल नहीं होने देते । कभी-कदास उसका पेट या सिर दुखने लगता तो वैद्य-डाक्टरों से घर भर जाता । परन्तु कहते हैं कि मृत्यु सौ रास्ते बना लेती है ।

राजस्थान में जिस दिन अच्छी वर्षा हो जाती है, लोग हर्ष विभोर होकर जोहड़-तालाब में कितना पानी जमा हुआ है, यह देखने को जाते हैं । पानी को सिर से लगाकर आचमन करते हैं ।

ऐसे ही एक दिन बिहारी मित्रों के साथ गाँव के जोहड़े पर गया था । आचमन करते समय पैर फिसल गया और क्षण भर में ही जलमग्न हो गया । बहुत बड़ा तालाब भी नहीं था, परन्तु साथियों के बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ फल नहीं निकला ।

सेठ-सेठानी का बुरा हाल था। पागल से हो गये, तालाब में डूबने के लिये जिद करने लगे; लोगों ने मुश्किल से पकड़ रखा।

दूसरे दिन दोनों महाराजजी के टीले पर जाकर उनके पैर पकड़कर बैठ गये। धाड़ मार कर रोते हुए कहने लगे कि आपने हमें इस बुढ़ापे में उल्टा दुखी कर दिया, इससे तो अच्छा होता कि हमारे पुत्र पैदा ही न होता।

महाराज ने समझाने का प्रयत्न किया कि जो कुछ होता है सब ईश्वर की इच्छा से होता है, मनुष्य को उसे शिरोधार्य करना ही चाहिये। बिहारी से तुम्हारा इतने दिनों का ही सम्बन्ध था।

बहुत विनती-प्रार्थना पर महाराज ने कहा कि गरीब और अनाथ बच्चों के लिये एक स्कूल खोलकर उनकी पढ़ाई और रहने-खाने की व्यवस्था करो, शायद उन सब में तुम्हें बिहारी मिल जाय।

सेठ जी ने अपने एक मकान में इस प्रकार के छोटे बच्चों का एक स्कूल खोल दिया। दोनों पति-पत्नी दूसरे सारे कामों को छोड़कर सुबह से शाम तक उनकी शिक्षा, देख-भाल और खाने-पिलाने की व्यवस्था करने लगे।

बच्चे उनसे इतने हिल-मिल गये कि उन्हें 'माताजी', 'पिताजी' कहने लगे। वे कभी उनकी गोद में आकर बैठ जाते

लक्ष्मी बहन

बचपन में देखते थे कि माँ और चाची जब बड़ी-बूढ़ियों के पैर छूतीं तो उन्हें सात पूत की माँ होने की आशीष मिलती। हमारे मोहल्ले में एक माँजी थीं। उसके सात लड़के, उनकी बहुएँ और बहुत से पोते-पोतियाँ थी।

बार-त्यौहार पर सधवा स्त्रियाँ उनसे आशीर्वाद लेने के लिये जाती थीं, क्योंकि सात पुत्रों की माँ होना उस समय गौरव और शुभ—लक्षणों की बात मानी जाती थी।

ऐसा लगता है कि उन दिनों जमीन के अनुपात में जन—संख्या बहुत कम थी। यांत्रिक खेती थी नहीं, इसलिए हर प्रकार के उत्पादन के लिए ज्यादा आदमियों की आवश्यकता रहती थी। इसके सिवाय, छोटे-छोटे राज्य थे, जिनमें आपस में आये दिन लड़ाइयाँ होतीं और उनमें भी लड़ने के लिए सिपाहियों की जरूरत रहती।

विधवा और बाँझ महिला को अशुभ माना जाता था। परदेश विदा होते समय यदि संयोग से कभी इस प्रकार की स्त्री रास्ते में मिल जाती तो बुरा मुहूर्त समझ कर वह यात्रा स्थगित कर दी जाती। विदा के समय सगी चाची या ताई भी अगर

विधवा होती तो सामने आकर आशीष नहीं देती थी। इसी सन्दर्भ में उन दिनों की एक घटना मुझे याद है।

हमारे मोहल्ले में लक्ष्मी बहन सर्वमान्य और सर्वप्रिय थी। छोटे-बड़े सब उसका आदर करते थे। अपने माता-पिता की वह पहली सन्तान थी। उसके बाद लगातार पाँच पुत्र हुए और घर में धन-सम्पदा भी बढ़ती गयी।

उन दिनों, लड़कियों के विवाह बचपन में ही हो जाते थे। परन्तु लक्ष्मी अपने पिता की लाड़ली बेटी थी। इसलिए, वे १४ वर्ष तक उसे बालिका ही समझते रहे। आखिर, बहुत खोज-बीन के बाद एक सम्पन्न परिवार में शादी तय हुई। विवाह में माता-पिता ने दिल खोलकर खर्च किया। वर-पक्ष को बहुत बड़े दहेज के सिवाय, लड़की को कीमती गहने-कपड़ों से लादकर विदाई दी। उसकी सास का तो विवाह से पहले देहान्त हो गया था। ससुराल में जेठानियाँ थीं। उसके रूप और धन से उनको ईर्ष्या होने लगी। उसे हर समय उनके कटु वचन सुनने पड़ते। उन सबको खुश करने के लिए वह रात-दिन काम में जुटी रहती। पीहर से जो चीजें आतीं, वे सब उनके पास ही भेजती, परन्तु उनको इसमें भी लक्ष्मी के पिता के धन का दिखावा नजर आता।

तीन-चार वर्ष तक जब उसके सन्तान नहीं हुई तो उन्होंने देवर के कान भरने शुरू कर दिये कि वह बाँझ है। दूसरी

शादी करनी चाहिए। पति अपनी बीमारी के बारे में जानता था। परन्तु पुरुष भला अपना दोष कब स्वीकार करता है ?

लक्ष्मी जब पीहर आती तो बहुत ही उदास और मुरझायी हुई रहती। माता और भौजाई के बहुत पूछने पर भी बात टाल देती। थोड़े दिनों बाद क्षय-रोग से उसका पति मर गया। उस समय तक यह रोग असाध्य-सा माना जाता था। अठारह वर्ष की अवस्था में लक्ष्मी विधवा होकर रोती-बिलखती पिता के घर आ गयी। उसके बाद भी दो-एक बार ससुराल गयी थी। परन्तु उसके साथ वहाँ बहुत अशोभनीय व्यवहार किया गया, तरह-तरह की भद्दी गालियाँ दी गयी। शुरू से ही वह स्वाभिमानी स्वभाव की थी और मान-सम्मान के वातावरण में पली थी। इसलिए सारे गहने और कपड़े उन्हें सौंपकर केवल एक साड़ी पहने पिता के घर आ गयी। इसके बाद, ससुराल वालों ने कभी खोज-खबर नहीं ली।

कुछ वर्षों बाद माता-पिता का देहान्त हो गया। अब लक्ष्मी बहन ही उस सम्पन्न परिवार की वास्तविक मालकिन थी। भाई और भाभियाँ उसकी हर इच्छा को आज्ञा की तरह मानकर चलते।

सुबह से शाम तक साधु-सन्यासी, गरीब और जरूरतमन्द उसे घेरे रहते। सबको प्रेमपूर्वक उत्तर देती और सहायता करती। अपनी कोई सन्तान नहीं हुई, परन्तु गरीब ब्राह्मणों की कन्याओं के बहुत से विवाह सम्पन्न कराये, जिसमें कन्यादान

अपने हाथों कराया। विवाह के बाद भी वार-त्यौहार पर उनको बुलाती रहती।

राजस्थान के उस इलाके में कई बार अकाल पड़ जाते थे। उन दिनों लक्ष्मी बहन को उसके भाइयों के आसामी घेरे रहते। किसी को अपने कर्ज की अदायगी में मोहलत चाहिये तो किसी को नया कर्ज। उसके पास से निराश होकर शायद ही कोई लौटता था। कभी कभी भाई नाराज भी होते, परन्तु बहन की बात टालने की हिम्मत उन्हें नहीं होती। अपने माँ-बाप से बच्चे नहीं डरते थे, पर क्या मजाल कि बुआ के सामने कुछ भी गलत-सही बात करें या झगड़ा-झंझट करें। कभी-कदास आपस में लड़ लेते तो दोनों पक्ष उसके पास शिकायत लेकर पहुँचते।

समय पाकर भतीजे का विवाह मंडा। बारात पास के गाँव में जाने को थी। निकासी पर वर की घुड़चढ़ी के समय आरती करने का नेग बुआ का होता है। वर को उसने ही पाल-पोसकर बड़ा किया था। वह उसे अपने पेट के जन्मे पुत्र से भी ज्यादा प्रिय था। स्वयं विधवा और निस्सन्तान थी, इसलिए अमंगल के डर से आरती के लिए उसने किसी दूर के सम्बन्ध की बुआ को बुला लिया था। यहाँ तक तो सब ठीक चल रहा था, परन्तु एक बार वह अपने भतीजे को वर-राजा के वेश में सेहरा पहिने हुए देखना चाहती थी। मन में बहुत दिनों से इसकी साध थी।

सारे नेगचार होने के बाद जब बारात की विदा का समय

वापस आ नहीं सकती। बारात का मुहूर्त टला जा रहा था, परन्तु वर अन्य सब के साथ बुआ के पास बैठकर बच्चों की तरह रोने लग गया था। बहुत समझाने-बुझाने पर भी उठना नहीं चाहता था। थोड़ी देर बाद लक्ष्मी बहन को चेत होने पर वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। सुसंस्कृत और प्रतिष्ठित घराने की बेटी थी। अच्छे-बुरे की पहचान भी पूरे तौर पर थी। शीघ्र ही एक नतीजे पर पहुँच गयी। वर को उठाकर छाती से लगा-कर विदा होने का आदेश देकर जल्दी से कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर लिये।

❀

आया तो प्रथा के अनुसार घोड़ी पर चढ़ने के पहले वर बड़े-बूढ़ों के पैर छूने लगा। माता पिता के पैर छूकर वह जब बुआ की तरफ आने लगा तो उसके पिता ने रोक लिया। बहन को भी गुस्से में बुरा-भला कह दिया, "इस शुभ बेला में तुम्हें कुछ तो ख्याल रखना चाहिये था। असगुन करने को हर समय बीच में आ जाती हो।"

शायद, एकान्त में समझा कर कहने से वह स्वयं ही नहीं आती, परन्तु सैकड़ों सगे सम्बन्धियों के बीच इस प्रकार के अन-धारे अपमान से बुआ का हृदय तिलमिला गया। उसे लगा जैसे वह सिंहासन से उतार कर कीचड़ में गिरा दी गयी है। थोड़ी देर तक तो फटी-फटी आँखों देखती रही, फिर जोर-जोर से रोते हुए कहने लगी—"वर्षों से तुम्हारे घर में रात दिन मेह-नत करती रही हूँ। सर्दी गर्मी की परवाह किये बिना तुम्हारे बच्चों को पाल पोस कर बड़ा किया है। आज मैं कुलक्षणी और अमंगली हो गयी! इसलिए अपने गिरधारी की बारात भी नहीं देख सकती! जिसको मैंने बीस वर्ष तक पाला-पोसा है, भला उसका मैं अमंगल चाहूँगी? इसके पहले ही मेरी आँखें न फूट जायेंगी!" रोते हुए वह अचेत होकर कटे वृक्ष की तरह गिर गयी।

उसके प्रति लोगों के मन में अटूट श्रद्धा-भक्ति थी। इस अप्रत्याशित काण्ड से उन सबके मन में भय-सा समा गया। अब तो भाई भी बहुत ही पछता रहे थे, परन्तु कही हुई बात तो

वापस आ नहीं सकती। बारात का मुहूर्त टला जा रहा था, परन्तु वर अन्य सब के साथ बुआ के पास बैठकर बच्चों की तरह रोने लग गया था। बहुत समझाने-बुझाने पर भी उठना नहीं चाहता था। थोड़ी देर बाद लक्ष्मी बहन को चेत होने पर वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। सुसंस्कृत और प्रतिष्ठित घराने की बेटी थी। अच्छे-बुरे की पहचान भी पूरे तौर पर थी। शीघ्र ही एक नतीजे पर पहुंच गयी। वर को उठाकर छाती से लगाकर विदा होने का आदेश देकर जल्दी से कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर लिये।

ꕥ

हजारी दरोगा

राजस्थान के बीकानेर राज्य में उस समय एक प्रसिद्ध राजा का शासन था। खुशामदी लोग कहते थे कि चोर-डाकू राज्य की सीमा में घुसने की हिम्मत नहीं करते, अन्नदाता के पास घूसखोर अफसरों की शिकायत पहुँचते ही उन्हें बेइज्जत करके निकाल दिया जाता था, आदि। वैसे, इन सब बातों में कुछ तथ्य भी था। जो भी हो, उन दिनों जनता को अपने अधिकारो के बारे में जानकारी नहीं थी। यहाँ तक कि तहसीलदार को भी अन्नदाता और मालिक कहकर पुकारते थे। बड़े ओहदे आमतौर पर राजपूत छुटभैयों को दिये जाते, चाहे वे पढ़े-लिखे बिलकुल न हों।

ठाकुरों के गाँव में दूसरी जातिवाले घोड़े या ऊँट पर चढ़कर नहीं जा पाते थे। बेगार में मजदूरी ली जाती थी। किसी ठाकुर के मरने पर गाँव के बड़े-बूढ़ों को भी सिर मुँड़ाना पड़ता था।

दूसरे सब देशों में गुलामी प्रथा समाप्त हो गयी थी, परन्तु हमारे राजस्थान में दरोगा जाति के रूप में बहुत बाद तक यह प्रथा चालू रही। राजाओं और ठाकुरों के विवाह में दरोगा लड़कियों को दहेज में दिया जाता था। नाम मात्र के लिए

उनके विवाह तो कर दिये जाते, परन्तु वे आमतौर पर कुँवर साहब की उप-पत्नी के रूप में रहती थीं।

बीदासर के पास के गाँव का एक बड़े ठिकाने का जागीरदार राज्य में ऊँचे ओहदे पर था, महाराज का मुँह-लगा था; उसे हर प्रकार के अत्याचार करने की छूट थी। लोग तो यहाँ तक कहते थे कि उसके सात खून माफ हैं। उसी गाँव में हजारी नाम का दरोगों का लड़का था। बचपन से ही कुश्ती-दंगल लड़ता था। घर में गाय-भैंस थीं, खाने-पीने की कमी नहीं थी। १८ वर्ष की उम्र में ही पास-पड़ोस में उसके बल-पौरुष की ख्याति फैल गयी।

एक दिन पास के कस्बे में एक राजपूत पहलवान आया। पैर में साँकल डाले सात दिन तक घूमता रहा, किसी की हिम्मत साँकल रोकने की नहीं हुई। लोग हजारी के बाप के पास जाकर कहने लगे कि गाँव की इज्जत का प्रश्न है। हमेशा के लिए यह बात चालू रह जायगी कि अमुक गाँव में कोई भी मर्द नहीं था। बहुत डरते हुए उसने बेटे को उनके साथ भेज दिया। कस्बे में जाकर हजारी ने पहलवान के पैर की साँकल रोक ली—जिसका अर्थ था, उससे दंगल करना।

कुश्ती के दिन आस-पास के गाँव के भी हजारों व्यक्ति जमा हो गये। वे सब सहमे-से-थे, कहाँ तो दैत्य-सा पहलवान और कहाँ बेचारा हजारी! जिसकी अभी मसें ही नहीं भीगी थी।

जोड़ शुरू होते ही लोगों ने देखा कि हजारी ने पहलवान को सिर पर उठा लिया और थोड़ी देर तक इधर-उधर घुमाकर बड़े जोर से एक तरफ फेंक दिया। फिर तो भिड़ने की हिम्मत ही उसकी नहीं हुई। शर्मिन्दा-सा एक तरफ के रास्ते से बाहर चला गया। वहाँ जो राजपूत सरदार मौजूद थे, उन्होंने इसमें अपनी जाति का अपमान महसूस किया। एक दरोगा के छोकरे ने नामी राजपूत घराने के सरदार की हजारों व्यक्तियों के सामने बेईज्जती कर दी! वे लोग ठाकुर साहब के पास शिकायत लेकर गढ़ में पहुँचे। परन्तु उस समय लोगों का रुख देखकर बात आयी-गयी कर दी गयी। फिर भी, वे सब मौका देखकर बदला लेने की ताक में रहने लगे।

थोड़े दिनों बाद हजारी का विवाह हुआ। प्रथा के अनुसार बहू रावले में ठकुरानी जी के पैर छूने गयी। नयी बहू बहुत ही सुन्दरी थी। संयोग से ठाकुर साहब ने उसे देख लिया और खवास को उसे रात में हाजिर करने को कहा। जाति-बिरादरी के लोगों के बहुत समझाने पर भी हजारी बहू को रावले में भेजने को तैयार नहीं हुआ। खवास को एक प्रकार से धमकाकर अपने घर से निकाल दिया। दूसरे दिन गढ़ में उसकी बुलाहट हुई। उसने खवास को गाली—गलौज दी, इसकी कैफियत माँगी गयी। उसका कहना था कि महाराज आप तो मेरे पिताजी की आयु के हैं और गाँव के मालिक होने के कारण हमारे पिता-तुल्य हैं, इसलिए मेरी पत्नी आपकी पुत्री के समान

है। परन्तु इस खवास ने बहुत ही गन्दी बातें कही, इसलिए मैंने भी इसे गस्से में कुछ कह दिया था।

एक दरोगा के लड़के की ठाकुर साहब के सामने ऊँची नजर करके यह सब कहने की हिम्मत उस जमाने में अभूतपूर्व घटना थी। कुछ पुरानी अदावत थी ही, मुसाहिबों ने कहा कि महाराज यह तो आँखे दिखाता है और अपनी पत्नी को आपकी पुत्री बनाकर स्वयं जँवाई बनता है। इसलिए इसकी आँखें निकाल देनी चाहिए।

ठाकुर साहब गहरे नशे में थे, हुक्म हुआ, "इसकी आँखों में लोहे की गरम सलाखें डाल दी जाये!"

उसी समय उसे पकड़ कर बाँध दिया गया। लोहे की बड़ी-बड़ी सलाखें गरम की गयीं और गाँव के सैकड़ों लोगों के सामने उसकी आँखों में भोंक दी गयीं। बाप-माँ और पत्नी एक कोने में खड़े उसकी करुणा-भरी चीख-पुकार सुनकर सुबुक रहे थे।

महाराजा को सूचना दी गयी, परन्तु वहाँ से भी न्याय नहीं मिला, क्योंकि ठाकुर उनका ए० डी० सी० था।

हजारी के घरवालों ने सोचा कि अब बहू की इज्जत भी शायद ही बच पाये, इसलिए सब दूसरे गाँव में जाकर रहने लगे।

बीदासर के एक सेठ उस ठाकुर के मित्र थे। एक दिन वे उनकी न्याय-प्रियता की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि हजारी

को दण्ड तो कुछ कड़ा जरूर दिया गया, परन्तु इन छोटी जातिवालों को सिर पर चढ़ाना भी अच्छा नही रहता। पद और उम्र में वे मेरे से बड़े थे, परन्तु मुझे उस दिन कुछ ज्यादा ही गुस्सा आ गया था इसलिए कह बैठा, "आप शायद ठाकुर साहब की हुक्म-उदूली नहीं करते और रावले में अपनी बहू को भेज देते।" मैंने देखा कि वे मेरी बात सुनकर बहुत ही क्रोधित हो गये है।

मैंने हजारी को सन् १९५७ के शुरू में देखा था। राजाओं के राज्य समाप्त हो चुके थे। वे भी साधारण लोगों की तरह वोट माँगते फिर रहे थे। उस समय वह ५०-५५ वर्ष का हो गया था। झुर्रियों से भरे चेहरे पर एक असीम शोक की छाया नजर आती थी। दुःख और सन्ताप ने उसे असमय में ही वृद्ध बना दिया था। पत्नी दूसरे के घर झाड़ू बर्तन का काम करके कुछ कमा लेती थी, जिससे दोनों किसी तरह उदर-पूर्ति करते थे।

विवाह होते ही जो घटना हो गई थी, उससे कुछ ऐसी ग्लानि उन दोनों के मन में हुई कि उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि ठाकुरों के लिये गुलाम बच्चे पैदा नहीं करेंगे और वे वानप्रस्थियों की तरह रहने लगे।

मेरे साथ उसी कस्बे के कुछ कार्यकर्त्ता थे, उनका हजारी से अच्छा सम्पर्क था। उनके साथ हजारी के घर गया। जीवनचर्या

के बारे में पूछताछ की। शुरू में तो उस की पत्नी को थोड़ी-सी झिझक हुई, परन्तु कुछ देर के बाद ऐसा लगा कि बहुत दिन पहले की ढॅकी हुई परत उधेड़ने में दिल का बोझ हलका हो रहा है। कहने लगी, उस दिन इसकी करुणा-भरी चीख सुनकर मैं तो बेहोश हो गयी थी। होश आया तो देखा कि बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों की जगह खून से सने दो गड्ढे हो गये है। शायद लोहे की सलाखों मे कुछ जहर जैसी चीज थी। पास में साधन भी नहीं था कि कुछ दवा-पानी करते। किसी तरह नीम के पानी और पत्तों की सेंक से ३-४ महीनों में घाव भरे। इसी दुःख से मेरे सास-ससुर की मृत्यु हो गयी। भला हो, इन गॉव-वालों का, जिन्होंने हमे सहारा देकर बचा लिया। मेरे पति को उस घटना से कुछ इस तरह का सदमा पहुँचा कि बराबर रोगी रहने लगा। इस समय भी कभी-कभी बरसात की रातों में आँखों में टीस चलती है तो दर्द से चिल्ला उठता है। ठाकुर के तीन-तीन जवान बेटे है, गॉव की बहू-बेटी की जब चाहे इज्जत ले लेते है। जमींदारी चली गयी, परन्तु जमीनें तो है ही। इसके सिवाय पहले का भी बहुत है। लोग कहते हैं कि परमात्मा के घर में न्याय है, परन्तु मुझे तो इसका विश्वास नहीं होता।

मैंने देखा कि बात करते हुए, उसकी आँखो से अश्रुधारा बह चली थी।

राजा भी चुनाव लड़ रहा था, उसी गॉव में उसकी मीटिंग थी। लोगों ने स्वागत में तोरण दरवाजे बनाये थे। 'अन्नदाता

क़ी ज़य', 'घणी खम्मा' आदि कह रहे थे। कांग्रेसी शासन से राजाओं का राज्य अच्छा बता रहे थे। मेरे मन में हुआ कि हजारी को और उसकी बहू को ले जाकर उन सबके सामने मंच पर उपस्थित करूँ।

परन्तु पैंतीस वर्ष पहले की घटना पर अब हजारी को रोष नहीं रह गया था। उसका कहना था कि पूर्व-जन्म के पाप थे, जिससे दरोगा की जाति में हमने जन्म लिया, इसमें दूसरे किसी को क्यों दोष दिया जाय?

अनायास ही उस रागद्वेष रहित समदर्शी के प्रति मेरा सिर झुक गया।

❀

हरखू की माँ

बात शायद ५०-५५ वर्ष पहले की है। उस समय राजस्थान के प्रायः प्रत्येक गाँव में किसी वट या पीपल के वृक्ष पर या किसी सूने कुएँ की सारन (सहन) में भूत-प्रेत या जिन्न का निवास माना जाता था। गाँव में बहुत से ऐसे व्यक्ति मिल जाते जो कसम खाकर कहते कि उन्होंने अपनी आँखों से एक रात अमुक स्थान पर सफेद कपड़े पहने बड़े-बड़े पैरों वाले, वृक्ष की सी ऊँचाई के एक भूत को देखा था।

भूत-भूतनी के सिवाय प्रत्येक कस्बे या गाँव मे एक-दो डाकी या डाकिन भी होते थे। मुझे अपने गाँव की एक घटना अब भी अच्छी तरह याद है। हरखू की माँ वहाँ डाकिन के रूप रूप मे प्रसिद्ध थी। उस समय वह प्रौढ़ावस्था में थी। स्वास्थ्य भी साधारणतया ठीक था। परन्तु लोग डरते थे, इसलिए किसी घर में उसे काम-काज मिलता नहीं था। कमाने वाला कोई था नहीं, भीख माँगकर किसी तरह अपना निर्वाह करती थी। जब मोहल्ले में आती तो सारे घरों में पहले से ही आने की खबर फैल जाती। स्त्रियाँ बच्चों को छिपा लेतीं और घर के दरवाजे पर से ही जल्दी से अनाज या रोटी देकर वापस कर देतीं। हम बच्चे सहमे हुए से उसे जाते हुए पीछे से देखने का प्रयत्न करते।

उन दिनों गाँवों में डाक्टर-वैद्य तो थे नहीं। बच्चों को 'डब्बा' या अन्य किसी प्रकार की बीमारी होने पर हरखू की माँ पर सन्देह जाता। दो-तीन सयाने व्यक्ति जाकर उसका थूक लाकर बच्चों पर छिड़कते थे। उनमें से बहुत से तो अपने-आप ठीक हो जाते, मगर कुछ रोगों के कारण मर जाते। मरने वालों की जिम्मेदार हरखू की माँ समझी जाती। हरखू की माँ ने भी इस अपमानित जीवन से एक प्रकार का समझौता-सा कर लिया था क्योंकि जीवन-यापन के लिए किसी-न किसी प्रकार से अन्न-वस्त्र की व्यवस्था करना तो जरूरी था ही!

कई वर्षों बाद अपने गाँव गया था। दूसरी बातों के साथ-साथ हरखू की माँ की भी चर्चा आयी तो पता लगा कि वह बहुत दिनों से बीमार है इसलिए भिक्षा के लिए नहीं आ पाती। उसे नजदीक से जानने की जिज्ञासा तो बहुत वर्षों से थी ही और मेरे लिए अब उसका कोई भय भी नहीं रह गया था इसलिए, लोगों के मना करने पर भी एक मित्र के साथ उसके घर मिलने के लिए गया।

वह गाँव से बाहर एक झोपड़ी में रहती थी। वहाँ जाकर देखा कि एक टूटी-सी खाट पर लेटी हुई थी। दो-चार मिट्टी के और अलुमिनियम के बर्त्तन इधर-उधर बिखरे हुए पड़े थे। कई दिनों से शायद सफाई नहीं की गयी थी इसलिए कूड़ा-करकट भी फैला पड़ा था।

दो-तीन बार आवाज देने पर उठी और फटी-फटी आँखों

से हमें देखने लगी। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई उसे भी पूछने के लिए आ सकता है! दुखी मनुष्य को जब सान्त्वना मिलती है तो वह द्रवित हो जाता है। हमें देखकर वह रोने लगी। कुछ कहना चाहती थी, परन्तु हिचकियाँ बँध गयी अतः कह न सकी। फ्लास्क में चाय ले गये थे, एक बड़े कटोरे में पीने को दी, सब पी गयी। शायद बहुत भूखी-प्यासी थी।

मैंने अपने मित्र को मोहल्ले में से किसी एक मजदूर को लाने के लिए भेजा परन्तु कोई भी उसके पास आने को तैयार नहीं हुआ। मेरे साथ कलकत्ते से एक नौकर आया हुआ था। उसे साथ लेकर शाम को पुनः उसके यहाँ गया। साथ में गरम दूध, दलिया तथा साधारण ताकत की औषधि ले गया। जितनी राहत उसे पथ्य और दवा से नहीं मिली, शायद उससे ज्यादा इस बात से मिली कि उस उपेक्षिता के प्रति भी किसी की सहानुभूति है।

दूसरे दिन समझा-बूझाकर एक वैद्यजी को ले गया और चिकित्सा शुरू की। उचित पथ्य और दवा की समुचित व्यवस्था से थोड़े दिनों में ही वह स्वस्थ हो गयी। फिर तो कई बार वहाँ गया, उसके प्रति एक आत्मीयता-सी हो गयी थी। मन में एक कचोट-सी भी थी कि इस असहाय के साथ अन्ध-विश्वास के वशीभूत होकर, समाज और गाँव के लोगों ने एक बहुत बड़ा अन्याय किया है।

एक दिन मैंने कहा, हरखू की माँ! मैं तुम्हारे बारे में कुछ

जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ, अगर बुरा न मानो तो मुझे अपने जीवन की सारी बातें बताओ। थोड़ी-सी हिचकिचाहट के बाद जो इतिहास उसने बताया, वह इस प्रकार है—

"जब मैं १३ वर्ष की थी तब अमुक गाँव के ठाकुर साहब की बाइ-सा के विवाह में दायजे में दे दी गयी। उनकी ससुराल में आकर मेरा विवाह वहाँ के एक दरोगा के लड़के के साथ कर दिया गया। हम दोनों पति-पत्नी रावले की चाकरी से रहते थे। साधारण खाने-पहिनने को मिल जाता था। पति कँवर साहब का काम करता और मैं कँवरानी जी का।"

"कुछ वर्षों बाद हमें एक बच्चा हुआ, प्यार का नाम रखा गया हरखू! एक बार गाँव में हैजा फैला। मेरा पति भी इस से अछूता न बचा। गाँव का एकमात्र वैद्य दूसरे बड़े लोगों की चिकित्सा में लगा हुआ था। बहुत आरजू-मिन्नत करने पर भी वह मेरे पति को देखने नही आया और दवा-दारू के अभाव में वह मर गया। रावले में खबर भेजी गयी, परन्तु वहाँ से कोई भी श्मशान तक साथ जाने के लिए नहीं आया, क्योंकि हैजे के रोग से मृत व्यक्ति की छूत लग जाने का डर जो था! मैंने दो-चार पड़ोसियो की सहायता से किसी प्रकार उसकी दाह क्रिया की। घर आने पर बच्चे को भी दस्त और उल्टी होते हुए पाया। दवा के नाम पर भगवान का नाम लेकर प्याज का रस देने की तैयारी कर ही रही थी कि ठाकुर साहब के यहाँ से बुलावा आ गया। बहुत रोने-गिड़गिडाने पर भी छुटकारा नहीं

मिला। कंवरानी जी की चोटी-कंघी करके जब मैं भागती हुई घर लौटी, तो मेरा हरखू सारे दुःखों को भूलकर सदा के लिए सोया हुआ मिला। इसके बाद मैं पागल-सी रहने लगी, रात-दिन हरखू को पुकारती रहती। थोड़े दिनों के बाद ही फिर से मुझे रावले के काम पर जाना पड़ा। हम दरोगे एक प्रकार से ठाकुरों के जर--खरीद गुलाम की तरह थे।"

"संयोग से उन्हीं दिनों कॅवरानी जी के दोनों पुत्र मर गये। मुझे कुलक्षणी समझ कर वहाँ से निकाल दिया गया और फिर मैं इस कस्बे में आकर मेहनत-मजदूरी करके निर्वाह करने लगी। मुझे बच्चों से कुछ इस प्रकार का मोह हो गया था कि बिना मेहनताने के ही मोहल्ले के बच्चों का काम करती रहती, उन सबमें मुझे अपने हरख् की झलक मिल जाती थी।"

"शायद पूर्व-जन्म मे मैंने बड़े पाप किये थे। एक दिन एक बच्चे को मैं उसकी माँ से लाकर खेला रही थी कि थोड़ी देर में ही कमेड़ा आकर उसका देहान्त हो गया। उसके बाद तो मैं गॉव में डाकिन के नाम से बदनाम हो गयी। औरतें मुझे देखते ही बच्चों को छिपा लेती। गॉव के बड़े बच्चे पीछे से पत्थर मार कर चिल्लाते। 'हरखू की माँ डाकिन है' पहले तो लोगों के घर में कुछ काम मिल जाता था, अब वह भी बन्द हो गया। पचास वर्ष हो गये तबसे भीख माँगकर ही किसी प्रकार अपना यह पापी-पेट पालती हूँ। परन्तु आज भी जब मैं किसी छोटे बच्चे को देखती हूँ तो मुझे अपना हरखू याद आ जाता है।"

उसने खाट के नीचे से एक टीन का गोल डिब्बा निकाला और उसमें से गोट लगे हुए टोपी-कुरते निकाल कर दिखाने लगी। वे सब उसके हरखू के थे। दो छोटे-छोटे चाँदी के कड़े और एक हनुमान जी की मूर्ति भी थी। यह सब दिखाते-दिखाते अपने-आपको और ज्यादा न रोक सकी। उसके धीरज का बाँध टूट गया और आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। बड़े जोर से रोते हुए कहने लगी, "परमात्मा जानता है, मैंने गाँव में किसी का कोई नुकसान नहीं किया। फिर भी पिछले ५० वर्षों से इन लोगों ने मुझे बदनाम कर रखा है और मेरा इतना बड़ा अपमान करते आ रहे हैं, अब और सहा नहीं जाता। दुनिया में इतने लोग मरते है पर मुझ अभागिन को मौत भी नहीं आती !"

बहुत भारी मन से मैं उस दिन उसे सान्त्वना देकर घर लौटा था। दो तीन दिन बाद ही आवश्यक कार्य से मुझे अपने गाँव से रवाना होना पड़ा। कलकत्ता आकर अनेक प्रकार के झंझटों में फसकर हरखू की माँ की बात भूल गया। तीन-चार वर्ष बाद जब मैं पुनः गाँव गया तब पता चला कि हरखू की माँ की गाँव के लोगों ने दिन-दहाड़े हत्या कर दी।

घटना इस प्रकार बतायी गयी कि एक दिन गाँव के एक प्रतिष्ठित सेठ का बच्चा बीमार हो गया। संयोग से उसके पहले दिन हरखू की माँ उनके यहाँ रोटी लेने गयी थी। अतः उस पर उनका शक जाना स्वाभाविक था। चार-पाँच व्यक्ति उसके यहाँ गये और एक कटोरी में थूकने के लिए कहा। उस दिन उसे भी

कुछ इस प्रकार की जिद हो गयी कि वह थूकने को तैयार ही नहीं हुई।

निरीह बुढ़िया का थूक निकलाने के लिए उनमें से दो-तीन व्यक्तियों ने जोर से उसका गला दबाया और कमजोर वृद्धा भला कहाँ इतना जोर-जुल्म सह पाती? झाग और थूक के साथ-साथ उसके प्राण भी निकल गये।

घर आकर देखा गया कि बच्चा भला-चगा खेल रहा है। परन्तु गाँव के समझदार लोगों की धारणा थी कि अगर उससे जबरन थूक नहीं लिया जाता तो शायद बच्चे की जान नहीं बचती। डाक्टर और पुलिस को किसी प्रकार राजी करके मामला दबा दिया गया। उस गरीब औरत के लिए किसे को पड़ी थी कि सेठ जी से वैर मोल लेते?

थोड़े दिनों बाद सेठ जी के यहाँ बच्चे के स्वास्थ्य-लाभ की खुशी में हनुमान जी का प्रसाद भोज हुआ। गाँव के पचासों व्यक्ति दाल-चूरमा खाते हुए हरखू की माँ की मौत के बारे में इस प्रकार से बातें कर रहे थे, जैसे वह एक साधारण-सी घटना थी। मैं भी निमंत्रण में तो गया था, परन्तु किसी प्रकार भी भोज में सम्मिलित न हो सका। मुझे वहाँ की हवा में उस वृद्धा के अन्त समय की चीख-पुकार सुनायी पड रही थी।

❀

"जाको राखे साइयां"

दिल्ली में मई जून में, भयंकर गरमी पड़ती है। राजस्थान की तरफ से आती हुई गरम रेत की आंधियाँ शुरू हो जाती हैं। कभी-कभी तो पारा ११६ डिग्री तक पहुंच जाता है। सन् १९६२ की बात वर्ष की गर्मी शायद पिछले पचास-साठ वर्षों में अधिकतर थी। गरम है, उस लू से आस-पास के गाँवों से प्रायः नित्य ही एक दो व्यक्तियों के मरने के समाचार आते रहते।

वैसे, इन दिनों में लोकसभा का सत्र नहीं रहता, परन्तु उस वर्ष मार्च में चुनाव सम्पन्न हुए थे इसलिए अधिवेशन मई से अगस्त तक था।

मेरी पत्नी और १२ वर्ष का छोटा पुत्र राजू, दिल्ली में थे। वे प्रायः ही कलकत्ता में रहते थे, इसलिए उनके लिए यह गर्मी एक नयी बात थी। हम लोग रात में बहुत-सा पानी छिड़क कर बंगले के बाहर के बगीचे में सोते, परन्तु जमीन से आग सी निकलती और १२ बजे तक नींद नहीं आती। पड़ोस के लोग शिमला, मसूरी या कश्मीर जाने लगे।

पत्नी और राजू का आग्रह रहा कि हमें भी कश्मीर चलना

चाहिए। एक तो कश्मीर मे मेरा छोटा भाई सपरिवार पहले से गया हुआ था, दूसरे उन्होंने कभी कश्मीर देखा नहीं था।

मई की २३ तारीख को हम पठानकोट एक्सप्रेस से रवाना हुए। मेरे पास एक नयी एम्बेसेडर कार के सिवाय ४५ माडल की एक स्टूडीबेकर स्टेशन वैगन थी।

पत्नी ने उस पुरानी गाड़ी के बदले में नयी एम्बेसेडर ले जाने को कहा, परन्तु मैंने देखा कि उस बड़ी गाड़ी में सारा सामान और सब लोग आराम से चले जायेंगे। गाड़ी भी बेचनी है, क्यों नहीं उसी से यह काम ले लिया जाय। इसलिए, इसे रवाना होने से दो दिन पहले नौकरों के साथ पठानकोट भेज दिया।

पठानकोट स्टेशन पर मोटर तैयार मिली। सयोग से वहीं पर हमारे वयोवृद्ध मित्र श्री मुनीश्वरदत्त उपाध्याय, एम. पी. मिल गये। मोटर मे जगह थी, इसलिए उन्हें भी साथ बैठा लिया।

जम्मू से आगे जब चढ़ाई शुरू हुई तो मोटर हर पाँच मील पर गरम होने लगी, हम पानी डालते रहे। कभी-कभी सब मिल कर ठेलते भी रहे, यद्यपि उपाध्याय जी काफी वृद्ध थे, परन्तु संकोचवश वे भी इसमें सहायता देते। ३०-३५ मील जाने के बाद एक कड़ी चढ़ाई पर वह अड़कर रुक गयी। बहुत प्रयत्न करने पर भी आगे नहीं बढ़ रही थी। पास के गाँव में एक छोटा-सा मोटर मरम्मत का कारखाना था। थोड़ी देर मे ही बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। उनमें से दो-एक मिस्त्री भी थे। वे हँसकर कहने

लगे कि सेठ जी इस मोटर को तो आपको विन्टेज कार रैली (बहुत पुरानी मोटरों की दौड़ प्रतियोगिता) में भेजनी चाहिए थी। कहाँ यह पहाड़ों की कड़ी चढ़ाई और यह बेचारी बूढ़ी गाड़ी! मुझे उनकी बातें सुनकर गुस्सा और झेंप हो रही थी, परन्तु चुपचाप सुनने के सिवाय चारा भी क्या था।

पत्नी भी उलाहना देने लगी कि आपने सोचा, नयी मोटर खराब हो जायगी, इसलिए इस खटारे को मेरे मना करने पर भी ले आये। उस दिन दिशाशूल था, इसका विचार भी नहीं किया।

आखिर एक घण्टे की कड़ी मेहनत के बाद मोटर रवाना हुई। पहले और दूसरे गेयर में चलाते हुए, दूसरे दिन शाम तक किसी प्रकार श्रीनगर पहुँच गये। १०-१५ दिन वहाँ रहने के बाद समाचार मिले कि दिल्ली में वर्षा हो गयी है। हमने वापिस आने का प्रोग्राम बनाया।

पत्नी और राजू की इच्छा थी कि हवाई जहाज से चलें, परन्तु मैं फिजूल में ५००) रु० खर्च करना नहीं चाहता था। उन्हें समझाया कि आते समय तो मोटर की खराबी के कारण रास्ते के दृश्य नही देख पाये थे। परन्तु अब ठहरते हुए चलेंगे। स्टूडीबेकर को वहाँ छोड़कर हम लोग वहाँ से एक नयी एम्बेसेडर से रवाना हुए।

बठोर के पास पहुँचे, तब शाम हो गयी थी। रास्ते के किनारे

कोट-पैंट पहने एक युवक खड़ा था। उसने हाथ से गाड़ी रोकने का संकेत किया। हमने गाड़ी रोक ली। कहने लगा कि बड़ी कृपा होगी, अगर आप मुझे अगले गाँव तक पहुँचा देंगे। मैं अपना ठेकेदारी का काम सम्हालने आया था। यहाँ देरी हो गयी। ट्रकें सब पहले ही जा चुकी हैं। हमारे पास जगह थी। युवक के वेष-भूषा और बात-चीत का भी प्रभाव पड़ा, उसे मोटर में बैठा लिया।

हमारा ड्राइवर पहाड़ो के लिए नया था, गाड़ी धीरे-धीरे चला रहा था। थोड़ी देर बाद युवक ने कहा कि मेरा इस तरफ मोटर चलाने का नित्य का अभ्यास है, अगर आप कहें तो मैं चलाऊँ। ड्राइवर को भी आराम मिल जायगा और बठोर कुछ जल्दी पहुँच जायंगे।

हमें ऐसा लगा कि युवक का वह रास्ता पूरी तौर पर जाना हुआ था। ३५-४० मील की स्पीड से वह मोटर चला रहा था। मोड़ने की भी उसे अच्छी तरह जानकारी थी।

थोड़ी देर बाद गहरा उतार आया, गाड़ी की स्पीड बढ़ी। एक घुमावदार मोड़ आयी और युवक से गाड़ी बेकाबू होकर सामने के खड्ड की तरफ तेजी से बढ़ी।

आसन्न मृत्यु को सामने पाकर मनुष्य का मन किस प्रकार का हो जाता है, इसका उस दिन मुझे पता चला। सामने तीन-चार हजार फीट गहरा खड्ड अजगर की तरह मुँह बाये था और गाड़ी उसी

तरफ बढ़ी जा रही थी। उस कड़ी सर्दी में भी हम सब पसीने से तर थे। आँखों के आगे अंधेरा छा गया और होश-हवास गुम हो गये।

हमारे दादाजो कहा करते थे कि संकट के समय राम का नाम लेने से कष्ट कट जाते है। मुझे उनकी बात याद आयी और मैंने जोर-जोर से राम का नाम लेना शुरू किया। जीवन में शायद ही कभी इतने सच्चे मन से प्रभु का नाम लिया होगा।

हम सब आँखें मीचे मृत्यु की राह देख रहे थे। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि गाड़ी को एक जोर का धक्का लगा। आँखे खोली तो देखा कि सड़क के किनारे मरम्मत करने के लिए पत्थरों के छोटे टुकड़ों का ढेर है और गाड़ी उनमें फँस गयी है। किसी प्रकार साहस कर नीचे उतरे, तब भी शरीर काँप रहा था, सिर चकरा रहा था। देखा गाड़ी के आगे का हिस्सा थोड़ा सा टूट गया है रेडियेटर में से सारा पानी निकल गया है।

एक मील पर ही बठोट था, किसी प्रकार पैदल वहाँ पहुँचे। रात में एक होटल में ठहरे। युवक बहुत ही सहमा हुआ और शर्मिंदा था, परन्तु उसे बुरा भला कहने से क्या फायदा था—आखिर वह भी तो साथ में ही मरता? दूसरे दिन कुलियों को भेजकर गाड़ी ठेलकर बठोट लाये। वहाँ एक कारखाने में टंकी मरम्मत करायी। एक दिन इसके लिए रुकना पड़ा।

रास्ते में हम लोग आपस में बातें करते रहे कि मारने वाले से बचाने वाला बड़ा है "जाको राखे साँइयाँ मार सकै नहिं कोई।"

अछूत

सेठ रामजीलाल अपने कस्बे में ही नहीं, बल्कि प्रान्त भर में प्रसिद्ध थे। उनके विभिन्न प्रकार के पाँच-छः कारखाने थे, जिनमें हजारों मजदूर काम करते थे। विदेशों के साथ आयात-निर्यात का करोड़ों रुपयों का कारोबार था व्यापार के सिवाय सार्वजनिक-क्षेत्र में भी अच्छा नाम था। उनके द्वारा संचालित कई स्कूल, कालेज, छात्रावास और अस्पताल थे। निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे, इसलिए, उन्होंने अपनी हवेली के पास ही श्रीनाथजी का एक विशाल मन्दिर बनवाया था, जिसमें घर के हर व्यक्ति के लिए नित्य दोनों समय जाकर प्रसाद लेना जरूरी था।

सब तरह से सम्पन्न और सुखी परिवार था, परन्तु सन्तान नहीं होने से पति-पत्नी दुखी रहते थे एक बार वे कुम्भ के पर्व पर यात्रा के लिए हरिद्वार गये। वहीं उन्हें दो वर्ष का एक बच्चा सेवा-समिति के स्वयंसेवकों द्वारा मिला। सेठानी तो लड़के को गोद में लेते ही निहाल हो गयीं। उसका गौर-वर्ण और सुन्दर रूप रंग देखकर ही अनुमान लगा लिया कि जरूर किसी कुलीन घराने का है।

रखी थी। एक-दो दिन वहाँ रहकर सुस्ता लेते थे। दूसरे स्वयं-सेवकों के साथ-साथ गोपाल और सुमन भी इस काम में दिलचस्पी लेते थे। एक दिन वे इसी प्रकार के एक यात्री-दल की व्यवस्था कर रहे थे कि उनमें से एक अधेड़-सा व्यक्ति गोपाल को घूर-घूर कर देखने लगा, थोड़ी देर में अपनी पत्नी को भी बुला लाया।

सुमन ने हँसकर कहा कि बाबा इस प्रकार आप क्या देख रहे हो और आपकी आँखों में आँसू क्यों है ? थोड़ी देर तो वृद्ध चुप रहा, फिर सहमते हुए कहा--"बाइ-सा मेरा लड़का रामू आज से १८ वर्ष पहले हरिद्वार के कुम्भ मेले में गुम हो गया था। उसका रंग भी इसी तरह साफ था। उसके बाएं गाल पर भी इसी प्रकार का निशान था। कुँवर साहब को देखकर हमें अपने खोये हुए पुत्र की याद आ गयी है।"

घर जाकर सुमन ने पिता जी को जब यह बात कही तो देखा गया कि उनके चेहरे पर उदासी छा गयी थी।

रात में उस वृद्ध को बुलाकर पूछताछ की गयी तो पता चला कि वे लोग जाति के चमार है। उस वर्ष कुम्भ स्नान करने के लिए गये थे। वहीं उनका एकमात्र पुत्र भीड़ में खो गया, जिसका आजतक पता नहीं चला। लड़के के कुछ और भी चिह्न था क्या ? यह पूछने पर उसने कहा कि उसके दाये हाथ में चोट का एक निशान था।

यह सब बातें गोपाल और उसकी माँ भी सुन रही थी। उस

अपने गाँव आकर बहुत धूम-धाम से गोद के नेगचार किये गये। हजारों व्यक्तियों को भोज दिया गया। इस अवसर पर एक अस्पताल और एक कालेज की नीव डाली गयी। बच्चे का सुन्दर-सा नाम रखा गया, गोपाल कृष्ण। उस समय लोगों ने भी ज्यादा पूछ-ताछ की जरूरत नहीं समझी।

बच्चे का आना कुछ ऐसा शुभ हुआ कि एक वर्ष के भीतर ही उनके एक पुत्री हुई। धन-दौलत भी रात-दिन बढ़ती गयी।

इसी प्रकार १७-१८ वर्ष आनन्द से व्यतीत हो गये। गोपाल और छोटी बहन सुमन दोनों कालेज में पढ़ते थे। आपस में सगे भाई-बहिन से भी ज्यादा प्यार था। गोपाल पढ़ने के सिवाय खेल कूद में भी हमेशा प्रथम या द्वितीय रहता। एम० ए० में उसे कालेज मे प्रथम स्थान मिला।

एम० ए० करने के बाद पढ़ने के लिए वह विदेश जाना चाहता था, परन्तु सेठ जी शादी करके उसे व्यापार में लगा देना चाहते थे। सुमन ने अपनी एक सुन्दर और सम्पन्न सहेली का चयन भी कर लिया था— यहाँ तक कि उसको कई बार अपने घर बुलाकर गोपाल और माता-पिता को दिखा भी दिया था। एक तरह से बात पक्की हो गयी थी केवल नेगचार होने बाकी थे।

उसी वर्ष बीकानेर के उत्तरी हिस्से में बड़ा अकाल पड़ा। हजारों व्यक्ति अपने गाँव छोड़कर पशुओं के साथ मालवा की तरफ जाने लगे।

सेठजी ने अपने कस्बे में उनके विश्राम के लिए व्यवस्था कर

रखी थी। एक-दो दिन वहाँ रहकर सुस्ता लेते थे। दूसरे स्वयं-सेवकों के साथ-साथ गोपाल और सुमन भी इस काम में दिलचस्पी लेते थे। एक दिन वे इसी प्रकार के एक यात्री-दल की व्यवस्था कर रहे थे कि उनमें से एक अधेड़-सा व्यक्ति गोपाल को घूर-घूर कर देखने लगा, थोड़ी देर में अपनी पत्नी को भी बुला लाया।

सुमन ने हँसकर कहा कि बाबा इस प्रकार आप क्या देख रहे हो और आपकी आँखों में आँसू क्यों है? थोड़ी देर तो वृद्ध चुप रहा, फिर सहमते हुए कहा—"बाई-सा मेरा लड़का रामू आज से १८ वर्ष पहले हरिद्वार के कुम्भ मेले में गुम हो गया था। उसका रंग भी इसी तरह साफ था। उसके बाएं गाल पर भी इसी प्रकार का निशान था। कुँवर साहब को देखकर हमें अपने खोये हुए पुत्र की याद आ गयी है।"

घर जाकर सुमन ने पिता जी को जब यह बात कही तो देखा गया कि उनके चेहरे पर उदासी छा गयी थी।

रात में उस वृद्ध को बुलाकर पूछताछ की गयी तो पता चला कि वे लोग जाति के चमार है। उस वर्ष कुम्भ स्नान करने के लिए गये थे। वहीं उनका एकमात्र पुत्र भीड़ में खो गया, जिसका आजतक पता नही चला। लड़के के कुछ और भी चिह्न था क्या? यह पूछने पर उसने कहा कि उसके दायें हाथ में चोट का एक निशान था।

यह सब बातें गोपाल और उसकी माँ भी सुन रही थी।

समय वृद्ध को १००)-२००) रुपये देकर उसे यह कह कर विदा कर दिया कि तुम्हें इस प्रकार की फिजूल बातें नहीं करनी चाहिए। अच्छा हो कि तुम लोग कल यहाँ से चले जाओ।

परन्तु ऐसी बाते छिपी नहीं रहतीं। लोगों को अपना हर्ज करके भी दूसरों के छिद्र ढूँढ़ने का शौक रहता है। यह बात धीरे-धीरे सारे कस्बे मे फैल गयी।

इधर सेठ जी और सेठानी दोनों कमरा बन्द करके भीतर बैठ गये। बहुत कहने-सुनने पर भी भोजन के लिए बाहर नही निकले।

गोपाल हर प्रकार से योग्य और समझदार था। वस्तु-स्थिति उसकी समझ में आ गयी थी। वह एक निश्चय पर आकर दूसरे दिन सुबह सुमन के पास जाकर कहने लगा, "बहिन जी, जो कुछ होना था, वह तो हो गया। परमात्मा जानता है कि उसमे मेरा कुछ कसूर नही है। फिर भी, मेरे कारण आप लोगों को इतना बडा अपमान सहना पड़ा। अब किसी तरह पिताजी और माताजी को भोजन कराने का उपाय करो, वे कल से ही भूखे प्यासे है।"

सुमन ने देखा कि जो भाई उससे हमेशा हँसी-मजाक करता रहता कभी सुमन और कभी बेबी कहकर पुकारता था, वह आज 'बहिन जी' कह रहा है और सहमा-सा थोड़ी दूरी पर बैठा हुआ है।

उन दोनों ने बहुत अनुनय-विनय करके कमरे का दरवाजा खुलवाया। देखा कि एक दिन में ही पिताजी वृद्ध से लगने लगे

हैं। माता एक तरफ अचेत पड़ी हुई हैं। अन्य दिनों की तरह आज गोपाल ने पिता के पैर नहीं छुए। कुछ दूरी से ही कहा, "पिताजी, मेरा आपका सम्बन्ध इतने दिनों का ही ईश्वर को मंजूर था। अब आप हिम्मत करके मुझे विदा दें। माता जी का बुरा हाल है, उन्हें भी सान्त्वना दें। आपने जितना लिखा-पढ़ा दिया है, उससे २००), ३००) रु० माहवार आसानी से कमा सकूँगा।"

बहुत देर का रोका उद्वेग एक बरसाती नाले के बाँध की तरह टूट गया। इतने बड़े प्रतिष्ठित सेठ, छोटे बच्चे की तरह जोर-जोर से रोने लगे। कहने लगे, "मैं भले ही चमार हो जाऊँगा, परन्तु किसी हालत में भी तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। हो सकता है, तुमने जन्म अछूतों के घर में लिया हो परन्तु भला कोई बताये तो कि तुम जैसे धार्मिक और निष्ठावान युवक ऊँची जातिवालों मे भी कितने है? राम तो १४ वर्ष के लिए ही वनवास गये थे, परन्तु तुम मुझे इस बुढ़ापे में सदा के लिए छोड़कर जाना चाहते हो!"

इधर हवेली में सुबह से ही किसी-न-किसी बहाने सगे सम्बन्धी आकर इकट्ठे हो गये थे और झूठी सहानुभूति दिखा रहे थे। सब कुछ जानते-बूझते हुए भी 'क्या हुआ?' 'कैसे हुआ?' आदि, पूछ रहे थे। साथ में, उन चमारों में से भी कुछ को ले आए थे।

थोड़ी देर में ही गोपाल उन सबके सामने जाकर कहने लगा कि आपने जो कुछ सुना है, वह सब सत्य है। मैं कोलायत के चमारों का लड़का हूँ। इसी समय घर और आपका गाँव छोड़कर जाने को

तैयार हूँ। कृपा करके आप सेठजी को क्षमा कर दें। उन्होंने जो कुछ किया, बिना जानकारी के किया है। फिर, बड़े से बड़े कसूर का भी प्रायश्चित तो होता ही है, वह सब वे विधि पूर्वक करेंगे।

परन्तु सेठजी किसी तरह भी गोपाल को छोड़ने को तैयार नहीं थे। आँसू की धारा बह रही थी, उसे जबर्दस्ती गले लगा कर कहने लगे, "सुमन भी कपड़े बाँधकर तुम्हारे साथ जाने की तैयारी कर रही है, फिर भला हम अकेले इस घर में रह कर ही क्या करेंगे? तुम्हारे साथ ही चलेंगे। किसी दूसरे गाँव में जाकर चमारों के साथ रह लेंगे।"

गोपाल चाहता तो सेठजी के इन स्नेहपूर्ण उद्‌गारों का लाभ उठा सकता था, परन्तु उसने सुमन और सेठ जी को अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर वहाँ से विदा ली। दूसरे दिन ही यात्री-दल के साथ मालवा के लिए रवना हो गया। बहुत अनुनय-विनय के बावजूद घर से दो-चार धोती-कुर्त्तों के सिवाय अन्य कोई भी वस्तु साथ में नहीं ली।

विदा के समय एक प्रकार से सारा गाँव ही उमड़ पड़ा था। कल तक इस घटना में लोग ईर्ष्यायुक्त रस ले रहे थे, परन्तु आज वे सब फूट-फूट कर रोते हुए देखे गये।

परोपकार

आज से पचास-साठ वर्ष पहले राजस्थान में बड़े शहरों के सिवाय अन्यत्र कहीं भी डाक्टर नहीं थे। अगर कोई धनी व्यक्ति ज्यादा बीमार हो जाता तो इलाज के लिए जोधपुर या बीकानेर से डाक्टर को बुलाया जाता। हमारे कस्बे में एकबार एक सेठ के इलाज के लिए कलकत्ता से आशु बाबू नाम के एक बंगाली बड़े डाक्टर आए थे। इन्हें देखने के लिए स्थानीय लोगों के अलावा बहुत से ग्रामीण भी आये थे क्योंकि, एक सौ रुपया प्रति दिन की फीस उस समय एक अद्भुत और अनोखी बात थी।

बीमारियाँ तो उस समय भी होती थीं परन्तु डाक्टरी इलाज का प्रचलन नही के बराबर था। सर्दी, जुकाम, सिर-दर्द और यहाँ तक कि मलेरिया और मियादी बुखार में कालीमिर्च और लौंग की चासनी या दसमूल का काढ़ा दे दिया जाता। अधिकांश रोग इन्हीं देशी जड़ी-बूटियों से ही दूर हो जाते।

वैद्यों के अलावा हर मोहल्ले में एक दो सयानी स्त्रियाँ रहतीं जिनकी कोथली (थैली) में जच्चा और बच्चा दोनो के लिए दवायें रहतीं। बीमार के घरवालों को इन्हें बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। खबर प्रकार वे स्वयं ही पहुँच जातीं और रोगी की सेवा

में लग जातीं। किसी प्रकार की फ़ीस या औषधि के मूल्य का तो प्रश्न ही नहीं था। बल्कि ऐसे मौकों पर पुराने वैर-बदले भी समाप्त हो जाते।

थोड़े वर्षों बाद, शायद सन् १९३० के लगभग, एकाध डाक्टर भी आ गए थे, जिनके गले में या कोट के ऊपर की जेब में रबर का स्टेथिस्कोप पड़ा रहता। फ़ीस अधिकतम दो रुपया होती किन्तु उस समय लोगों को यह भी अखरती थी। इसलिए अधिकांश रोगी झाड़-फूँक या स्थानीय वैद्य जी का सहारा ही लेते।

वैद्य का बेटा अपने आप वैद्य हो जाता। आयुर्वेद की डिग्रियाँ तो नहीं थीं परन्तु बड़ों द्वारा प्राप्त नाड़ी और औषधि का ज्ञान उन्हें यथेष्ट रहता। आजकल की तरह थूक-खून और मूत्र की परीक्षा के साधन न होने पर भी नाड़ी ज्ञान द्वारा ये लोग रोग का सही निदान कर देते। कुछ एक पुश्तैनी वैद्यों के पास विश्वसनीय और कीमती आयुर्वेदिक दवायें अच्छी मात्रा में पायी जातीं जिनका असर अचूक होता।

शायद, सन १९३६ की बात है। हमारे कस्बे और आस-पास के गाँवों में बड़े जोर का हैजा फैला। प्रतिदिन २०, ३० आदमी मरने लगे। लोगों में घबराहट फैल गयी। जिनके पास साधन थे वे दूर के गाँवों में और कस्बों में अपने सगे सम्बन्धियों के यहाँ चले गये। यहाँ तक कि डाक्टर और वैद्य भी गाँव छोड़कर चले गये; क्योंकि जिनसे फ़ीस मिलने की आशा थी, वे तो पहले से ही जा

चुके थे। बच गये थे गरीब लोग जिनके पास फीस तो क्या दवा के दाम भी नहीं थे। इतना ही नहीं, रोग का प्रकोप ज्यादा बढ़ा तो घरवाले भी रोगियों को छोड़कर भागने लगे।

घर-घर में रोगी पड़े थे और डाक्टर-वैद्यों में केवल एक ही रह गये थे, कविराज बृजमोहन गोस्वामी। यद्यपि परिवार वालों ने और मित्रों ने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे कस्बा छोड़ दें; आखिर अकेले कर ही कितना पायेंगे? साथ ही, जान भी जोखिम में रहेगी। उनका जवाब था कि मेरे पितामह और पिता माने हुये वैद्यराज थे। उन्होंने कभी संकट के समय रोगी को नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि गरीबों के लिये दवा के सिवाय कभी-कभी पथ्य की भी व्यवस्था अपने पास से की। इस समय अगर मैं भागकर चला जाऊँगा तो इन असहायों का क्या होगा? मृत्यु तो अवश्यम्भावी है. एक दिन होगी ही, फिर कर्त्तव्य-विमुख होकर अपकीर्ति की मृत्यु क्यों हो?

हैजे का सबसे ज्यादा प्रकोप था चमारों और भंगियों के मुहल्लों मे। वीरान गाँव, भयावह गलियाँ, सूने घर और मुर्दों की सड़ांध से पूरा गाँव श्मशान सा नजर आता था। गोस्वामी जी सुबह ६ बजे उठते और दोपहर १२ बजे तक बीमारों को देखते रहते। फिर खाना खाकर बिना सुस्ताये रात के १० बजे तक वही कार्यक्रम चालू रहता। उस समय तक हैजे के इन्जेक्शन और एलोपैथिक दवायें ईजाद हो चुकी थीं पर वहाँ न तो इन्जेक्शन देने वाले डाक्टर या कम्पाउन्डर थे और न दवाफरोश ही। वैद्यजी

को तीन-चार हिम्मतवाले युवकों ने साथ दिया। मनों प्याज का रस निकाल कर मटके भर लिये और ऊंटों का मूत्र भी बड़ी मात्रा में इकट्ठा कर लिया। रोगियों को भगवान का नाम लेकर वे दोनों औषधि पिलाने लगे और इनसे ही चमत्कारिक लाभ होने लगा।

उस समय राजस्थान में छुआछूत बहुत थी। गोस्वामी जी परम वैष्णव थे, परन्तु उन्हें तो इन भंगी चमारों में वास्तविक हरि के दर्शन होने लगे। बहुत बार तो उनके मल-मूत्र भरे कपड़े धोने पड़ते और जगह की सफाई भी करनी पड़ती। बीमार माता और छोटे बच्चों को लोरी गाकर सुलाना पड़ता। जान और माल का मोह छोड़ भी दें तो भी नाम और यश की कामना तो रहती ही है और इसी के चलते ऐतिहासिक बलिदान हुये हैं। परन्तु उस बीमार इलाके में न तो समाचार-पत्रों के सम्वाददाता थे जो इस सेवा-कार्य को प्रचार प्रसार देते और न वैद्य जी ही अपने नाम और काम का ढिंढोरा पीटना चाहते थे। उन्होंने तो अपना कर्त्तव्य समझ कर ही मृत्यु का आलिंगन करना स्वीकार किया था।

उनका शरीर भारी था, वृद्धावस्था हो चली थी। रात को थक कर चूर हो जाते परन्तु जैसे ही थोड़ा सा खा पीकर सोने को जाते कि रोती हुई कोई महिला आती और अपने बच्चे की उल्टी-दस्त की बात कह कर गिड़गिड़ाने लगती। वैद्य बृजमोहन का मनुष्यत्व जाग उठता और वे प्रभु का नाम लेकर उसी समय

चल देते। सारी रात बाहर ही बीत जाती। इस प्रकार कई बार हुआ। एक कहावत है कि जाको राखे साइयां मारि सके न कोय। महामारी समाप्त हो गयी, लोग वापस आने लगे। उन्होंने देखा कि गोस्वामी जी सही सलामत हैं। हाँ, शरीर से काफी थक गये हैं, एक प्रकार टूट से गये हैं।

आसपास के कस्बों के लोग उन्हें देखने आने लगे। उनके सार्वजनिक अभिनन्दन का प्रस्ताव रखा गया परन्तु उन्होंने नम्रतापूर्वक इसको मनाही कर दी। उनका कहना था, "मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया है। यही तो भारतीय परम्परा रही है और यही भगवान धन्वन्तरि की आज्ञा है। बचाने वाला तो ईश्वर है मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ।"

कुछ दिनों बाद गोस्वामी जी बीमार पड़े। सैकड़ों व्यक्ति रोज उनके दर्शन को आते। लेकिन आयु समाप्त हो चुकी थी। वैद्य जी का देहान्त हो गया। सारे गाँव में, विशेषकर हरिजनों और गरीबों की बस्ती में शोक छा गया। उनके दाह कर्म से इतने स्त्री और पुरुष गये जितने आजतक किसी भी व्यक्ति के नहीं गये थे।

———

मजदूर से मालिक

बात पुरानी है, परन्तु बहुत पुरानी नही। यही कोई साठ सत्तर वर्ष पहले की होगी। उस समय खत्री समाज का कलकत्ते के व्यवसाय-वाणिज्य में विशिष्ट स्थान था, बड़ी-बड़ी अंग्रेजी आफिसों की बेनियनशिप इनके पास थी। उस समय तक देश में कारखाने बहुत कम बन पाये थे इसलिए अधिकाश आवश्यक वस्तुएँ विदेशों से खासकर ब्रिटेन से आयात की जाती थीं। १९१०-११ ई० तक भी पालकी गाड़ी और फिटन गाड़ियों का युग था। शौकीन रईसों के पास दो घोड़ो की गाड़ियाँ तो थी ही, परन्तु किसी-किसी के यहाँ ४ घोड़ों की भी थी, जिन्हे चौकड़ी कहा जाता था। कोचवान और साईस की पोशाकें बहुत ही आकर्षक होती थी। उन वेलर घोड़ों की फिटनों के सामने आज की बड़ी से बड़ी मोटरों का भी कोई मुकाबला नही है।

सेठ निक्कामल घोड़ों की रास थामे अपनी सोने की नक्काशी की हुई सुन्दर फिटन में बैठे हुए जिधर से निकलते तो लोग घर के भीतर से दौड़कर देखने को बरामदे में आ जाते। कहा जाता है कि उनके घोड़ों को बेहतरीन गुलाब और केवड़ा जल से स्नान कराया जाता था और जिधर से उनकी गाड़ी निकलती, वहाँ सुमधुर सुगन्ध का समा बँध जाता था। ऐसे थे सेठ निक्कामल खत्री;

कार तारक कम्पनी के वेनियन और सर्वेसर्वा। यद्यपि उनकी वार्षिक आय १-१॥ लाख से ज्यादा नहीं थी, चूँकि प्रथम महायुद्ध के पहले वस्तुएं बहुत सस्ती थीं और प्रचुर-मात्रा में दैनिक आवश्यक चीजें उपलब्ध थीं, इसलिये उस समय आज से पाँच प्रतिशत की आय में भी लोग अच्छी तरह से रह सकते थे।

सेठ बहुत देर से सोकर उठते। उसके बाद ताश-शतरञ्ज से फुरसत मिलने पर जब वे खा-पीकर आफिस आते, तब तक ३-॥ बज जाते। वे आफिस का काम स्वयं बहुत कम देखते थे। उनके साथ कई दलाल और दूसरे लोग काम करने वाले थे। उनमें से गिरधारीलाल नामक एक १५ वर्ष का मारवाड़ी लड़का भी था। इसका मासिक वेतन था १४ रु० और काम बाजार के पुर्जा चुका लाने का। इन चौदह रुपयों में ही गिरधारीलाल को अपने छोटे भाई और विधवा माँ का खर्च चलाना पड़ता था। यद्यपि अभाववश स्कूल और कालेज की पढ़ाई तो नहीं हो पायी थी फिर भी, वह शुरू से ही परिश्रमी और होशियार के सिवाय सुन्दर और सुशील भी था।

पुर्जे चुकाने के सिलसिले मे उसे दुकानदारों के पास प्रायः नित्य ही जाना पड़ता था, इसलिए विभिन्न तरह के कपड़ों के दाम उसे याद हो गए थे। सेठ के कुछ अपने बंधे हुए दुकानदार थे, जिन्हें किसी कारणवश बाजार से कुछ सस्ते दर पर कपड़ा दिया जाता था। एक दिन बड़ी नम्रता से उसने सेठ का

ध्यान किसी एक सौदे के बारे में आकर्षित किया जो बाजार भाव से कुछ नीचे में हुआ था।

उसे बड़ा दुःख हुआ जब सेठ ने शाबासी देने के बजाय उसे धमका दिया कि उसका काम केवल पुर्जा चुका लाना है, उसे इन सब बातों से कोई प्रयोजन नहीं रखना चाहिए।

आफिस के बड़े साहब का ध्यान गिरधारीलाल के व्यवहार और परिश्रम की ओर गया। वह कभी कभी उसको अपने कमरे में बुलाकर बातचीत करने लगा। उस समय के अधिकाश अंग्रेज व्यापारी साधारण हिन्दी और बंगला बोल लेते थे। सेठ को यह मेल-जोल अच्छा नहीं लगा और उसने गिरधारीलाल को साहब से मिलने की मनाही कर दी।

गिरधारी स्वामी-भक्त था, उसे साहब से कुछ आशा-भरोसा का सवाल भी नही था इसलिए वह उनसे अलग-सा रहने लगा।

कुछ दिनों बाद एक दिन साहब ने उसे बुलाकर नही मिलने का कारण पूछा। चूँकि वह किसी प्रकार भी मालिक की शिकायत नही करना चाहता था। इसलिए उसने सच्ची बात न बताकर दूसरे कामों में फँसे रहने का बहाना कर दिया। इतने में ही सेठ निक्कामल वहाँ आ गए। साहब को इस मामूली 'छोकरे' से हँस-हँस कर बातें करते देखकर उन्हें बहुत गुस्सा आया परन्तु उस समय कुछ बोले नहीं। दूसरे दिन गिरधारीलाल को घर पर

बुला कर एक सौ रुपया देते हुए सेठ ने उसे नौकरी से अलग कर दिया और कहा कि आइन्दा वह आफिस की तरफ न आये।

यद्यपि उस समय एक सौ रुपया उस गरीब युवक के लिए बहुत बड़ी राशि थी, परन्तु उसने नम्रतापूर्वक रकम वापस कर दी, क्योंकि बिना कमाई का पैसा वह नहीं लेना चाहता था। उसने सेठ को विश्वास दिलाया कि मैंने आपका नमक खाया है; मेरे से आपका किसी प्रकार का अहित नहीं होगा।

घर आने पर माँ के पास जाकर उसे रुलाई आ गयी। उसे नौकरी से क्यों छोड़ा गया, इसका वह कोई कारण नहीं बता सका। अपने पुत्र की ईमानदारी और मेहनत पर माँ को पूरा भरोसा था। फिर भी, उसने यही सीख दी, "बेटा, कुछ-न-कुछ तो गलती हुई ही है, नहीं तो तुम्हें मालिक क्यों छोड़ते? खैर, अपने शरीर में उनका नमक है, इसलिए उनकी बुराई हो, ऐसा काम कभी मत करना।"

सेठ निक्कामल का कपड़ा बाजारमें इतना दबदबा था कि उनके छोड़े हुए व्यक्ति को रखने का किसी को साहस नहीं होता था। इसलिए, बेचारा युवक रोज इधर-उधर घूम-फिर कर वापस घर आ जाता। जो कुछ पास मे था, वह समाप्त हो गया और अन्त में उन लोगों के भूखे रहने की नौबत आ गयी।

गिरधारीलाल को विश्वास था कि साहब के पास जाने पर

कुछ न कुछ काम जरूर मिल जायगा, किन्तु मालिक ने आफिस में जाने की मनाही जो कर दी थी।

दस-पन्द्रह दिन बाद साहब ने सेठ से पूछा तो उसके बीमार होने का बहना कर दिया।

कुछ दिन और बीत जाने पर एक दिन साहब ने अपने बड़े दरबान को बुलाकर कहा कि गिरधारीलाल के घर उसे देखने जाएँगे, वह शायद ज्यादा बीमार है। दरवान से पता चला कि वह बीमार तो नही है, परन्तु उसको नौकरी से अलग कर दिया गया है।

उस दिन शनिवार था। सेठ आफिस नही आए थे क्योंकि वे नियमानुसार शुक्रवार की शाम को चुने हुए मुसाहिबों के साथ अपने लिलुआ के बगीचे चले गए और सोमवार सुबह वापस आने को थे।

गिरधारीलाल को बुलाकर जब साहब ने पूछ-ताछ की तो उस स्वामी-भक्त युवकने सेठ को बचाने के लिए कहा, "मेरे से एक बड़ी गलती हो गयी इसीलिए उन्होंने मुझे छोड़ दिया है।"

बात तो उसने कह दी, परन्तु आधा पेट भूखे छोटे भाई और माँ का ख्याल आने पर उसे बरबस रुलाई आ गयी। प्रयत्न करने पर भी आँसुओं को नहीं रोक सका।

साहब ने कहा, "तुम तो विभिन्न प्रकार के कपड़ों के दाम

और व्यापारियों को जानते हो। अगर तुम्हें कपड़ा बेचने का काम दिया जाय तो कर सकोगे?" उसने जवाब दिया, "श्रीमान यह मेरे मालिक का हक है। आज यद्यपि मैं उनके यहाँ नहीं हूँ, पर मैंने उनका नमक खाया है इसलिए मैं यह काम नहीं करूँगा।"

उस फटेहाल लड़के की इस बात ने साहब को और भी प्रभावित किया और उसने हर प्रकार से उसे समझाया कि इससे सेठ को किसी प्रकार की क्षति नही होगी। किसी न किसी को तो उन्हें दलाली देनी ही पड़ती है। उसे कुछ कपड़ों के नमूने देकर और कीमतें बताकर १००० गाँठ तक बेच देने का आदेश दिया।

बनिये का लड़का था, व्यावसायिक बुद्धि प्रचुर मात्रा मे थी। वह उन दुकानदारों के पास गया जो इस आफिस का माल लेने को तरसते रहते थे। साहब ने जो भाव बताये थे, उससे प्रति गज एक दो पैसे ऊँचे में सौदे पक्के कर लिये और खरीदारों को आफिस में लाकर साहब से रजू करा दिया।

सारे बाजार में चर्चा फैल गयी कि कार तारक कम्पनी का कपड़ा गिरधारीलाल ने बेचा है। निक्कामल के व्यापारी घोड़ेगाड़ियाँ लेकर लिलुआ के बगीचे खबर देने पहुँचे।

सेठ मुसाहिबों से घिरे हुए नाच-गाना देखने-सुनने में मस्त थे। परन्तु, जब इस बात का पता चला तो नशा हिरन हो गया। तबले की थाप और सारंगी की तान बन्द हो गयी और उसी समय फिटन दौड़ाते हुए आफिस पहुँचे।

कुछ-न-कुछ काम जरूर मिल जायगा, किन्तु मालिक ने आफिस में जाने की मनाही जो कर दी थी।

दस-पन्द्रह दिन बाद साहब ने सेठ से पूछा तो उसके बीमार होने का बहना कर दिया।

कुछ दिन और बीत जाने पर एक दिन साहब ने अपने बड़े दरवान को बुलाकर कहा कि गिरधारीलाल के घर उसे देखने जाएँगे, वह शायद ज्यादा बीमार है। दरवान से पता चला कि वह बीमार तो नहीं है, परन्तु उसको नौकरी से अलग कर दिया गया है।

उस दिन शनिवार था। सेठ आफिस नहीं आए थे क्योंकि वे नियमानुसार शुक्रवार की शाम को चुने हुए मुसाहिबों के साथ अपने लिलुआ के बगीचे चले गए और सोमवार सुबह वापस आने को थे।

गिरधारीलाल को बुलाकर जब साहब ने पूछ-ताछ की तो उस स्वामी-भक्त युवकने सेठ को बचाने के लिए कहा, "मेरे से एक बड़ी गलती हो गयी इसीलिए उन्होने मुझे छोड़ दिया है।"

बात तो उसने कह दी, परन्तु आधा पेट भूखे छोटे भाई और माँ का ख्याल आने पर उसे बरबस रुलाई आ गयी। प्रयत्न करने पर भी आँसुओं को नहीं रोक सका।

साहब ने कहा, "तुम तो विभिन्न प्रकार के कपड़ों के दाम

और व्यापारियों को जानते हो। अगर तुम्हें कपड़े बेचने का काम दिया जाय तो कर सकोगे?" उसने जवाब दिया, "श्रीमान यह मेरे मालिक का हक है। आज यद्यपि मैं उनके यहाँ नहीं हूँ, पर मैंने उनका नमक खाया है इसलिए मैं यह काम नहीं करूँगा।"

उस फटेहाल लड़के की इस बात ने साहब को और भी प्रभावित किया और उसने हर प्रकार से उसे समझाया कि इससे सेठ को किसी प्रकार की क्षति नहीं होगी। किसी न किसी को तो उन्हें दलाली देनी ही पड़ती है। उसे कुछ कपड़ों के नमूने देकर और कीमतें बताकर १००० गाँठ तक बेच देने का आदेश दिया।

बनिये का लड़का था, व्यावसायिक बुद्धि प्रचुर मात्रा में थी। वह उन दुकानदारों के पास गया जो इस आफिस का माल लेने को तरसते रहते थे। साहब ने जो भाव बताये थे, उससे प्रति गज़ एक दो पैसे ऊँचे में सौदे पक्के कर लिये और खरीदारों को आफिस में लाकर साहब से रजू करा दिया।

सारे बाजार में चर्चा फैल गयी कि कार तारक कम्पनी का कपड़ा गिरधारीलाल ने बेचा है। निक्कामल के व्यापारी घोड़ेगाड़ियाँ लेकर लिलुआ के नगीचे खबर देने पहुँचे।

सेठ मुसाहिबों से घिरे हुए नाच-गाना देखने-सुनने में मस्त थे। परन्तु, जब इस बात का पता चला तो नशा हिरन हो गया। तबले की थाप और सारंगी की तान बन्द हो गयी और उसी समय फिटन दौड़ाते हुए आफिस पहुँचे।

वे आफिस के पुराने बेनियन थे, उनकी इज्जत तथा धाक थी। शायद अपनी गलती मंजूर करने पर साहब मान जाता, परन्तु क्रोध में मनुष्य की मति भ्रष्ट हो जाती है।

उन्होने आते ही बड़े साहब पर रोब गाँठना शुरू किया। परन्तु वह झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहता था। उसने कहा, "एक महीने से यह माल बिक नहीं रहा था और जिन दामो में हम बेचना चाहते थे, उससे भी चार पाँच पाई प्रति गज ऊँचा बिका है। गिरधारी लाल की तो केवल दलाली ही रहेगी, बाकी बेनियनशिप कमीशन तो आपका ही है।"

साहब की नम्रता को कमजोरी समझकर सेठ निक्कामल ने विलायत के बड़े साहबों से अपनी मित्रता और प्रभाव की धौंस जताते हुए कहा कि दलाल चुनना मेरा काम है न कि आपका। इसलिए इस सौदे की जिम्मेवारी मैं नही लूँगा। गिरधारी लाल के पास एक कानी कौड़ी भी नहीं है कि वह आपको जमानत के रूप में दे सके। मैं अब आपसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना नही चाहता। उसी समय सेठ ने बेनियनशिप से इस्तीफा लिखकर दे दिया।

उसको पूरा भरोसा था कि साहब दब जायगा और मान-मनुहार करके इस्तीफा वापस कर देगा। परन्तु जब टाइपिस्ट को बुलाकर इस्तीफे की मंजूरी लिखा दी गयी तो निक्कामल की आँखों के आगे अन्धेरा छा गया, क्योंकि उसकी शान-शौकत

और मौज-बहार तो सब इस आफिस के कारण ही थी ! उसने साहब से गलती और गुस्से के लिए क्षमा भी माँगी। परन्तु बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी और अब किसी प्रकार का समझौता सम्भव नहीं था।

कलकत्ते की आफिस से बिना रुपये जमा लिये ही गिरधारी-लाल के लिए बेनियनशिप की सिफारिश लन्दन आफिस को की गयी। इधर सेठ निक्कामल ने भी पूरा जोर लगाया। अपने तीस वर्षों के सम्बन्ध और गिरधारीलाल की नाजुक आर्थिक स्थिति और नातजुर्बेकारी के बारे में बड़े-बड़े तार दिये। दूसरे व्यापा-रियों से भी तार दिलाये, परन्तु बात बड़े साहब की ही रही।

अब, कार तारक कम्पनी के बेनियन बने सेठ गिरधारीलाल मटरूमल; कल का १४) महीने में पुर्जा चुकाने की नौकरी करने वाला ! बहुत वर्षों तक दोनों भाइयों ने ईमानदारी और कड़ी मेहनत से काम किया। आफिस के काम की उनके समय में अच्छी तरक्की हुई। उनके अपने लाभ के सिवाय व्यापारियों को भी उनके द्वारा अच्छा मुनाफा होता रहा।

धनाढ्य हो जाने पर भी उन्होंने अपने रहन-सहन में सादगी रखी और गरीबी के दिनों को नहीं भूले। कोई गरीब युवक उनके पास आया, उसे हर प्रकार की सहायता दी। कुछ वयो-वृद्ध लोग अभी तक हैं जिन्होंने गिरधारीलाल को देखा है। कलकत्ते के हरिसन रोड में उनकी धर्मशाला है। राजस्थान में

भी कूँआ, तालाब और धर्मशाला है। गरीब विद्यार्थियों के लिए अन्नक्षेत्र भी कुछ समय पहले तक था। ऐसा कहा जाता है कि गरीब लड़कियों की गुप्त-रूप से उन्होंने बीसियों शादियाँ करायी थी।

आज न तो गिरधारीलाल है और न कार तारक कम्पनी का साहब। परन्तु उनके स्मारक और भलाई की बातें लोगों के मन में अभी तक बसी हुई हैं और दूसरे व्यक्तियों को प्रेरणा प्रदान करती रहती है।

❀

बलिदान की परम्परा

राजस्थान की भूमि वीर-प्रसविनी कहलाती है। चित्तौड़ का यश सर्वविदित है। भूतपूर्व जोधपुर रियासत में भी अनेक वीर पैदा होते रहे है जिनकी गाथायें उन क्षेत्रों के चारण गद्गद् होकर गाते हैं। बाबा रामदेव, वीर दुर्गादास और प्रण-वीर पाबूजी राठौर का नाम आज भी अमर है। सन् १९६२ में मेजर शैतान सिंह चीनी आक्रमणकारियों से बहुत बहादुरी के साथ देश की रक्षा करते हुए शहीद हुए थे। उसी मरुधरा की ढाणियों की एक छोटी-सी राजपूत-बस्ती, वीरपुरी में एक साधारण घराना है, जिसकी यह परम्परा चली आ रही है, कि उस परिवार का प्रत्येक पुरुष तीस-बत्तीस वर्ष की उम्र पाने से पूर्व ही किसी न-किसी युद्ध में वीरगति प्राप्त कर लेता था।

इस घराने को जोधपुर रियासत से सिरोपाव, सोना और नगारे की इज्जत मिली हुई थी। यहाँ तक कि दरबार में जाने पर महाराजा स्वयं खड़े होकर परिवार के सरदार का स्वागत करते थे। कहा जाता है कि इनके पूर्वजों में कई ऐसे अद्भुत जुझार पैदा हुये, जो सिर कट जाने के पश्चात् भी कुछ देर तक हाथ में तलवार लिये युद्ध करते रहे। इसी घराने के ठाकुर हीरसिंह ने प्रथम महायुद्ध में, फ्रांस की रणभूमि में जर्मनों के

छक्के छुड़ा दिये थे। स्वयं घायल होकर भी एक दूसरे घायल सिपाही को कन्धे पर डालकर ले जाते हुए उसको सुरक्षित स्थान पर पहुँचाते समय दुश्मन की गोलियों से उनका प्राणान्त हो गया !

ठाकुर हीर सिंह की मृत्यु का समाचार उनकी विधवा माँ और पत्नी को मिला तो शोकाकुल माता ने सर्वप्रथम यह बात पूछी कि मेरे पुत्र के शरीर में गोली किस जगह पर लगी। उसको यह बताया गया कि किस प्रकार वह जर्मन सिपाहियों को मौत के घाट उतारता रहा और अन्त में घायल साथी के प्राण बचाते हुए धोखे से मारा गया। फिर भी, वह अपने शेष जीवन में इस संताप से ग्रस्त रही कि उसका पुत्र पीठ में लगी गोली से मारा गया, जो उस परिवार के लिए कलंक था।

विधवा माँ और पत्नी एक मात्र मासूम बच्चे पर सारी आशाएँ केन्द्रित कर उसे वीरता-भरी कहानियाँ सुनाया करतीं। जब उसकी आयु तेइस-चौबीस वर्ष की हुई तो द्वितीय विश्व-महायुद्ध का प्रारम्भ हो चुका था। जोधपुर नरेश के बुलाने पर युवक भूरसिंह परिवार की परम्परानुसार दादी, माता और पत्नी के पास विदा लेने गया। विदा करते हुए माँ ने कहा, "बेटा, मुझे एक संताप आज भी खाये जा रहा है, यद्यपि तेरे स्वर्गीय पिता को यथेष्ट यश मिला था किन्तु उनकी मृत्यु पीठ पर गोली लगने से हुई। अतः यह ध्यान रखना कि इसकी पुनरावृत्ति न हो। पित्रेश्वरों के आशीर्वाद से तुम्हें विजयश्री प्राप्त हो, मेरी

कोख व परिवार के नाम उज्ज्वल करके अपने घराने के यश को वढ़ाते हुए रण भूमि से वापिस लौटना।"

युवक भूरसिंह ने अपने पिता से भी ज्यादा यश प्राप्त किया। सैकड़ों दुश्मनों को इटली के रणक्षेत्र में मौत के घाट उतार कर वह वीरगति को प्राप्त हुआ। गोलियों से छलनी हुई लाश को श्रद्धा के साथ मस्तक झुकाकर शत्रु-सेना के अफसरों ने भी सलामीदी और सम्मानपूर्वक उसे दफ़ना दिया गया।

जव भूरसिंह घर से चला था तो युवा पत्नी गर्भवती थी। उसकी मृत्यु के समय वालक पुत्र की आयु केवल दो वर्ष की थी। सरकारी पेंशन से किसी प्रकार घर का निर्वाह होता रहा। वैसे, थोड़ी-सी जमीन भी थी, किन्तु परिवार में कोई पुरुष सदस्य खेती को देखने वाला था नहीं, अतः जो कुछ वँटाई से प्राप्त होता, उससे गुजारे में मदद मिल जाती थी।

वचपन से ही वालक वड़ा हृष्ट-पुष्ट था, इसलिये उसका नाम रखा गया जोरावर सिह! दस साल की उम्र में जोरावर सिंह में इतनी ताकत व हिम्मत थी कि स्कूल में अपने से दुगुनी उम्र के लड़कों को पछाड़ दिया करता, फलतः आसपास के गाँवों में कई प्रकार की किंवदन्तियाँ उसके वल के वारे में प्रचलित हो गयीं। उन वातों को सुनकर विधवा माँ का हृदय सदैव भय-भीते रहता। वह पुत्र को सैनिक स्कूल में भर्ती न करवा कर घर पर ही शिक्षा दिलाना चाहती थी। परन्तु जोरावर सिंह विना कुछ कहे एक दिन छिपकर घर से चल दिया और सैनिक स्कूल

में भर्ती हो गया। स्कूल से उसने अपनी विधवा माँ को पत्र लिखा, "...... यद्यपि देश स्वतंत्र हो गया है पर हमारी उत्तरी सीमा पर दुश्मन की आँखे है। इस हालत में भारत-माता को किसी भी समय वीरों के बलिदान की आवश्यकता हो सकती है और उसमें सर्वप्रथम हमारे परिवार का योग न रहा तो आपके कोख से मेरा जन्म लेना व्यर्थ होगा।" पत्र पढ़ते समय माँ की दाहिनी आँख फड़क रही थी फिर भी उसने आशीर्वाद सहित जोरावर को सैनिक शिक्षा की मंजूरी दे दी।

अक्टूबर-नवम्बर १९६२ का समय था। चीन का आक्रमण हुआ। जोरावर सिह सेना की सर्वोच्च परीक्षा में उत्तीर्ण होकर निकला। उसकी प्रबल इच्छा थी कि उसे लड़ाई में जाने का अवसर मिले; परन्तु यह इच्छा पूर्ण हो, इसके पहले ही युद्ध-विराम हो गया।

कुछ अर्से बाद पाकिस्तान ने हमारे देश पर हमला किया। कश्मीर, पंजाब और राजस्थान के बाड़मेर की सीमाओं पर हमलावरों को रोकने के लिए जिन फौजों को भेजा गया था, उनमें की एक टुकड़ी का नायक था, युवक जोरावर सिंह। मोर्चे पर जाने से पूर्व वह अपनी माँ से मिलने आया।

विदा के समय माँ को असगुन हो रहे थे। बहुत यत्न करने पर भी वह अपने आँसू न रोक सकी। पुत्र को छाती से लगाकर आशिर्वचन दिया और इतना ही कहा, "बेटा! मुझ से भी बड़ी तुम्हारी भारत-माँ है, उस पर आज दुश्मनों ने

हमला किया है। कुलदेवता तुम्हें विजयी बनायेंगे, परन्तु याद रखना, अगर युद्ध में वीरगति प्राप्त हो तो दुश्मन की गोली पीठ में न लगे।"

मरुभूमि बाड़मेर के सूने इलाके में सिर्फ सात अन्य जवानों के साथ इस बहादुर रण-बाँकुरे को एक सीमा चौकी की रक्षा का भार सौंपा गया। युद्ध का अधिक जोर कश्मीर और पंजाब की तरफ था, अतः राजस्थान के इस वीरान इलाके में थोड़े से सिपाहियों को साधारण हथियार व गोलियाँ देकर तैनात किया गया था।

सितम्बर के दूसरे सप्ताह में एक दिन अचानक ही इस चौकी पर सत्तर-अस्सी पाकिस्तानी सिपाहियों ने गोला-बारूद और हथियारों से लैस होकर हमला बोल दिया। दुश्मन के बहुत से सिपाही मौत के घाट उतार दिये गये, किन्तु इस तरफ भी केवल तीन जवान शेष बचे। वे बुरी तरह घायल हो चुके थे तथा उनकी गोलियाँ भी समाप्त हो गयी थीं।

जोरावर सिंह घायल अवस्था में भी दो बार मरे हुए दुश्मनों के पास जाकर हथियार व गोला-बारूद लाने में सफल हुआ। परन्तु, तीसरी बार आगे बढ़ते ही सामने से शत्रु-दल ने उस पर एक साथ गोलियों की बौछार शुरू कर दी और वह बेहोश होकर गिर गया। कुछ समय पश्चात् दूसरी चौकी के हमारे सिपाही वहाँ पहुँच गये। उनको देखकर बुजदिल पाकिस्तानी हमलावर भाग गये। इस समय तक जोरावर सिंह

को कुछ होश आ चुका था, परन्तु उसके शरीर से इतना खून निकल गया कि वह अन्तिम साँसें ले रहा था।

मरते समय उसने अपने साथियों से कहा "गोलियाँ सीने में लगी हैं.....। अगर सम्भव हो तो मेरी लाश को मेरे गाँव भेज देना, मेरी माँ ने कहा था.............। मैं चाहता हूँ कि मेरी माँ देखे कि मैंने कुलकी परम्परा का पूर्णतया पालन किया है......।" इतना कहने के पश्चात् उसका शरीर शान्त हो गया। पास खड़े साथी सिपाहियों की आँखें गीली हो गयीं, उन्होंने देश के प्रति कुर्बान हुए उस शहीद को सैनिक सलामी दी।

❀

आत्माभिमान

विशेसर बहुत वर्षों बाद बम्बई से राजस्थान अपने गाँव आया था। साथ में पत्नी और बच्चा था। दो-तीन नौकर-दाई भी थे। बहुत बड़ा कारबार छोड़कर १०-१५ दिनों के लिए आता तो नहीं परन्तु वर्षों बाद पुत्र हुआ था। उसके मुंडन की मनौती थी, सालासर के हनुमान जी की। पत्नी बहुत बार याद दिला चुकी थी, इसलिए आना पड़ा। गाँव में उसके मामा-मामी थे जिन्होंने उसे पाल-पोस कर और पढ़ा-लिखा कर बड़ा किया था। अतएव, अपनी सूनी हवेली में न रुक कर ननिहाल में ठहरना उचित समझा।

बम्बई के अपने कारबार में उसे अभूतपूर्व सफलता मिली, इसीलिए, पिछले पन्द्रह वर्षों से रहन-सहन एकदम बदल गया था। वहाँ के बंगले में एयर कन्डीशन्ड कमरे, बेहतरीन फर्नीचर, बड़ी-बड़ी मोटरें और अन्य सब प्रकार की सुख-सुविधायें थीं।

देश में गल्ले की छोटी सी दूकान मामा की थी। गरीबी तो नहीं थी, फिर भी साधारण सा घर था। मामी चूल्हे-चौके से लेकर घर को झाड़ने-बुहारने तक के सब काम हाथ से करती

विशेसर और उसकी पत्नी को किसी प्रकार की असुविधा न हो इसलिए एक कमरे को अच्छी तरह से संवार दिया था।

निवार के दो पलंग डाल दिए थे, आगरे को

सुबह मामी ने चाय-नाश्ता दिया तो
चीनी-मिट्टी के बर्तनों की जगह काँसे के ब
मामी का बहुत अदब रखता था। कुछ
उसकी पत्नी ने तो कह ही दिया कि मामी
बर्तनों में तो हमारे यहाँ दाई-नौकर भी चा
के मन पर चोट तो लगी पर कुछ बोली नहीं

दूसरे दिन पास के शहर से विशेसर वं
आये। मामा भी वहीं बैठे थे परन्तु वे देह
इसलिए मित्रों से इनका परिचय कराना
उसी दिन वह बाजार से स्टेनलेस स्टील के बर
का एक टी सेट और बहुत से सामान खरीद लाया।
पूछने पर कहा कि उसके दोनों मित्र बड़े आदमी हैं।
काँसे के बर्तनों में भोजन कैसे करेंगे?

मामी बड़े घर की बेटी थी। उसके पीहर में स्टील
सिवाय चाँदी के बर्तन भी थे किन्तु अपने घर में हैसियत औ
आय के अनुरूप सम्हाल कर खर्च करती थी। परन्तु उस
स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। उसे बहू का तौर-तरीक
अच्छा नहीं लगा। उसकी बातचीत में धन के अभिमान की
स्पष्ट झलक दिखाई दी। फिर भी सोचा कि दो-चार दिनों की
तो बात है अतः चुपचाप सह लेना ही उचित है।

एक दिन विशेसर और उसकी पत्नी बातें कर रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि मामी पास ही रसोई में है। पत्नी कह रही थी, "अच्छा किया जो आपने तीन-चार सौ इन सारी चीजों पर खर्च कर दिए। हमारे ऊपर इनका भी तो खर्च हो जायेगा। देखती हूँ कि मामा जी की हालत अच्छी नहीं है। स्वयं तो वे शायद ही कुछ माँगते।"

थोड़े दिनों बाद ही वे सम्बई के लिए रवाना हुए। विशेसर ने औपचारिकता के तौर पर कहा कि मुझे यहाँ आकर बहुत अच्छा लगा, बचपन के दिन याद आ गये। बहुत बार आने की सोचता रहा परन्तु काम के झंझटों से आ नहीं सका। एक बार तो उसके जी में आया, मामाजी को बता दूँ कि उनके लिए स्टील के अच्छे बर्तन और टीसेट छोड़कर जा रहा हूँ परन्तु फिर सोचा कि दो-चार दिन बाद उन्हें स्वयं पता चल ही जायेगा।

ट्रेन के पहले दर्जे में सारे सामान रख दिये गये। रास्ते के लिए खाने-पीने की अनेक तरह की सामग्री मामी ने दी और विदा के समय पुनः आने का आग्रह भी किया था। परन्तु दो-तीन दिनों से उसके चेहरे पर एक संजीदगी सी थी जो विशेसर से छिपी नहीं रही।

अगले स्टेशन पर जब खाने-पीने के समान की टोकरी गयी तो देखा कि सारे बर्तन, टीसेट तथा दूसरे सामान

निवार के दो पलंग डाल दिए थे, आगरे की एक दरी बिछा दी।

सुबह मामी ने चाय-नाश्ता दिया तो विशेसर ने देखा कि चीनी-मिट्टी के बर्तनों की जगह काँसे के बरतन हैं। खैर, वह मामी का बहुत अदब रखता था। कुछ नहीं बोला, परन्तु उसकी पत्नी ने तो कह ही दिया कि मामीजी, इस प्रकार के बर्तनों में तो हमारे यहाँ दाई-नौकर भी चाय नहीं पीते। मामी के मन पर चोट तो लगी पर कुछ बोली नहीं।

दूसरे दिन पास के शहर से विशेसर के दो मित्र मिलने आये। मामा भी वहीं बैठे थे परन्तु वे देहाती वेष-भूषा में थे इसलिए मित्रों से इनका परिचय कराना उचित नहीं समझा। उसी दिन वह बाजार से स्टेनलेस स्टील के बर्तन, अच्छे किस्म का एक टी सेट और बहुत से सामान खरीद लाया। मामी के पूछने पर कहा कि उसके दोनों मित्र बड़े आदमी हैं। वे भला काँसे के बर्तनों में भोजन कैसे करेंगे?

मामी बड़े घर की बेटी थी। उसके पीहर में स्टील के सिवाय चाँदी के बर्तन भी थे किन्तु अपने घर में हैसियत और आय के अनुरूप सम्हाल कर खर्च करती थी। परन्तु उसमें स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। उसे बहू का तौर-तरीका अच्छा नहीं लगा। उसकी बातचीत में धन के अभिमान की स्पष्ट झलक दिखाई दी। फिर भी सोचा कि दो-चार दिनों की तो बात है अतः चुपचाप सह लेना ही उचित है।

एक दिन विशेसर और उसकी पत्नी वातें कर रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि मामी पास ही रसोई में है। पत्नी कह रही थी, "अच्छा किया जो आपने तीन-चार सौ इन सारी चीजों पर खर्च कर दिए। हमारे ऊपर इनका भी तो खर्च हो जायेगा। देखती हूँ कि मामा जी की हालत अच्छी नहीं है। स्वयं तो वे शायद ही कुछ माँगते।"

थोड़े दिनों वाद ही वे मम्बई के लिए रवाना हुए। विशेसर ने औपचारिकता के तौर पर कहा कि मुझे यहाँ आकर वहुत अच्छा लगा, वचपन के दिन याद आ गये। वहुत वार आने की सोचता रहा परन्तु काम के झंझटों से आ नहीं सका। एक वार तो उसके जी मे आया, मामाजी को वता दूँ कि उनके लिए स्टील के अच्छे वर्तन और टीसेट छोड़कर जा रहा हूँ परन्तु फिर सोचा कि दो-चार दिन वाद उन्हें स्वयं पता चल ही जायेगा।

ट्रेन के पहले दर्जे में सारे सामान रख दिये गये। रास्ते के लिए खाने-पीने की अनेक तरह की सामग्री मामी ने दी और विदा के समय पुनः आने का आग्रह भी किया था। परन्तु दो-तीन दिनों से उसके चेहरे पर एक संजीदगी सी थी जो विशेसर से छिपी नहीं रही।

अगले स्टेशन पर जव खाने-पीने के समान की टोकरी खोली गयी तो देखा कि सारे वर्तन, टीसेट तथा दूसरे सामान

जिन्हें वे खरीद लाये थे, सहेज कर रखे हुए हैं। साथ में, एक पुर्जा था जिस पर लिखा था कि हम आप लोगों की तरह धन-वान नहीं हैं परन्तु घर आये मेहमानों से रहने-खाने के बदले में कुछ कीमत लेनी पड़े, ऐसे गरीब भी नहीं। पति-पत्नी के चेहरे शर्म से झुक गए। वे मन ही मन अपने को छोटा बहुत छोटा अनुभव कर रहे थे।

❀

हमीद खाँ भाटी

प्रत्येक गाँव या कस्बे में कभी-कभी ऐसे व्यक्ति हो जाते हैं जिनको बहुत समय तक लोग याद किया करते हैं और उनकी भलायी की अमिट छाप जनमानस पर अंकित हो जाती है। इस प्रकार के मनुष्य केवल धनी अथवा विद्वान घरानों में ही पैदा होते हैं, ऐसी बात नहीं है।

बीकानेर के उत्तर में पूगल नाम का इलाका है। कहा जाता है, किसी समय मे यहाँ पद्मिनी स्त्रियाँ होती थीं। जो भी हो आजकल तो यहाँ वीरान, रेतीली बंजर भूमि है। पीने के पानी की कमी रहती है, इसलिए गाँव भी छोटे और दूर-दूर हैं।

यहाँ के वासिन्दों का मुख्य धन्धा गाय, भेड़ पालना है। थोड़े से ब्राह्मण और बनिये है जो लेन-देन या दुकानदारी का काम करते हैं। उनके सिवाय, यहाँ मुसलमान गूजरों की पर्याप्त संख्या है जिनके पास बेहतरीन किस्म की गायें रहती हैं। वे दूध-घी बेचकर अपना निर्वाह करते हैं। कहावत है कि 'सेवा से मेवा मिलता है' शायद, इसीलिए इनकी गायें दूध ज्यादा देती हैं और अच्छी नस्ल के बछड़े-बछड़ियाँ भी।

सन् १६५१ में इस तरफ भयंकर अकाल पड़ा था। कूँओं में पानी सूख गया। घरों में जो थोड़ा-बहुत घास और चारा

था, उससे किसी प्रकार पशुओं की जान बची। परन्तु जब दूसरे वर्ष भी वर्षा नहीं हुई और अकाल पड़ गया तो लोगों की हिम्मत टूट गयी।

कलकत्ते की मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ने दोनों वर्ष ही वहाँ राहत का काम किया था। मैं भी दूसरे वर्ष कुछ समय तक उस सिलसिले में वहाँ रहा। हम देखते की नित्य-प्रति हजारों स्त्री, पुरुष और बच्चे अपने ढोरों को लिए पैदल कोटा, बारा और मालवा की तरफ जाते रहते थे। ४-५ महीनों के बाद वापस आने की संभावना रहती, इसलिए घर का सारा समान गाय और बैलों पर लदा हुआ रहता। देश और घर छोड़कर जाने में दुःख होना स्वाभाविक है और अभावों से घिरी हुयी हालत में। बीहड़ लम्बा रास्ता और बैशाख की गर्मी, इसलिए सबके चेहरो पर दुःख और थकान की स्पष्ट छाया नजर आती थी। रास्ता काटने के लिए स्त्रियाँ भजन गाती हुई चलतीं। उन लोगों से पूछने पर प्रायः एक-सा ही उत्तर देते कि पानी, अनाज, घास और चारा मिलता नहीं है, क्या तो हम खायें और क्या इन पशुओं को खिलायें।

हमें पूगल के गाँवों के सीमान्त पर गाय-बैलों के बहुत से कंकाल और लाशें देखने को मिलीं। पता चला कि बूढ़े बैलों और गायों को उनके मालिक जंगलों में छोड़ गये। यहाँ भूख, प्यास और गर्मी से इनके प्राण निकल गये।

कई बार तो सिसकती हुई गायें भी दिखाई दीं। उनके लिए यथाशक्ति चारे-पानी की व्यवस्था की गयी, परन्तु समस्या इतनी

कठिन थी कि यह बन्दोबस्त बहुत थोडे पैमाने पर ही हो सका। यह भी पता चला कि अच्छी हालत के लोगो ने भी पानी और चारे की कमी के कारण बेकार गाय-बैलों को मरने के लिए जंगल में छोड़ दिया है।

ज्यादातर घरों में इस प्रकार की वारदातें हो चुकी थीं, इसलिए आपस की निन्दा—स्तुती की गुंजाइश भी नहीं थी।

यहीं के किसी गॉव मे एक दिन दोपहर के समय पहुँचा। धरती गर्मी से धू-धू करके तप रही थी। अंगारों के समान तपती हुई रेत की ऑधी चल रही थी। तालावों और कूँओं में पानी कभी का सूख गया था। लोग १०-१५ मील की दूरी से पानी लाकर प्यास बुझाते। अधिकाश लोग गॉव और इलाका छोड़कर चले गये थे, कुछ ब्राह्मण और बनिये बचे हुए थे। यहीं मैंने हमीद खॉ भाटी के बारे में सुना और उससे जाकर मिला।

घर कच्चा था पर साफ सुथरा और गोबर से लिपा-पुता था। हमीद खॉ की उम्र ६५-७० वर्ष के लगभग थी। शरीर का ढॉचा देखकर पता लगा कि किसी समय काफी बलिष्ठ रहा होगा। अब तो हड्डियॉ निकल आयी थीं, चेहरे पर गहरी उदासी छायी हुई थी।

दुआ सलाम के बाद मैंने पूछा "खॉ साहब; गॉव के प्रायः सारे लोग चले गये फिर आप क्यों यहॉ इस तरह की किल्लत में अकेले रह रहे हैं?"

वह कुछ देर तक तो मेरी तरफ फटी-फटी आँखों से देखता रहा फिर कहने लगा, "अल्लाह मालिक है, उसीका भरोसा है। कभी न कभी तो वर्षा होगी ही। बेटे और बहुएँ, बच्चों और धन (यहाँ गाय-बैल, ऊँट आदि को धन कहते हैं) को लेकर एक महीने पहले ही मालवा चले गये हैं। मुझे भी साथ ले जाने की बहुत जिद्द करते रहे, पर भला आप ही बताइये, अपनी धोली और भूरी, दोनों को छोड़कर कैसे जाऊँ? इन दोनों से तो एक कोस भी नहीं चला जाता।" (धौली और भूरी इसकी बूढ़ी गायें थीं जिनमें एक लंगड़ी थी और दूसरी बीमार)

"आज इनकी यह हालत हो गयी है, नहीं तो दोनों ने न जाने कितने नाहर—भेड़ियों से मुठभेड़ ली है। आस-पास में, इनके बराबर दूध भी किसी गाय के नहीं था। ३-४ सेर तो बछड़े ही पी जाते, फिर भी १०-१२ सेर प्रत्येक का हमारे लिए बच जाता। इनके पेट के २०-२५ गाय बैल और बच्छे मेरे यहाँ हैं।"

"ये दोनों भी मेरे घर की ही बेटियाँ हैं, जिस वर्ष मेरे छोटे लड़के फत्ते का जन्म हुआ था, उसके लगभग ही ये दोनों जन्मीं थीं। १५ वर्ष तक हम लोग इनका दूध पीते रहे। अब आप ही बताइये बुढ़ापे में इन्हें कहाँ निकाल दूँ? भला, कोई अपनी बीमार बहन-बेटी को घर से थोड़े ही निकाल देता है?" बातें करते हुए उसकी आवज रुँआसी हो गयी थी। देखा, धुँधली आंखों से टप-टप आँसू गिर रहे हैं।

बातें तो और भी करना चाहता था परन्तु इतने में सुनाई दिया कि बाहर के सहन में धौली और भूरी रम्भा रही हैं, शायद भूखी या प्यासी होंगी। हमीद खाँ उठकर बाहर चला गया।

गाँव के मुखिया पं० वशीधर के साथ ८-१० व्यक्ति रात में मिलने को आये। उनके कहने के अनुसार ५० वर्षों में ऐसा भयंकर अकाल नहीं पड़ा था। हमीद खाँ की बात चली तब उन्होंने कहा "वह भी जिद्दी कम नहीं, अपने लिए दो जून खाना तक नहीं जुटा पाता पर इन दोनों बुड्ढी बेकाम गायों पर जान देता है। दिन में धूप बहुत हो जाती है, इसलिए दो बजे रात में उठकर ५ मील पर के तालाब से दोनों के लिए एक मटका पानी लाता है। घरवाले जो अनाज छोड़कर गये थे, उसमें से बहुत सा बेचकर इनके लिए चारा और भूसा खरीद लाया। जब वह चुक गया तो अपना मकान ऊँचे ब्याज पर गिरवी रखकर और चारा लिया है।"

गर्मीके मौसममें भी इस तरफ रातें ठंढी हो जाती है, परंतु मुझे नींद नहीं आ रही थी। सोच रहा था, क्या वास्तव में ही हमीद खाँ मूर्ख और जिद्दी है? बातचीत से तो ऐसा नहीं लग रहा था। हाँ एक बात समझ में नहीं आयी, वह तो मुसलमान है, जिसके लिए गाय 'माता' नहीं है, फिर क्यों इन दो बेकाम गायों के पीछे नाना प्रकार के कष्ट सहकर,

तिल-तिल करके स्वयं मृत्यु की तरफ अग्रसर हो रहा है ? अपना एक-मात्र मकान इनके चारे-पाले के लिए गिरवी रख दिया है। थोड़े दिनों बाद मूल और ब्याज बढ़कर इतना होगा कि चुकाना असम्भव हो जायगा। जब उसके बाल-बच्चे मालवा से थके-हारे वापस आयेंगे तो उन्हें शायद अपना यह पैतृक घर छोड़ देना पड़ेगा।

जाने से पहले एक बार फिर हमीद खाँ से मिलने की इच्छा हुई। बहुत सुबह वहाँ जाकर देखा कि वह धौली और भूरी के शरीर पर तन्मय होकर हाथ फेर रहा है और वे दोनों बड़ी ही करुण दृष्टि से उसकी तरफ देख रही हैं; शायद कह रही होंगी कि बाबा, गाँव छोड़कर सब चले गये, फिर तुम क्यों इस प्रकार भूखे-प्यासे रहकर मृत्यु के मुख में जा रहे हो ? हमें अपने भाग्य पर छोड़कर बच्चों के पास चले जाओ।

सोसाइटी की तरफ से थोड़ी-बहुत व्यवस्था कर मन-ही-मन उस अपढ़ मुसलमान को प्रणाम करके भारी मन से उस गाँव से रवाना हुआ। २२ वर्ष बाद भी हमीद खाँ का वह गमगीन चेहरा आज तक भुला नहीं पाया हूँ।

लक्ष्मी दरोगी

श्रीमती स्टो की विश्व प्रसिद्ध कृति 'अंकल टाम्स् केबिन' का हिन्दी अनुवाद 'टाम काका की कुटिया' बहुल वर्षों पहले पढ़ा था, उस पुस्तक में अमेरिका के हब्शी गुलामों का कुछ ऐसा हृदय द्रावक वर्णन है कि ४० वर्ष बाद भी वह मेरे मानस-पटल पर अंकित है।

बहुल वर्षों बाद यदि स्पेन, पुर्तगाल, ब्रिटेन और डचों द्वारा हब्शी गुलामों और दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ किये गये अत्याचारों के वर्णन नहीं पढ़ लेता तो ऐसा लगता कि शायद मिसेज स्टो ने अतिशयोक्ति से काम लिया है।

वैसे मौर्य काल में हमारे यहाँ भी दासों के बारे में वर्णन मिलते हैं किन्तु भारत में यह प्रथा ज्यादा दिन नहीं रही और यहाँ के गुलामों के साथ व्यवहार भी यूरोप और अमेरिका के सदृश नृशंसतापूर्ण नहीं था। वाल्मीकि रामायण में राजा जनक द्वारा सीताजी के दहेज में दास-दासियों का दिया जाना लिखा है परन्तु ये सब गुलामों की कोटि में थे या नहीं, यह विवादास्पद है।

मुगल बादशाहों द्वारा आये दिन अपमानित और लाछित राजपूत राजाओं को अपना आक्रोश निकालने और ऐय्याशी के लिये कोई साधन चाहिये था, इसी दौर में सत्रहवीं शताब्दी

में दूसरी अनेक बुराइयों के साथ-साथ राजस्थान के राज-घरानों में दारोगा या गोला प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में राजाओं के अलावा छोटे छोटे सरदारों के यहाँ भी दस-बीस गोले-गोलियाँ रहते थे। इनके पुरुषों का काम होता था, ठाकुर या कंवर साहब की चाकरी करना और स्त्रियों का ठकुरानी या कुंवरानी का साज शृंगार करने के सिवाय पलंग-सेवा का।

बहुत से पाठक जो राजस्थानी सामन्तों की प्रथाओं से अनभिज्ञ हैं, पलंग-सेवा का अर्थ नहीं समझ पायेंगे। राजा या ठाकुर जब रानी या कृपापात्री रखैल के साथ काम-क्रीड़ा में रहते तो उस समय पलंग के इर्द-गिर्द २-४ गोलियाँ शराब के गिलास, तौलिये, रूमाल अथवा केसरिया दूध आदि पौष्टिक पदार्थ लेकर खड़ी रहती थीं। कभी-कभी, मन हो जाने पर रानी को अलग हटाकर इस गोलियों में से किसी एक या दो को पलंग पर बुला लिया जाता था।

गोले और गोली एक प्रकार से रावले के गुलाम होते थे। इनकी सन्तानों पर राजाओं और ठाकुरों का पूर्ण अधिकार था। अधिकांश तो उनकी अपनी नाजायज सन्तति ही होती थीं।

कुँवरानी के विवाह में अपनी हैसियत के मुताबिक ५ से लेकर १०० तक अविवाहित गोलियों को दहेज में दिया जाता था।

इनका नाम-मात्र का विवाह वर पक्ष के गोलों से कर दिया जाता परन्तु इन सबको रहना पड़ता कुँवर साहब या उनके कृपापात्र मुसाहिबों की रखैलों के रूप में।

आकृति विशेषज्ञों का कहना है कि वर्ण-संकर सन्तानें ज्यादा सुन्दर और कुशाग्रबुद्धि की होती हैं। शायद, इसीलिए ये गोले और गोलियाँ राजकुमार और राजकुमारियों से अधिक आकर्षक होते थे। इनमें से बहुत से रावले की सुविधाओं के कारण अच्छी शिक्षा भी प्राप्त कर लेते।

मेरे राजनैतिक क्षेत्र के एक जागीरदार के गाँव में एक दारोगा कांग्रेस कार्यकर्ता है, बहुत ही परिश्रमी और सूझ-बूझ वाला। एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापक है। मासिक वेतन १५०) रुपया है। हिन्दी साहित्य में उसकी रुचि है। अध्ययन भी पर्याप्त है, इसलिये समय निकाल कर आपस में हम कुछ साहित्य-चर्चा कर लेते थे।

उन दिनों शक्ल-सूरत से वह किसी आंग्ल राजकुमार सा लगता था। शिक्षा साधारण सी थी परन्तु स्मृति और प्रतिभा इतनी थी कि अगर मौका मिलता तो शायद बड़ा विद्वान होता।

पहली बार देखने पर ही उसके प्रति मेरा आकर्षित हो जाना स्वाभाविक था। जान-पहचान बढ़ जाने पर एक दिन उसने मुझे अपने घर भोजन पर बुलाया। दही छाछ की राबड़ी, शुद्ध घी और शक्कर के साथ बाजरे की रोटी और

कैर-सांगर का साग, आज भी वह सुस्वादु भोजन याद आता है।

छोटे से सुसंकृत परिवार में माँ, पति-पत्नी और एक बच्चा था। वैसे पत्नी भी सुन्दरी थी परन्तु माँ तो उस प्रौढ़ अवस्था में भी अप्सरा सी लगती थी। उसकी बातचीत और तौर-तरीकों में राज-घराने की तहजीब स्पष्ट थी।

पता नहीं क्यों, इन लोगों के प्रति सहानुभूति बढ़ती गयी। जब भी गाँव में जाता, इनसे मिलता। शायद ही कभी उन्होंने अपने किसी कार्य के लिये मुझसे कहा होगा। खेती और स्कूल की शिक्षकी से जो आय होती, उसी में अपना खर्च चला लेते।

असेम्बली के चुनाव में उस क्षेत्र से मेरा कांग्रेस-मनोनीत साथी बुरी तरह हार गया और वहाँ का जागीरदार जीत गया। वैसी बहुत प्रकार की गन्दी बातें उस ठाकुर के बारे में प्रचलित थीं परन्तु न जाने क्यों लोगों ने उसे इतने अधिक मत दिये।

वहाँ इस बात की आम चर्चा थी कि मेरे मित्र की माँ उस ठाकुर के पिता गढ़ में थी। वह पद-दायत तो नहीं हो पायी परन्तु कुछ वर्षों तक बड़े ठाकुर की उसपर विशेष कृपा रही थी। ठाकुर की और मेरे मित्र की शकल सूरत इतनी मिलती-जुलती थी कि वहाँ के लोगों में धारणा थी कि वह वर्तमान ठाकुर के पिता का औरस पुत्र है।

चुनाव के नतीजे के बाद एक दिन मैं उनके घर गया हुआ था। ठाकुर के बारे में बातें हो रही थीं। मैंने देखा कि वृद्धा

की आँखें गीली हो गयी हैं। शायद, उसे बीते जमाने की बातें याद आ गयीं।

वैसे, वह मितभाषिणी थी परन्तु उस दिन शायद बहुत मुखर हो गयी, सकोच भी नहीं रहा। उसने जो आत्मकथा सुनाई उसका संक्षेप यह है—

''मेरी माँ एक बड़े जागीरदार की उप पत्नी थी। मैं अपनी मां की इकलौती संतान थी। ठाकुर मुझे अपनी पुत्री की तरह ही प्यार करता था। चूँकि मुझ पर बाई सा (कुंवरानी) का बहुत स्नेह था इसलिये माँ के बहुत आरजू-मिन्नत के बावजूद मुझे उनके साथ दहेज में दे दिया गया।"

"इस ठिकाने में आकर मेरे दुःखों का पार नहीं रहा। विवाह तो प्रथा के अनुसार एक दारोगा से कर दिया गया परन्तु रहती थी, मैं कुँवर साहब की सेवा में ही। कभी-कभी वे मुझे कुँवरानी जी के सामने ही पलंग पर बुला लेते थे।"

"दो वर्ष बाद रामू का जन्म हुआ। कुँवर साहब इसको बहुत प्यार करते थे। परन्तु बाई सा हम दोनों से बहुत नाराज रहने लगी। रात दिन जली-कटी सुनाती रहती। एक दो बार तो बच्चे को जहर देने का भी प्रयास किया गया।"

''थोड़े दिनों बाद ही कुँवर साहब की कृपा एक दूसरी दरोगी लड़की पर हो गयी और मुझे अपने घर भेज दिया गया। ठाकुर साहब के स्वर्गवासी होने के बाद कुँवर साहब ठाकुर बने। फिर तो उनके ऐशो-इशरत की कोई सीमा नहीं रही। एक दिन उन्होंने मुझे पलंग सेवा के लिये बुलाया। उस

कैर-सांगर का साग, आज भी वह सुस्वादु भोजन याद आता है।

छोटे से सुसंकृत परिवार में माँ, पति-पत्नी और एक बच्चा था। वैसे पत्नी भी सुन्दरी थी परन्तु माँ तो उस प्रौढ़ अवस्था में भी अप्सरा सी लगती थी। उसकी बातचीत और तौर-तरीकों में राज-घराने की तहजीब स्पष्ट थी।

पता नहीं क्यों, इन लोगों के प्रति सहानुभूति बढ़ती गयी। जब भी गाँव में जाता, इनसे मिलता। शायद ही कभी उन्होंने अपने किसी कार्य के लिये मुझसे कहा होगा। खेती और स्कूल की शिक्षकी से जो आय होती, उसी में अपना खर्च चला लेते।

असेम्बली के चुनाव में उस क्षेत्र से मेरा कांग्रेस-मनोनीत साथी बुरी तरह हार गया और वहाँ का जागीरदार जीत गया। वैसी बहुत प्रकार की गन्दी बातें उस ठाकुर के बारे में प्रचलित थीं परन्तु न जाने क्यों लोगों ने उसे इतने अधिक मत दिये।

वहाँ इस बात की आम चर्चा थी कि मेरे मित्र की माँ उस ठाकुर के पिता गढ़ में थी। वह पद-दायत तो नहीं हो पायी परन्तु कुछ वर्षों तक बड़े ठाकुर की उसपर विशेष कृपा रही थी। ठाकुर की और मेरे मित्र की शकल सूरत इतनी मिलती-जुलती थी कि वहाँ के लोगों में धारणा थी कि वह वर्तमान ठाकुर के पिता का औरस पुत्र है।

चुनाव के नतीजे के बाद एक दिन मैं उनके घर गया हुआ था। ठाकुर के बारे में बातें हो रही थीं। मैंने देखा कि वृद्धा

की आँखें गीली हो गयी हैं। शायद, उसे बीते जमाने की बातें याद आ गयीं।

वैसे, वह मितभाषिणी थी परन्तु उस दिन शायद बहुत मुखर हो गयी, सकोच भी नहीं रहा। उसने जो आत्मकथा सुनाई उसका संक्षेप यह है—

"मेरी माँ एक बड़े जागीरदार की उप पत्नी थी। मैं अपनी मां की इकलौती संतान थी। ठाकुर मुझे अपनी पुत्री की तरह ही प्यार करता था। चूँकि मुझ पर बाई सा (कुंवरानी) का बहुत स्नेह था इसलिये माँ के बहुत आरजू-मिन्नत के बावजूद मुझे उनके साथ दहेज में दे दिया गया।"

"इस ठिकाने में आकर मेरे दुःखों का पार नहीं रहा। विवाह तो प्रथा के अनुसार एक दारोगा से कर दिया गया परन्तु रहती थी, मैं कुँवर साहब की सेवा में ही। कभी-कभी वे मुझे कुँवरानी जी के सामने ही पलंग पर बुला लेते थे।"

"दो वर्ष बाद रामू का जन्म हुआ। कुँवर साहब इसको बहुत प्यार करते थे। परन्तु बाई सा हम दोनों से बहुत नाराज रहने लगी। रात दिन जली-कटी सुनाती रहती। एक दो बार तो बच्चे को जहर देने का भी प्रयास किया गया।"

"थोड़े दिनों बाद ही कुँवर साहब की कृपा एक दूसरी दरोगी लड़की पर हो गयी और मुझे अपने घर भेज दिया गया। ठाकुर साहब के स्वर्गवासी होने के बाद कुँवर साहब ठाकुर बने। फिर तो उनके ऐशो-इशरत की कोई सीमा नहीं रही। एक दिन उन्होंने मुझे पलंग सेवा के लिये बुलाया। उस

दिन मेरे पति बीमार थे उन्हें छोड़कर मैं नहीं जा सकी। दूसरे दिन रावले से तीन चार व्यक्ति आये और मेरे पति को और मुझे पकड़ कर गढ़ में ले गये। उस दिन ठाकुर ने अपने मुसाहिबों द्वारा बारी.बारी से मेरे पति के सामने ही मुझ पर जो अत्याचार कराया, वह वर्णन योग्य नहीं है। मेरे बीमार पति ने कुछ रोक-थाम का प्रयत्न किया तो हत्यारों ने तत्काल उसको गला घोंटकर मार दिया।"

कुछ क्षण चुप रहकर उसने फिर कहा—

"विक्षिप्त और आधी बेहोशी की हालत में रोती-बिलखती मैं अपने घर आ गयी। इसके थोड़े दिन बाद ही वर्तमान ठाकुर का जन्म हुआ। इनकी और मेरे रामू की शकल इतनी मिलती जुलती थी कि ठाकुर साहब को बाई सा पर वहम हो गया और उनमें आपस में अनबन हो गयी। कुछ समय बाद बाई सा ने ठाकुर साहब को जहर देकर मरवा दिया। राज-घरानों में इस प्रकार की घटनायें प्रायः ही होती रहती थीं।"

"बाई सा अपने एक कृपापात्र मुसाहिब के जरिये ठिकाने का कार्य सम्भालने लगी। पता नहीं क्यों, पुनः उनका मेरे प्रति स्नेह हो गया और मुझे रावले में बुला लिया गया। रामू कुँवर साहब के साथ-साथ पढ़ने लगा। इन बातों को भी २५ वर्ष हो गए। बाई सा का देहान्त होने के बाद सारे अधिकार वर्तमान ठाकुर साहब के पास आ गये थे। मेरा रामू कांग्रेस के साथ है इसलिए वे हमलोगों से नाराज है।" मैंने देखा कि उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे हैं। उसने मुँह फेर लिया और शीघ्रता से घर के भीतर चली गयी।

शिवजी भैया

कुछ इस प्रकार के व्यक्ति होते हैं, जिनसे मिलते जुलते लोग हर काल, समाज और देश में मिल जाते हैं। मैं शरत् बाबू का उपन्यास 'विराज बहू' पढ़ रहा था। उसमें नीलाम्बर चक्रवर्ती के प्रसंग में मुझे राजस्थान के शिवजी-रामजी की याद आ गयी। अगर यह पुस्तक उस अंचल के किसी लेखक द्वारा लिखी गयी होती तो जानकार लोगों को नीलाम्बर के चरित्र में शिवजी-रामजी का भ्रम होता।

इस कथा के नायक का जन्म आज से सौ वर्ष पहले शेखावाटी के किसी कस्बे में हुआ था। पिता का देहान्त बहुत पहले हो गया था। साधारण सी सम्पन्न गृहस्थी थी। घर में माता और दो भाई थे। माता यद्यपि पढ़ी-लिखी तो नहीं थी, परन्तु बहुत ही चतुर और बुद्धिमती थी। पति के मरने के बाद दोनों पुत्रों को अच्छी शिक्षा दी। घर-गृहस्थी को भी सम्हाल कर रक्खा। दोनों भाइयों में आपस में इतना प्रेम था कि गाँव के

लोग इनको राम-लक्ष्मण की जोड़ी की उपमा देते। उस समय की रीति के अनुसार दोनों के विवाह बचपन में ही हो गये थे। प्रायः जमींदारी तो समाप्त हो गयी परन्तु पहले की संचित धन-दौलत बहुत है, ठाकुर सक्रिय राजनीति में भाग लेने लगा है।

एक दिन, बड़े भाई रामकिशन ने बम्बई जाकर काम करने का विचार माता के सामने रक्खा। यद्यपि उसकी आयु केवल बीस वर्ष की ही थी, कभी विदेश जाने का अवसर भी नहीं मिला था, यात्राएँ बीहड़ और कष्टमय थीं, परन्तु पिता का साया सिर पर था नहीं, जो कुछ पास में था, वह पिछले वर्षों में खर्च हो गया था, इसलिए भारी मन से माता ने आज्ञा दे दी।

छोटे भाई शिवजीराम और पत्नी को वृद्धा माता की सेवा के लिए घर पर छोड़कर वह बम्बई के लिए विदा हो गया। शिवजीराम के जिम्मे कुछ काम तो था नही, इसलिए भाई के छोटे बच्चे को खेलाता रहता और गाँव में कभी साधु-सन्त आते तो उनकी सेवा में सबसे आगे पहुँच जाता।

तीन मील दूर जंगल में एक कुआँ था, सुबह जल्दी उठकर नित्यकर्म के लिए. वहाँ चला जाता। साथ में चार-पाँच सेर अनाज ले जाता जो पक्षियों को चुगा देता। वहाँ से आकर अपनी दो गायों को दाना-पानी खिलाता, उनके ठाण की

सफाई आदि का सब काम करता। फिर स्नान करके नियम से रामजी के मन्दिर जाता, वे उनके कुल-देवता थे।

गाँव में रहकर वैद्यक और नाड़ी परीक्षा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसलिए बचे हुए समय में गरीब रोगियों की चिकित्सा करता और बहुतों को दवा के सिवाय पथ्य भी अपने पास से दे देता था।

इन सबके सिवाय उसने एक नियम यह भी बना रखा था कि गाँव में किसी की भी मृत्यु हो, वहाँ जरूर पहुँच जाता और चलेवे के सारे कामों में पूरे मनोयोग से हिस्सा लेता। चाहे वैसाख जेठ की गर्मी हो या पूस-माघ की सर्दी की रात, ऐसा कभी नहीं हुआ कि शिवजीराम ऐसे मौके पर नहीं पहुँचा हो।

उन दिनों छुआछूत का बहुत विचार था परन्तु उसकी मान्यता थी कि मृत्यु के बाद भगवान की ज्योत में जोत मिल जाती है। मृतक की कोई जाति नहीं होती। इसलिए गरीब हरिजनों के यहाँ भी ऐसे मौकों पर पहुँच जाता। अपने गाँव और आस-पास के देहात में सब लोग उसको शिवजी भैया कहकर पुकारते थे।

माता धार्मिक भावना की थी और उसकी प्रेरणा से ही शिवजीराम की इन कामों में रुचि हुई थी। परन्तु पत्नी और भौजाई बराबर नाराज रहतीं। वे कहतीं—"सब ऊलजलूल काम तुम्हारे जिम्मे ही पड़े हैं।"

कभी-कभी गाँव के संडे-मुसंडे भी बीमारी या कष्टों का बहाना करके ठग ले जाते। शिवजीराम के पास आकर शायद ही कोई निराश लौटा हो। बड़ा भाई तीन-चार वर्षों में देश आता और दो-तीन महीने रहकर फिर बम्बई चला जाता। माता का देहान्त होने के बाद पत्नी और पुत्र को भी वह अपने साथ बम्बई ले गया। गाँव में अब शिवजीराम अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रह गये।

सन् १६०१ में बम्बई में जो महामारी हुई, उसमें रामकिशन की मृत्यु हो गयी। उसकी विधवा पत्नी और चौदह वर्ष का पुत्र रामदयाल दोनों रोते-बिलखते अपने गाँव चाचा के पास आ गये। अब सारा भार उस पर पड़ा। बम्बई न जाकर अपने कस्बे में ही गल्ले की दूकान कर ली, भतीजे को भी साथ ले जाकर काम सिखाने लगा।

दुकानदारी में जो सूझ-बूझ और चालाकी चाहिए, उसका शिवजीराम में सर्वथा अभाव था। लोग उधार ले जाते, रुपया पैसा देते नहीं। वे जानते थे, शिवजीराम कभी कचहरी जाकर अदायगी के लिए नालिश नहीं करेगा। आखिर, दो-तीन वर्ष बाद नुकसान देकर दूकान उठानी पड़ी। इसी बीच भतीजा रामदयाल अपने पिता की तरह ही काफी होशियार हो गया और बम्बई चला गया।

रामदयाल के पिता का वहाँ के व्यापारियों से अच्छा सम्पर्क था और उसकी ईमानदारी की साख भी थी। बम्बई जाकर उसने काटन एक्सचेंज में अपने पिता के नाम के पुराने फर्म को फिर से चालू कर लिया। संयोग ऐसा बना कि थोड़े वर्षों में ही काम जम गया और उसके पास लाखों रुपये हो गये।

कई बार चाचा को बम्बई आने के लिए रामदयाल ने लिखा परन्तु गाँव में इतने तरह के काम रहते कि शिवजीराम बम्बई न जा सका। द्वारका-धाम की यात्रा के समय उसको सपरिवार बम्बई ठहरने का मौका मिला। वहाँ अपने भतीजे का वैभव और सुनाम देखकर प्रसन्नता हुई। रामदयाल ने और उसकी पत्नीने उन्हें सदा के लिए वहीं रहनेका आग्रह किया परन्तु उसका मन इस व्यस्त महानगरी में नहीं लगा और थोड़े दिनों बाद ही वापस राजस्थान आ गया। अब शिवजी भैया की जगह सेठ शिवजीराम हो गया। दान-धर्म की मात्रा बढ़ गयी, परन्तु प्रौढ़ हो गया था, इसलिए पहले जितनी भाग दौड़ नहीं कर पाता था।

इतने गुणों के बावजूद उसमें एक कमी रही कि घर की समस्याओं की तरफ कभी ध्यान नहीं दिया। दोनों लड़कियों का विवाह तो अच्छे घरों में हो गया परन्तु एक मात्र लड़का लिख-पढ़ नहीं पाया।

कुछ ऐसे लोग भी थे जिनको शिवजीराम के यश और मान-बड़ाई से ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने बम्बई में रामदयाल के कान भरने शुरू किये कि इतनी मेहनत करके कमाते तो तुम हो और वाह-वाही तथा सेठाई सब तुम्हारे चाचाजी की होती है। उसकी स्त्री तो पहले से ही भरी बैठी थी पर पति के डर से चुप थी। उसके बहुत कहने सुनने पर बहुत वर्षों बाद राम-दयाल स्त्री-बच्चों सहित बम्बई से अपने गाँव आया। वास्तव में ही जो बात लोगों ने कही थी, वह सही निकली। चारों तरफ सेठ शिवजीराम की प्रशंसा हो रही थी। वे जिस तरफ निकल जाते, लोग खड़े होकर जुहार, राम-राम करते। सुबह शाम सैकड़ों अभ्यागतों के लिए अन्न-क्षेत्र चालू था। सारे दिन जरूरत-मंदों की भीड़ लगी रहती थी। मौका देखकर राम-दयाल ने चाचा से बँटवारे के लिए कहा। एक बार तो शिवजी-राम को बहुत ही कष्ट हुआ पर तुरन्त ही सम्हल कर बोले, "बेटा, कमाया हुआ तो सब तुम्हारा है। मैंने तो उम्र भर केवल खर्च ही किया, इसलिए जैसे चाहो कर लो, मुझे इसमें क्या कहना है।"

एक कागज पर सम्पत्ति का ब्यौरा लिखा गया। बड़ी हवेली और बम्बई का फर्म रामदयाल ने अपने लिए रखना चाहा। नकद रुपये का दो बराबर का हिस्सा हुआ। अपना मकान छोड़कर जाने में बहुत क्लेश होता है परन्तु शिवजीराम के चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं आयी। उसने कहा, "तुम्हारी

मान—बड़ाई और इज्जत के लिए बड़ी हवेली में रहना सर्वथा उचित भी है। मैं कल ही छोटी हवेली में चला जाऊँगा। अब रही नकद रुपये की बात सो मुझे तो अन्दाज ही नहीं था कि अपने पास इतना सारा रुपया है! मैं भला इनको कहाँ सम्हाल पाऊँगा? देवदत्त जैसा है, तुम जानते ही हो, इन रुपयों को तुम अपने पास ही रहने दो। खर्च के लिए जितनी जरूरत होगी, मँगवा लिया करूँगा।" अन्तिम वाक्य कहते हुए उसकी आँखें जरूर गीली हो गयी थीं। रामदयाल सोचने लगा कि न तो चाचा जी ने हिसाब की जाँच की, न हवेली छोड़ने में आपत्ति की और न बम्बई के फर्म की साख (गुडविल) के बदले में ही कुछ चाहा; बल्कि सारे रुपये भी मेरे पास ही छोड़ रहे हैं।

उसे अपने आप पर ग्लानि और लज्जा हो आयी। रोता हुआ चाचा के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगने लगा। कहने लगा, "लोगों के बहकावे में आकर मैंने यह नासमझी की। मुझे किसी प्रकार का भी बँटवारा नही करना है। बड़े भाग्य से आप सरीखे चाचा मिलते हैं। पिताजी तो बचपन में ही छोड़कर चले गये। अगर आप पढ़ा-लिखाकर मुझे योग्य नहीं बनाते तो भला आज हमारा यह वैभव थोड़े ही हो पाता।"

कुछ दिनों बाद बम्बई जाते समय अपने छोटे भाई देवदत्त,

को भी साथ ले गया। वहाँ जाकर उसकी पुरानी आदतें छूट गयीं और वह भी काम में लग गया।

मैंने जब शिवजीरामजी को देखा था उस समय वे अस्सी वर्ष के वृद्ध थे। संयम और त्याग का जीवन रहा, इसलिए उस समय भी स्वास्थ्य अच्छा था। दान धर्म के तौर-तरीके बदल गये थे। सदाव्रत और ब्राह्मण-भोजन के साथ-साथ, उनके द्वारा स्थापित स्कूल, अस्पताल और जच्चाघर भी जनता की सेवा कर रहे थे।

*

धर्म की समाधि

दिल्ली से ७० मील उत्तर में सरधना नाम का एक छोटा सा कस्वा है। इस समय इसकी दशा खराब है। टूटे हुये पुराने महल, दो-चार गिरजे, थोड़े से जैन मन्दिर एवं कुछ पुराने जीर्ण-शीर्ण मकानात हैं। इन सबके सिवाय एक छोटा सा बाजार है जिसमें स्थानीय दूकानदारों के अलावा बीस-तीस शरणार्थियों की दूकानें हैं। परन्तु आज से लगभग २०० वर्ष पहले इस कस्वे का अपना महत्व था। देश-विदेश के अनेक प्रकार के सामानों से यहाँ की दूकानें भरी रहतीं। पंजाब से दिल्ली के रास्ते में यह कस्बा पड़ता है इसलिये यहाँ प्रायः बड़े-बड़े सरदार, फौजी अफसर व्यापारी एवं अन्य लोग आते-जाते रहते थे। यहाँ का शासन बेगम समरू नाम की एक दुर्धर्ष, बहादुर परन्तु कामुक एवं सुन्दरी विधवा के हाथ में था।

बेगम समरू की भी अपनी एक कहानी है। ऐसी औरतें सौ-पचास वर्षों में दो-चार ही पैदा होती है। इस सन्दर्भ में इंगलैण्ड की महारानी एलिजाबेथ, आस्ट्रिया की मैरिया थेरेस्सा और हमारे यहाँ की रजिया बेगम के नाम लिये जा सकते है। बचपन में सकूर खाँ नाम के एक पठान सरदार ने इसे गुलामों के सौदागरों से खरीदा था। सकूर खाँ के मरने के बाद उसके लड़के वशीर खाँ के हरम में वह पांच वर्ष तक रही। एक दिन मेरठ के नौचन्दी के मेले में प्रसिद्ध फ्रांसीसी जनरल समरू ने उसे देख

लिया और उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर १० हजार सोने की अशर्फियों में मुन्नी उर्फ दिलाराम को वशीर खाँ से खरीद लिया। वहाँ आकर मुस्लिम मजहब छोड़कर वह ईसाई हो गयी और नाम भी दिलराम से बदल कर हो गया जुवान उर्फ समरू बेगम।

दोनों पति-पत्नी बहादुर और सूझ-बूझ वाले थे। एक अच्छी सुशिक्षित फौज इनके पास थी, जिसको किराये पर भेजते रहते। उन दिनों छोटी-छोटी लड़ाइयाँ होती रहती थी जिनसे उन्हें अच्छी आय हो जाती। सेना की शिक्षा एवं संचालन का कार्य दोनों स्वयं करते। रुहेलों से दिल्ली के बादशाह शाह आलम को बचाने के कारण इन्हें शाही खिलअत् और सरधना का उपजाऊ परगना इनाम में मिला। थोड़े वर्षों बाद ही संदेहात्मक ढंग से बूढ़े नवाब का देहान्त हो गया और तब सत्ता रह गई एक मात्र विधवा बेगम के हाथ में। उसके बाद इसने अपनी फौजी ताकत और भी बढ़ायी। विदेशी विशेषज्ञों द्वारा उन्हें नये ढंग से सुसज्जित किया। बड़ी-बड़ी तोपें, बेहतरीन बन्दूकें और तेज दौड़नेवाले घोड़े दूर-दूर से मँगाये गये। टामस और लवसुल नाम के दो बहादुर विदेशी सेनापतियों के संरक्षण में इसकी फौजें थीं, दोनों उसके प्रेमी भी थे। उस समय के जागीरदार लड़ाइयाँ न होने पर डाके डलवाते थे, परन्तु बेगम ऐसे कार्यों को बुरा समझती। यहाँ तक कि उसके परगने में

डाकुओं की लूट-मार करने की हिम्मत नहीं हुई। वह अपराधियों को बहुत कड़ा दण्ड देती। किसी की आँखें निकलवा लेती तो किसी को जमीन में गड़वा कर उस पर कुत्ते छूड़वा देती थी। उन दिनों लोगों में आतंक उत्पन्न करने के लिये ये सभी बातें जरूरी भी थीं।

पिछले वर्ष दो मित्रों के साथ दिल्ली से हरिद्वार जाते सरधना ठहरा था।

वहाँ अब भी बीस-पचास घर अग्रवाल जैनियों के हैं, परन्तु उस समय तो वहाँ उनकी प्रधानता थी। वे बेगम के खजांची, अर्थ मन्त्री एवं गृह-प्रबन्धक जैसे ऊँचे ओहदों पर थे।

ज्ञानचन्द नाम के एक वैश्य की वहाँ मोदीखाने की बड़ी दूकान थी। यहाँ से बेगम की फौजों के लिये रसद आती थी। ज्ञानचन्द दूकान का काम संभालता और उसका एक मात्र पुत्र रतनचन्द रसद का आर्डर लाने के लिये किले में जाता था। रतनचन्द की आयु लगभग २९-३० वर्ष की थी। घर में बहुत सी गाय-भैंसे थीं, खाने-पीने के लिये कमी नहीं थी। बचपन से ही कसरत-कुश्ती करता रहा इसलिए चेहरे पर सुन्दरता के साथ पौरुष की आभा भी यथेष्ट थी। एक दिन किले में वह गया हुआ था कि बेगम की नजर उस पर पड़ी। इसके बाद महल से बुलावे आने शुरू हो गये। बेगम के कहने पर गल्ले के सिवाय

उसने एक कपड़े की दूकान भी कर ली। दोनों दूकानें बहुत अच्छी चलने लगीं।

पौष-माघ की एक रात्रि में रतनचन्द को बेगम साहिबा के यहाँ से बुलावा आया। खिद्मतगार उसे ख्वाबगाह में छोड़ कर बेगम को खबर देने चली गई। रतनचन्द पहली बार ही महल के उस हिस्से में आया था। बिल्लौरी शीशे के झाड़-फानूसों में हजारों मोम बत्तियाँ रोशन थीं, हिनेकी खुशबू चारों तरफ फैल रही थी। नंगी औरतों की आदमकद बड़ी-बड़ी तस्वीरें विभिन्न कामोत्तेजक मुद्राओं में दीवालों पर लगी हुई थीं। बीच में सोने-चाँदी का एक बहुत बड़ा पलंग था जिसके पास ही तरह-तरह की शराब की सुराहियाँ और खाली प्यालियाँ रक्खी थीं। हीरे-पन्ने से जड़ा हुआ मोतियों की झालर का एक हुक्का भी रक्खा हुआ था। थोड़ी देर बाद बेगम आईं, वैसे उसके साथ चार पाँच दासियां हमेशा रहती थीं पर आज वह अकेली थी। कपड़े भी कुछ अजीब ढंग से पहने हुये थे। रतनचन्द ने बाअदब उठकर सलाम अदा किया और कहा कि हुजूर ने इस वक्त गुलाम को किस लिये याद फर्माया।

जान-बूझ कर कमरे में केवल एक पलंग रक्खा गया था, बेगम ने रतनचन्द से खड़े न रहकर अपने पास बैठने को कहा। जिसके भय और प्रताप से लोग कांपते रहते, वह बेगम आज उस साधारण से व्यक्ति से जिस प्रकार पेश आ रही थी, वह

बात रतनचन्द थोड़ी ही देर में समझ गया। बेगम ने अपने हाथों से फ्रांस की बेहतरीन शराब डालकर एक जाम दिया। परन्तु उसने डरते हुए पीने से ना कर दी। इसके बाद जब इशारे ज्यादा साफ होने लगे तब उसने हाथ जोड़कर कहा कि आप हमारी पूज्या हैं; अन्नदाता हैं, आयु में और पद में भी बड़ी हैं। शायद आज आप की तबियत परेशान है, इसलिये मैं कल हाजिर होऊँगा। फन कुचली विषैली नागिन की सी फुफकार से बेगम ने डपटकर कहा कि नादान छोकरे या तो तुम अव्वल दर्जे के बेवकूफ हो या हिजड़े; जिसकी नजरें इनायत के लिये बड़े बड़े सरदार और जमींदार तरसते रहते हैं, वह मुल्के-जमानिया बेगम समरू तुम्हारी मोहब्बत माँगती है और तुम हो कि फिजूल बकवास करते जा रहे हो? खैर, मैं तुम्हें सात दिन की मोहलत देती हूँ, इस बीच में मेरी मुहब्बत के साथ लाखों रुपयों की तिजारत या मौत, दोनों में से एक को तुम्हें चुनना है। खबरदार, अगर एक लफ्ज भी इस के बारे में बाहर निकला तो तुम्हें जंगली कुत्तों से नुचवा दिया जाएगा।

दूसरे दिन से रतनचन्द उदास रहने लगा। पिता-माता और पत्नी ने बहुत कुछ पूछ-ताछ की परन्तु बेगम के डर से कुछ भी न कह सका। आधी रात में पत्नी के अनुनय-विनय पर उसने सारी बातें खोल कर बता दी।

भारतीय पतिव्रता स्त्री थी, बेगम की क्रूरता से परिचित भी। पति को बहुत प्रकार समझाने-बुझाने लगी कि जान है तो जहान है, आप बेगम की बात मान लीजिये। अगर आपको कुछ हो गया तो फिर माता-पिता, मेरा और इन बच्चों का क्या होगा? पत्नी की बातें सुनकर रतनचन्द उहापोह में आ गया परन्तु दूसरे दिन वह एक निश्चय पर पहुँच गया और पत्नी से कहा कि भगवान को साक्षी देकर सौगन्ध ली थी कि मैं एक पत्नी-व्रत रहूंगा फिर भला इस क्षण-भंगुर जीवन के लिये यह पाप क्यों? थोड़ी देर बाद ही दोनों पति-पत्नी ने सोते हुये बच्चों को प्यार किया और संखिया खाकर सो गये।

दूसरे दिन सारे कस्बे में इनकी दर्दनाक मौत की खबर फैल गई। लोगों को संदेह तो पहले ही हो गया था, क्योंकि ऐसी बातें छिपी नहीं रहतीं। रतनचन्द सर्वप्रिय व्यक्ति था, पति-पत्नी दोनों की अर्थियाँ उठीं तो सारे कस्बे के लोग रोते-बिलखते साथ थे। इसके बाद बेगम का भय यहाँ तक फैल गया कि कई माता-पिताओं ने तो अपने जवान पुत्रों को सरधना से बाहर भेज दिया।

कहते हैं कि पाप का फल अवश्यम्भावी है, गरीब और अमीर सबके लिये। थोड़े दिनों बाद ही विद्रोही फौज ने बेगम के प्रेमी लवसुल की हत्या कर दी और बेगम को बेइज्जत

करके एक खम्भे बाँध दिया। अगर समय पर उसका पहला प्रेमी टामस नहीं पहुँचता तो बोटियाँ नोच लेते।

रतनचन्द और उसकी पत्नी की समाधि सरधना के वीरान गाँव मे इस समय भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। यहाँ आस-पास के गाँवों से विवाहित जोड़े मनौती के लिये आते रहते हैं और माघ के महीने में एक मेला लगता है।

❋

भाग्य-चक्र

उन्नीसवीं सदी की बात है। रामगढ़ से फतेहपुर (शेखावटी) बारात जा रही थी। बहुत से हाथी, घोड़े, रथ और ऊँट थे, जो जरीदार रेशमी कपड़ों की 'झूल' के साथ चाँदी और सोने के गहनों से सजे थे। बारातियों की संख्या हजार तक पहुँच गयी थी। गाँव के गरीब-से-गरीब घर का आदमी भी बारात में निमन्त्रित था। यह बारात थी सेठ रामबिलास के पुत्र नन्दलाल के विवाह की, जिसकी चर्चा बाद के बहुत वर्षों तक होती रही।

उनका बड़े पैमाने पर भिवानी में कारबार था। उन दिनों व्यापार की वह बड़ी मंडी थी। राजस्थान की चीजें दूसरे प्रान्तों में और वहाँ से राजस्थान में भेजने-मंगाने का भिवानी ही माध्यम था।

सेठ के अपने परिवार में कुल चार व्यक्ति थे। स्वयं पत्नी, पुत्र और पुत्र-वधू। वे इतने उदार और कुटुम्ब-पालक थे कि दूर के बहुत से सम्बन्धी उन पर आश्रित रहते। उनके दरवाजे से शायद ही कभी कोई अतिथि या याचक निराश लौटा हो। यह उदारता यों किंवदन्ती बन गयी थी कि उन्होंने गीदड़ों के लिए सर्दी से बचाव के लिए रजाइयाँ बनवायी थीं।

प्रौढ़ होने के पहले ही सेठ का देहान्त हो गया और इसके साथ ही इस परिवार का संकट-काल प्रारम्भ हो गया। गाँव के सारे लोग दुखी होकर रो रहे थे, जैसे कि उनके कुटुम्ब का ही कोई मर गया हो। साथ ही एक और दुर्घटना घट गयी। उनके शव की प्रदक्षिणा के लिए स्त्रियाँ जब सेठानी को लाने गयीं तो देखा कि वह भी इहलोक छोड़कर पति की आत्मा के पास जा चुकी है। दोनों की अर्थी साथ-साथ उठी और आस-पास का कोई आदमी न बचा होगा, जो इनकी शवयात्रा में शामिल न हुआ हो।

विशाल हवेली में अब उनका पुत्र अपनी पत्नी तथा दो बच्चों के साथ रह गया था। मनुष्य का भाग्य और फिरत-चिरत की छाया को एक ही उपमा दी गयी है। सूतक की समाप्ति के बाद आये हुए मेहमान जब चले गये तो नन्दलाल कारबार सम्भालने के लिए भिवानी गया। वहाँ उसे अपनी आर्थिक स्थिति की जो जानकारी मुनीमों से मिली, उससे आश्चर्य और दुःखका ठिकाना न रहा। पिछले कई वर्षों से व्यापार तो घाटे में चल रहा था, जबकि दान-पुण्य और दूसरे खर्च प्रतिवर्ष बढ़ते जा रहे थे।

धन्धा बन्द हो गया। मुनीम-गुमाश्ते छोड़ कर चले गये। कर्ज चुकाने में पत्नी के सारे गहने बिक गये और बड़ी हवेली रेहन रख दी गयी। वे सब एक छोटे मकान में रहने लगे। परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ती गयी कि दोनों समय खाना

जुटाना भी मुश्किल हो गया। पत्नी बड़े घर की बेटी थी और बड़े घर में ही बहू बनकर आयी थी। किसी समय बीसों नौकर और नौकरानियाँ घर के काम के लिए थे, पर अब रसोई के साथ-साथ बर्त्तन माँजना और बुहारना-झाड़ना आदि सब काम उसे स्वयं करने पड़ते। थोड़ी बहुत सहायता बच्चे कर देते थे। मुँह-अँधेरे ही पति-पत्नी कुएँ से पानी ले आते, क्योंकि दिन चढ़ने के बाद लोगों की भीड़ में संकोच होता था।

जब कष्ट सीमा से बाहर होने लगे तो पत्नी ने अपने भाइयों के पास सहायता के लिए जाने को कहा, जिनका मालवा तथा दूसरे देशावरों में बड़े पैमाने पर कारबार था। जिन लोगों ने सब कुछ जानते हुए भी बहन और उसके बच्चों की संकट के समय खबर तक नही ली, उनके यहाँ सहायता के लिए जाने की इच्छा तो नहीं थी, पर पत्नी द्वारा बार-बार आग्रह के कारण उसने उनके पास उज्जैन जाना तय कर लिया। विदा के समय पत्नी ने रास्ते के लिए खाने का सामान तैयार कर के एक कपड़े में बाँध दिया।

एक शाम तालाब के किनारे हाथ-मुँह धोकर नन्दलाल खाने की तैयारी में था कि कुछ साधु-महात्मा आ गये और भिक्षा माँगी। जिसके घर में पिता के समय सैकड़ों अतिथि-अभ्यागत नित्य भोजन पाते थे, वह भला ना कैसे करता? स्वयं भूखा रहकर सारा सामान उन्हें दे दिया।

दूसरे दिन दोपहर के बाद जब वह ससुराल की कोठी पर पहुँचा तो रास्ते की थकावट एवं भूख के कारण कैसा ही लग रहा था। उसके दोनों साले वहाँ कई मित्रों के साथ बातचीत कर रहे थे। उन्होंने न तो उसकी आवभगत की और न बहन या बच्चों की कुशल-क्षेम ही पूछी। शाम होने पर मुनीमों को ढाबे में खिलाने को कहकर घर चले गये।

इस प्रकार अपमानित होने पर उसके दुःख और ग्लानि की सीमा न रही। परन्तु गाँव लौटने का किसी प्रकार का साधन नहीं था इसलिए उसी शहर में अपने एक मित्र के यहाँ गया, जिसकी किसी समय उसके पिता ने सहायता की थी।

सब मनुष्य एक से नहीं होते। मित्र बहुत ही प्रेम से मिला और सारी स्थिति की जानकारी के बाद हर प्रकार की सहायता का वचन दिया। दूसरे दिन से ही रामविलास नन्दलाल की फर्म फिर से स्थापित हो गयी। देशावरों में इस फर्म की इमानदारी और कार्य-क्षमता की साख थी। इसलिए, पहले के व्यापारिक सम्बन्ध फिर जुड़ गये तथा थोड़े समय में ही व्यवसाय जम गया।

एक वर्ष बाद वह सम्पन्न होकर घर लौटा। पत्नी ने भाइयों के बारे में समाचार पूछा तो राजी-खुशी की कह कर दूसरी बातों में टाल दिया। उसकी पत्नी को तो यही विश्वास था कि मायके वालों के सहयोग और कृपा से ही यह सब हुआ है।

एक महीने बाद ही फिर वह उज्जैन आ गया और इस बार ज्यादा हिम्मत से व्यापार करने लगा। भाग्य ने साथ दिया और दो वर्ष बाद दूसरी बार जब वह अपने गाँव लौटा तब नन्दलाल लखपति हो गया था। कर्ज चुका कर पिता की बनायी हुई बड़ी हवेली छुड़ा ली। फिर से एक बार मुनीम-गुमाश्ते, नौकर-चाकरों तथा कुटुम्बियों से घर भर गया।

ससुराल में साले के लड़के का विवाह था। निमन्त्रण देने के लिए स्वयं वर का बड़ा भाई कुंकुम-पत्रिका लेकर आया। जो पत्र वह साथ लाया था उसमें बहुत वर्षों से बहन और बच्चों को नहीं भेजने का उलाहना था एवं इस अवसर पर सबको जरूर-जरूर बुलाया था।

नन्दलाल की इच्छा वहाँ जाने की नहीं थी, परन्तु पत्नी बार-बार भाइयों के उपकार का बखान कर रही थी। इस बीच में उसने मायके जाने की सारी तैयारी भी कर ली थी। अतः विवाह में शामिल होने के लिए वे सब रवाना हुए। वह स्वयं तो घोड़े पर था, पत्नी और बच्चे रथों में तथा दूसरे राजपूत सरदार नाई, नौकर-दाई ऊँटों पर। शहर से एक कोस दूर पर ही अगवानी के लिए दोनों सालों के सिवाय गाँव के बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति आये। पत्नी तो हवेली में चली गयी और सेठ नन्दलाल के डेरे लगे एक बहुत बड़ी सजी हुई कोठी में। रात्रि में भोजन के लिए हवेली में तैयारी की गयी थी। चाँदी-सोने के थालों में नाना प्रकार के व्यंजन सजे थे।

खातिरदारी में परिवार के सारे लोग हाथ बाँधे खड़े थे। स्त्रियाँ मधुर रागिनी में सीठनें गा रही थीं।

भोजन के लिए कहा गया तो उसने अपने हाथ की हीरे की अंगूठी को थाल में रखकर खाने के लिए कहा। उन लोगों की समझ में बात नहीं आयी, दूसरी बार आग्रह करने पर गले से पन्ने के हार को निकाल कर उसने भोजन करने को कहा। किसी बड़े-बूढ़े ने कहा, "जँवाईराज, हँसी-दिल्लगी बहुत हो चुकी, अब कृपया भोजन कीजिये।"

वह बिना भोजन किये ही उठ गया और कहने लगा कि यह मान-सम्मान तो मेरे हीरे-पन्ने और धन-दौलत का हो रहा है, अन्यथा जब मैं ३ वर्ष पूर्व इनके यहाँ आया था तो इन्होंने मुझे पहिचाना तक नहीं। पत्नी रोज अपने भाइयों का का उपकार बखानती थी इसलिए इसे वास्तविकता की जानकारी कराने के लिए मुझे आना पड़ा, वरना मैंने उसी दिन इन लोगों से किसी प्रकार भी सम्बन्ध न रखने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

महिलाओं में बैठी पत्नी को बुलाकर, अपने बच्चों तथा दूसरे साथ के लोगों को लेकर उसी समय वह रामगढ़ रवाना हो गया।

विवाह का अवसर था। घर नाते-रिश्तेदारों से भरा था। परन्तु इतनी बड़ी घटना के बाद किसी की हिम्मत उन्हें रोकने की नहीं हुई।

❀

मोती काका

हमारे गाँव में बाहर के साधु-महात्मा आते रहते थे। उनके प्रवचनों के समय देखा जाता कि एक वृद्ध नियमित रूप से सबसे पहले आता और सबके बाद जाता। लोगों की जूतियों के पास बैठकर हाथ में माला लिये जाप करता रहता। आयु प्रौढ़ावस्था को पार कर चुकी थी परन्तु शरीर की काठी देखकर लगता कि किसी समय बहुत सुन्दर और बलवान रहा होगा। गोरे चेहरे पर झुर्रियाँ थीं परन्तु आँखों में तेज की चमक थी।

बच्चों से उसे ऐसा प्यार था कि सारे दिन वे उसे घेरे रहते, कोई दाढ़ी खींचकर भाग जाता तो कोई पीठ में धौल जमाकर।

पत्नी, पतोहुओं और पोते-पोतियों से भरा-पूरा घर था। दो जवान लड़के फौज में थे। गाँव के पास ही खेत थे जिनसे अच्छी आय हो जाती थी।

लोग कहते कि किसी समय मोती काका नामी डाकू था, उसने सैकड़ों डाके डाले थे। परन्तु ब्राह्मण या गाँव की बहिन-बेटी को कभी नहीं लूटा। यहाँ तक कि ब्राह्मणों की बेटियों के विवाह में अपने आदमियों के द्वारा दान-दहेज भेजता रहता था।

शुरू-शुरू में तो हम वच्चे उससे सहमे-से रहते परन्तु कुछ अर्से वाद इस प्रकार हिलमिल जाते कि उसके कंधों पर चढ़कर नाचते रहते। यद्यपि उस समय डाकू क्या है, इसके वारे में जानकारी स्पष्ट हमें नहीं थी ; फिर भी ऐसा समझते थे कि वह कोई खराव आदमी है। काका से पूछने पर वह हँसकर वात टाल देता। कभी-कभी दोनों हाथों स आंखों को वड़ी-वड़ी करके डराने लग जाता।

उस वार, वहुत वर्षों तक देशावर रहने के वाद मैं गाँव आया। मोती काका ७५–८० वर्ष का हो गया था, चल–फिर नहीं सकता था। हाथ पैर काँपते परन्तु आंख-कान दुरुस्त थे। वचपन मे उससे कहानियाँ सुनते हुए मैं कहा करता था कि हम वड़े होंगे तव तुम्हारे लिए एक अच्छी–सी ऊनी चद्दर लायेंगे। वह वात मुझे याद रही और धारीवाल की एक चद्दर उसके लिए ले गया था।

वातें करते हुए मैंने देखा कि उसकी आँखों में हर्ष के आँसू आ गये थे। वह कहने लगा, "सुना है, तुम्हारी वहुत वड़ी तनख्वाह है। मैं इसके लिए हमेशा भगवान से प्रार्थना किया करता था। रामजी ने मेरी वात सुन ली।"

उन दिनों काका को गांधी जी के दर्शन करने की प्रबल इच्छा थी। हमारे उधर राजस्थान के गाँवों में उनके वारे में वहुत–सी किंवदन्तियाँ फैली हुई थीं ; जैसे, 'उनको भगवान के साक्षात दर्शन होते है,' 'जेलके फाटक अपने आप खुल गये,'

चोर डाकू भी उनके सामने आकर सच्ची बात कहने से पाप-मुक्त हो जाते हैं,' आदि।

काका का शरीर इतना अस्वस्थ रहने लग गया कि उस इच्छा की पूर्ति नहीं हुई। उन्हीं दिनों हरिद्वार से एक बड़े महात्मा अपने कई शिष्यों के साथ आये। मोती काका ने बड़े आग्रह-पूर्वक उनको निमंत्रित किया और साथ ही साथ गांव के दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भी।

भोजन के पहले काका ने सैकड़ों आदमियों के सामने हाथ जोड़कर कहा कि मेरा अन्त समय अब नजदीक है। जीवन में मैंने जघन्य पाप किये है। मुझे कल रात में सपना आया है कि तुम महात्मा जी और गाँव के लोगों के समक्ष अपने पापों को स्वीकार करो, इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। अपने जीवन की जो घटनाएँ बतायीं, उन्हें सुनकर यह निश्चय नहीं कर सका कि वह पापी है या धर्मात्मा।

मोती काका ने अपनी जीवन-गाथा इस प्रकार सुनायी—

"मैं अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा था। विवाह होकर बारात वापस आयी थी। अभी कगन-डोरे भी नहीं खुले थे कि गाँव का महाजन अपने कर्ज के तकाजे के लिये आकर बैठ गया। उन दिनों कर्ज न चुकाने पर कर्ज की सजा होती थी, बहुत से सगे-सम्बन्धियों के बीच बापू को पुलिस के सिपाही हथकड़ी डालकर ले गये। उस दिन के बाद शर्म के मारे मेरा

"मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि जैसे भी होगा, कर्ज चुका कर पिता को जेल से छुड़ाऊँगा। किन्तु बहुत प्रयत्न करने के बावजूद काम नहीं मिल पाया। संयोग से मेरी जान-पहिचान प्रसिद्ध डाकू ठाकुर राम सिंह के साथियों से हो गयी और मैं उनके दल में शामिल हो गया। हिम्मत, सूझ और शारीरिक बल के कारण रामसिह के मरने के बाद दल का मुखिया मुझे ही चुना गया।"

"कर्ज से दुगुना रुपया लेकर एक रात सेठ के घर पहुँचा। उसके प्रति मेरे मन में ऐसी घृणा हो गयी थी कि कर्ज चुकती की रसीद लेकर लौटते समय मैंने उसके नाक-कान काट लिये। उसके बाद तो मैंने सैकड़ों डाके डाले, पर परमात्मा जानता है कि कभी ब्राह्मणों और गाँव की बहू-बेटियों को नहीं सताया, न गरीब और निम्नवर्ग के लोगों को ही।"

"मुझे प्रायः ही खबरें मिलती कि मेरे माँ-बाप को नाना-प्रकार की यातनाएँ दी जा रही हैं। एक दिन यह भी सुना कि मेरी पत्नी को थाने में बन्द कर रखा है और उसके साथ बहुत ही अमानुषिक बर्ताव किया जा रहा है।"

"एक अँधेरी रात में १०-१२ साथियों के साथ मैंने उस पुलिस चौकी पर हमला कर दिया। ८-१० सिपाही और अफसर मारे गये, हमारे भी ३-४ साथी खेत रहे। पत्नी दर्द से कराह रही थी। उसकी हालत देखकर लज्जा और ग्लानि से मन भर गया, परन्तु पास के थानों से कुमुक पहुँचने के अंदेशे से भागकर हमें जंगल में जाना पड़ा।"

"माँ-बाप और पत्नी की दुर्दशा के समाचारों से मैं रात-दिन बेचैन रहने लगा। उधर पुलिस की सतर्कता भी बहुत ज्यादा बढ़ गयी। मेरे जिन्दा या मरे पकड़ा देने पर सरकार द्वारा १०,०००) रुपये इनाम की घोषणा की गयी।"

"गाँव के एक गरीब ब्राह्मण की बेटी का विवाह रुपये के बिना अटक रहा था। मेरे पास उस समय व्यवस्था थी नहीं। समय कम था, मैं पशोपेश में पड़ गया कि कैसे मदद करूँ। सरकारी घोषणा की बात याद आ गयी। मगर मेरे साथी इसके लिए तैयार नहीं हुए। आखिर, मैं अकेला ही उस ब्राह्मण के पास गया और समझाया कि मुझे थाने में हाजिर करने से उसे १०,०००) रुपये मिल जायँगे।"

"पहले तो वह तैयार नहीं हुआ, परन्तु बहुत समझाने-बुझाने पर मान गया।"

"विभिन्न अपराधों में मुझे १५ वर्ष की कड़ी कैद की सजा हुई, परन्तु मेरे अच्छे चाल-चलन के कारण १० वर्ष में ही छोड़ दिया गया।"

"अब उन बातों को प्रायः २५-३० वर्ष हो गये हैं, परन्तु मेरे मन में अपने पुराने पापों की याद से अब भी ग्लानि और लज्जा भरी पड़ी है। कहते हैं कि परमात्मा के भक्तों की सेवा करने से जघन्य पाप भी दूर हो जाते हैं, इसलिए कथा-वार्ता में आने वालों की जूतियों की सम्हाल रखता हूँ। बहन-बेटियों के बच्चों को बहलाता रहता हूँ।......"

काका की बातें सुनकर लोगों के साथ—साथ महात्मा जी भी हर्ष से गद्‌गद् हो गये। उन्होंने उठकर उसे छाती से लगा लिया।

चोर

रात के नौ बजे थे। भोजन करके कुछ पढ़ रह था कि मकान के फाटक पर शोरगुल सा सुनाई दिया। थोड़ी देर तो ध्यान नहीं दिया परन्तु जब आवाजें रोने-चिल्लाने में बदल गईं तो नीचे जाना पड़ा।

देखा, २०-३० व्यक्ति एक १२-१३वर्ष के दुबले से लड़के को घेरे हुए हैं, उसकी नाक और मुँह से खून निकल रहा है। लोग बीच-बीच में उसके दो-एक धौल भी जमा देते हैं।

पूछने पर पता चला कि पास के सिनेमा घर के बाहर मूढ़ी-चना के खोमचे से दूकानदार की आँख बचाकर मूढ़ी लेकर भागता हुआ यह लड़का पकड़ा गया, फिर तो मोहल्ले के बद-माश लड़कों को अपना जोर आजमाइश करने का मौका मिल गया और मारते-मारते इसकी यह हालत कर दी।

उस मासूम बच्चे के चेहरे पर करुणा की मार्मिक याचना देखी तो खोमचे वाले को दो रुपये देकर विदा किया और अन्य सब लोगों को समझा बुझाकर वहाँ से हटा दिया।

दरबान से लड़के को भीतर लाने के लिये कहा। लड़का उस समय भी भय से काँप रहा था और अन्दर जाने में झिझक रहा था। शायद डरता था कि और मार न लगे या

कोई नयी विपत्ति न आ पड़े। एक प्रकार से धकेलते हुए ही उसे लाया गया। मैंने प्यार से सिर पर हाथ रखकर पूछा कि उसने ऐसा बुरा काम क्यों किया तो सुबुक-सुबुक कर रोने लगा। थोड़ी देर तो कुछ बोल ही नहीं पाया। ऐसा लगता था कि मार और भूख से बहुत ही व्याकुल हो गया है। उसे बेहोशी सी आ रही थी। खाने के साथ एक गिलास गर्म दूध दिया, तब कहीं थोड़ा संभल पाया।

उसे दूसरे दिन सुबह तक वहीं रहने को कहा तो रोकर कहने लगा, "मेरी बीमार माँ घर पर अकेली है और कल से भूखी है, वह मेरी राह देख रही होगी। मुझे इतनी रात तक नहीं पाकर बहुत चिंतित होगी। इसलिए अभी घर जाने दीजिए।" कुछ खाने-पीने का सामान देकर दसरे दिन उसे फिर आने को कह कर भेज दिया।

दो-तीन दिन बीत गए। लड़के की भोली सूरत भूल नहीं सका। दरवान को उसे बुलाने भेजा। देखा कि बालक के सिर एवं हाथ पर पट्टी बँधी है, उसके साथ एक युवा किन्तु कृश-काय और बीमार सी स्त्री भी है। साड़ी में जगह-जगह पेबन्द लगे हुए थे, चेहरे पर दैन्य और बीमारी की स्पष्ट छाया। फिर भी उसके नाक-नक्श की सुघराई से लगता था, शायद किसी समय बहुत ही रूपवती रही होगी।

कहने लगी कि उस दिन की मार से बच्चे को बुखार आ गया था, कहीं-कहीं सूजन भी। स्त्री के बोलने के लहजे से

समझ पाया कि पूर्वी बंगाल की है। जो आत्मकथा उसने सुनाई वह इतने दिनों बाद भी भूल नहीं सका हूँ। कभी-कभी जब दुबले-पतले बच्चों को भीख माँगते देखता हूँ तो उस मासूम बच्चे की तस्वीर आँखों के सामने आ जाती है।

खुलना के पास के किसी देहात में उसकी अच्छी खासी खेती थी। एक छोटा पोखर (तालाब) भी था। सब प्रकार से सुखी गृहस्थी थी। देश के विभाजन के बाद वे लोग वहीं रह गए। यद्यपि नाना प्रकार के कष्ट और अपमान झेलने पड़ते थे परन्तु एक तो कहीं अन्यत्र आसरा नहीं था, दूसरे पूर्वजों के घर और जमीन आदि के प्रति मोह-ममता थी जो उन्हें गाँव छोड़ कर चले जाने से रोके हुए थी।

सन् १९५८ में एक दिन अचानक ही गाँव के हिन्दुओं पर हमला बोल दिया गया। जो मुसलमान हो गए, उनके जान-माल बच गये, जिन्होंने सामना किया वे कत्ल कर दिये गये।

उसका पति वैष्णव कंठीधारी कायस्थ था। किसी समय गाँव का मुखिया भी था और दोनों समय घर पर ठाकुरजी की पूजा-अर्चना करता था। वह किसी प्रकार भी धर्म त्याग करने को तैयार नहीं हुआ। उसे खुदा के बन्दों ने काट कर पास के पोखर में डाल दिया। पड़ोसियों के बीच-बचाव से किसी प्रकार बेचारी विधवा अपने ८ वर्ष के बच्चे को साथ लेकर सीमा पार करके भारत के 'बनगाँव' में आकर रहने लगी। जो कुछ थोड़ा बहुत सामान साथ मे था, वह सब रास्ते में लोगों ने लूट लिया।

उसने देखा कि वहाँ पर पहले से ही पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थी बड़ी संख्या में हैं और सरकारी कैम्पों में किसी प्रकार पेट पाल रहे हैं। 'परमात्मा की दया' से इनमें से बहुत से अनेक प्रकार की बीमारियों से जल्दी-जल्दी मर कर रोज-रोज की यातनाओं से शीघ्र मुक्ति भी पा रहे थे।

२६-२७ वर्ष की आयु, सुगठित अंग-प्रत्यंग, चेहरे पर लावण्य की स्पष्ट आभा। विपत्ति में सुन्दरता भी अभिशाप बन जाती है। कैम्प के लिए नाम दर्ज करने वाला इन्सपेक्टर रात में उसकी 'सरकी' में आकर लेट गया। शरणार्थियों के पुनर्वास और उनकी देख भाल के लिए रखे गए ये लोग इतने बेशर्म और निधड़क हो गए थे कि न तो उन्हें किसी की निन्दा का डर था और न मान मनुहार की आवश्यकता। किसी भी शरणार्थी लड़की या स्त्री के साथ मनचाहा व्यवहार करना ये अपना अबाध अधिकार मानते थे। वे बेचारी भी विपत्ति की मारी, भूखे पेट और थके तन को लेकर आखिर विरोध कहाँ तक कर पाती? कैम्प में स्थान और सरकारी सहायता न मिलने पर सन्तान सहित तिल-तिल कर मरना पड़ता। इसलिए, जीवित रहने के लिए ऐसे अपमान को भी आवश्यक मान लेती थीं।

लेकिन सुरमा उस धातु की नहीं बनी थी। वह अपना शरीर नहीं दे सकी और जोर-जोर से चिल्लाने लगी। खैर, उस समय तो वह इन्सपेक्टर चुपचाप खिसक गया। परन्तु दूसरे दिन फिर दरख्वास्त लेकर तो उसी के पास जाना होता। सुरमा को यह स्वीकार न था। अतः रजिस्ट्री आफिस में न जाकर उसने अपने

बच्चे को साथ लिया और रास्ते के अनेक कष्ट झेलते हुए कलकत्ता आ गई। यहाँ उसे एक घर में दाई का काम मिल गया, रहने को एक छोटी सी कोठरी भी।

रूपवती विधवा युवती मोहल्ले के रसिक युवकों के लिए अपने आप में एक आकर्षण है। वे बिना काम ही उसके घर के आसपास मंडराने लगे। कभी सीटी बजाते और कभी गन्दी आवाजें कसते। लिहाजा, उसे वह आसरा भी छोड़ देना पड़ा। सोचा तो यह था कि भारत भूमि में अपने सहधर्मी बन्धुओं के बीच जीवन के बाकी दिन किसी प्रकार चैन से बिता पाएगी, अपने बच्चे की जैसे-तैसे परवरिश करेगी। किन्तु, उसे क्या पता था कि पाकिस्तान की तरह यहाँ भी मनुष्य के रूप में भूखे भेड़ियों की कमी नहीं है।

कई बार मन में आया कि तिजाब छिड़क कर मुँह को बदरंग कर ले परन्तु कुछ तो पीड़ा के भय से और कुछ बच्चे का ख्याल करके वह यह सब नहीं कर पाई।

कई जगह भटकते हुए उसे ढाकुरिया लेक के पास एक शरणार्थी परिवार के यहाँ रहने का सहारा मिल गया। परन्तु केवल आवास की व्यवस्था से पेट की भूख नहीं मिटती। भीख माँगने में पहले-पहल तो झिझक हुई परन्तु फिर आदत पड़ गयी और किसी तरह दो जून खाना मिलने लगा।

लड़का देखने में सुन्दर और बातचीत में चतुर था। सुबह-शाम जो सैलानी लेक पर आते, उनकी मोटरों की सफाई और सम्हाल करता रहता। वे दो-चार आने बख्शीश के तौर पर उसे दे देते, कभी धमका कर ऐसे ही भगा देते।

एक दिन माँ को बुखार आ गया। सीलन भरी जमीन पर बिना चारपाई के सोने से तथा भूखजनित कमजोरी से यह साधारण और स्वाभाविक बात थी। डाक्टर को दिखाने का प्रश्न ही नहीं था। पड़ोस की एक वृद्धा ने उसे दो गोली कुनैन की लाकर दी और मूड़ी खाने को कहा। बच्चा मूड़ी लाने के लिये घर से निकला। दिन भर खड़ा रहने पर भी उस दिन जब कुछ भी प्राप्ति नही हुई तो माँ की भूख का खयाल करके सड़क पर के खोमचे से उसने कुछ मुड़ी चुरा ली, परन्तु भागते हुए पकड़ लिया गया।

यही कहानी थी जो उसकी माँ की जुबानी मैंने उस दिन सुनी।

लड़के की पढ़ाई नहीं के समान थी, इसलिए उसे अपने आफिस में चपरासी के रूप में रख लिया। यह कई वर्ष पहले की बात है। सुरेन अब बड़ा हो गया है, कुछ अंग्रेजी और हिन्दी भी पढ़ ली है। मेरे यहाँ जितने कर्मचारी हैं उनमें वह सबसे अधिक मेहनती और ईमानदार है। गरीब बंगालियों में लड़कियों की कमी नहीं है। सम्भव है, थोड़े वर्षों में उसका विवाह हो जायगा तब उसकी दुखिया माँ भी को बहुत वर्षों बाद गृहस्थी का थोड़ा सा सुख देखने को मिलेगा।

आज भी मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या उस दिन सचमुच सुरेन ने चोरी की? बाद में तो कभी भी कोई शिकायत नहीं मिली! मनुष्य स्वभाव से चोर होता है या परिस्थितियाँ उसे मजबूर कर देती है?

प्रभु का प्यारा*

उत्तराखण्ड के बद्री-केदार की यात्रा का महत्व हजारों वर्ष से हमारे देश के लोगों के मन और जुबान पर है। जनश्रुति है कि द्वापर में पाण्डवों ने केदारनाथ की यात्रा की थी और ईसा से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व आद्य शंकराचार्य केरल से ढाई हजार मील चलकर बद्रीनाथ आये थे। यह भी कहा जाता है कि वर्तमान पीठ उन्हीं की स्थापित की हुई है।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ की बात है, पूना के श्रीमन्त पेशवा के दीवान वृद्धावस्था में राजकाज छोड़कर घर ही पर विश्राम करते थे। उनके मन में बहुत वर्षों से बद्री-केदार यात्रा की कामना थी किन्तु कोई न कोई कारण उपस्थित हो जाता और वे तीर्थयात्रा पर निकल नही पाते। आखिर, एक बार उन्होंने सब तैयारियाँ कर ली। कौन-कौन से मुसाहिब, नौकर रसोइये सिपाहियों आदि को साथ रक्खा जाये और कैसी सवारियाँ, यान, वाहन आदि रहें, इस सबों की फेहरिस्त बन गयी। यहाँ तक कि रसद के सामान की भी सावधानी से सूची बना डाली गयी।

उनके पड़ौस में हीरू नाम का एक दर्जी रहता था। उसके

---

*एक विदेशी कहानी की प्रेरणा से

मन में भी बद्री-केदार जाने की इच्छा थी। किन्तु, अच्छा साथ नहीं मिल पाया, इसलिये जा नहीं सका था।

उसने भी कई अन्य लोगों की तरह दीवान जी से चलने की स्वीकृति ले ली। उन दिनों रास्ते बीहड़ थे, सड़कें भी अच्छी न थीं। चोर-डाकुओं का डर बना रहता। इसके अलावा साँप-बिच्छू और जंगली हिंसक पशुओं के आक्रमण का भय तो था ही। बीमारियाँ भी होती रहतीं। इन्हीं कारणों से लोग ऐसी बीहड़ यात्राओं में बड़े लोगों के किसी दल में शामिल होने का सुयोग ढूँढ़ते थे।

दीवान जी ने महीनों पहले से ही अपने बेटों और पोतों को काम की सम्हाल देनी शुरू कर दी थी। कारिन्दों और पटवारियों को कहाँ से कितनी अदायगी करनी है और उनके जमीन जायदाद के पट्टों आदि के बारे में क्या और कैसे करना है, इसकी हिदायतें देकर आदेश दिया कि पीछे से किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचे।

हीरू ने चलते समय पत्नी और पुत्र को केवल इतना ही कहा कि भगवान का स्मरण करते रहना, यदि उनकी कृपा रही तो फिर मिलेंगे।

निश्चित मुहूर्त पर यात्रीदल ने प्रस्थान किया। शंख बजाये गये, मन्दिरों के घन्टे बजे। विदा देने के लिये लोग उमड़ पड़े। लगभग एक कोस तक स्त्री-पुरुष और बच्चे भजन गाते हुए

पहुँचाने के लिये साथ चले। बड़ी श्रद्धा से सबों ने 'पालागन' किया।

तेरह सौ मील की लम्बी यात्रा थी। रोज पन्द्रह-बीस मील चलते। रात में किसी निरापद स्थान पर रुक जाते। भजन-कीर्तन होता रहता। इसी तरह चलते-चलते मालवा के किसी गाँव के पास एक दिन इनका पड़ाव हुआ। जगह सूनसान सी लगी। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि गाँव में हैजे का प्रकोप है। अधिकांश लोग यहाँ से चले गये हैं। कुछ गरीब और हरिजन बच गये हैं। चिकित्सा के अभाव में उनमें से कई एक रोजाना भगवान के यहाँ चले जाते हैं।

रात घनी हो आयी, भजन-कीर्तन समाप्त हो गये और यात्री सो गये। हीरू को नींद नहीं आयी। एक अजीब सी बेचैनी उसे सता रही थी। वह चुपचाप उठा और पहरेदारों की नजर बचाकर गाँव की ओर चल पड़ा। पास पहुँचते-पहुँचते हवा के झोंकों के साथ सड़ांध आने लगी। वह तेजी से बढ़ा। एक घर से किसी छोटे बच्चे के रोनी की आवाज सुनायी पड़ी। भीतर जाकर देखा कि दो-तीन वर्ष का एक बालक पास में लेटी हुई अपनी माँ का आंचल खींच-खींच कर रो रहा है। माँ विसूचिका-जनित गन्दगी में लिपटी सिसक रही है। सारी बातें एक क्षण में उसके मस्तिष्क में घूस गयीं। दौड़कर उसने आँगन में बँधी बकरी को दुहा और बच्चे को दूध पिलाया।

फिर उसे एक ओर बैठाकर उस महिला को धो-पोंछकर साफ किया। उसे ख्याल आया कि दवाइयों की पोटली तो उसकी पेटी में है, क्यों न वह ले आये? इसकी जान बच जायेगी।

फौरन वह उल्टे पाँव पड़ाव की ओर भागा। लोग गहरी नींद में थे। 'पेटी में खोलने पर खुटका होगा,' 'बिस्तर में धोती और कपड़े हैं, शायद जरूरत पड़ जाये'—सोचते हुए उसने चुपचाप बिस्तर और पेटी उठाई और गाँव में लौट आया। वहाँ आकर देखा कि बच्चा आराम से सोया है और महिला को भी कुछ राहत है। उपचार के लिये साथ लायी हुई दवा दी, ईश्वर कृपा से लाभ हुआ। सुबह होने पर वह दूसरे घरों में गया। वहाँ भी हैजे के रोगी कराह रहे थे। वह उन्हीं की सेवा में लग गया।

उधर तीर्थयात्रियों का पड़ाव उठने लगा। थोड़ी देर तो हीरू की प्रतीक्षा की, फिर आगे के लिये चल पड़े।

लगभग एक महीने तक हीरू उस गाँव में रहा। यात्रा के लिये जो पूँजी लेकर चला था, समाप्त हो चुकी थी। महामारी के हट जाने पर लोग गाँव में वापस आने लगे। सभी कृतज्ञ थे, उसका गुणगान करते थे। परन्तु हीरू मौन रहता। उसके मन में रह-रह कर यही बात उठती कि तीर्थयात्रा न कर शायद उससे कोई अपराध हो गया। एक दिन वह घर के लिये रवाना

हुआ। विदा के समय गाँव के लोगों ने अपने घरों से गुड़-चने-चिवड़े दिये। गाँव की सीमा तक पहुँचाने आये। उन सब की आँखें गीली थीं। श्रद्धा और स्नेहभरी शुभाकांक्षा के अलवा वे गरीब दे भी क्या पाते ?

कुछ दिनों बाद, थका हारा हीरू अपने घर वापस पहुँचा। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यात्रा पूरी न कर वह बीच में ही लौट आया। तरह-तरह के प्रश्न पूछे जाते। 'क्यों आये ?' क्या बीमार हो गये ?' 'झगड़ा तकरार हो गया ?' आदि। वह चुपचाप गर्दन झुकाये रहता। पत्नी से केवल इतना ही कहा कि तीर्थयात्रा का पुण्य उसके भाग्य में बदा न था। परनिन्दा और आलोचना में लोगों को आनन्द आता है। तरह-तरह की बातें उस गरीब के बारे में फैलाई गयी परन्तु हीरू ने कोई सफाई नहीं दी। फिर इतना कह देता "मेरे जैसे पापी की पहुँच प्रभु के दरबार में कहाँ ?"

दो महीने बाद दीवान जी का दल पूना लौट आया। शहर के लोग उनके स्वागत और चरण-रज के लिये आये। हीरू भी दुबका सा आया और पैर छूकर एक ओर बैठ गया। उन्होंने एक बार उसकी ओर देखा मगर उस समय कुछ कहा नहीं।

यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हुई, उस उपलक्ष में अगले दिन बारह गाँव के लोगों का भगवान के प्रसाद के लिये भोज हुआ। सभी दीवानजी का यशोगान और जय-जयकार कर रहे थे।

दस-बारह दिन बाद उनके यहाँ से हीरू का बुलावा आया। उसे लगा दीवान जी बुरा-भला कहेंगे। सहमा सा उनकी कोठी पर पहुँचा और द्वारपाल को खबर दी। दीवान जी खुद ही निकल आये और उसे साथ लेकर अपने निजी कक्ष में गये। एकान्त में उन्होंने हीरू से कहा "जब से मैं आया एक बात पूछने की मन में थी किन्तु काम-काज की देखभाल और लोगों की भीड़भाड़ में मौका ही नही लग पाया। तुम्हें भगवान की सौगन्ध है, झूठ मत बोलना। ऐसा लगता है कि उस दिन तुम हम लोगों को उस गाँव के पड़ाव पर छोड़ कर अकेले ही आगे चले गये। मैंने देखा कि तुम भगवान बद्रीविशाल का शृंगार कर रहे हो और पास में बड़े पुजारी जी आरती कर रहे हैं। कई आवाजें देकर बुलाया भी, परन्तु भीड़ में न जाने कहाँ समा गये। इसके बाद केदार जी की आरती और शृंगार में भी देखा कि तुम जगमोहन कक्ष में हो। वहाँ तो केवल प्रमुख पुजारी ही जा सकते हैं, तुम्हें कैसे जाने दिया? मैंने भगवान की भेंट में सोने के गहने और जरी की पोशाकें दीं, फिर भी मुझे चौखट तक ही जाने दिया गया।"

हीरू ने दीवानजी के पैर पकड़ कर रोते हुए कहा कि बाप जी आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो उस रास्ते के गाँव में रोगियों की सेवा के लिये कुछ दिनों तक रुका रहा और फिर वहीं से घर वापस आ गया। मुझ से बड़ा अपराध हो गया कि आपसे बिना पूछे दल छोड़ दिया था। आप जैसे महा-

दस-बारह दिन बाद उनके यहाँ से हीरू का बुलावा आया। उसे लगा दीवान जी बुरा-भला कहेंगे। सहमा सा उनकी कोठी पर पहुँचा और द्वारपाल को खबर दी। दीवान जी खुद ही निकल आये और उसे साथ लेकर अपने निजी कक्ष में गये। एकान्त में उन्होंने हीरू से कहा "जब से मैं आया एक बात पूछने की मन में थी किन्तु काम-काज की देखभाल और लोगों की भीड़भाड़ में मौका ही नही लग पाया। तुम्हें भगवान की सौगन्ध है, झूठ मत बोलना। ऐसा लगता है कि उस दिन तुम हम लोगों को उस गाँव के पड़ाव पर छोड़ कर अकेले ही आगे चले गये। मैंने देखा कि तुम भगवान बद्रीविशाल का शृंगार कर रहे हो और पास में बड़े पुजारी जी आरती कर रहे हैं। कई आवाजें देकर बुलाया भी, परन्तु भीड़ में न जाने कहाँ समा गये। इसके बाद केदार जी की आरती और शृंगार में भी देखा कि तुम जगमोहन कक्ष में हो। वहाँ तो केवल प्रमुख पुजारी ही जा सकते हैं, तुम्हें कैसे जाने दिया? मैंने भगवान की भेंट में सोने के गहने और जरी की पोशाकें दीं, फिर भी मुझे चौखट तक ही जाने दिया गया।"

हीरू ने दीवानजी के पैर पकड़ कर रोते हुए कहा कि बाप जी आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो उस रास्ते के गाँव में रोगियों की सेवा के लिये कुछ दिनों तक रुका रहा और फिर वहीं से घर वापस आ गया। मुझ से बड़ा अपराध हो गया कि आपसे बिना पूछे दल छोड़ दिया था। आप जैसे महा-

एक मनुष्य : तीन रूप

मेरी जान-पहचान के एक मित्र हैं, जिनके घर की स्थिति शुरू में बहुत ही साधारण थी। मित्रों की सहायता और छात्र-वृत्ति से वे किसी प्रकार पढ़-लिख कर राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में काम करने लगे। सन् १९५७ में उन्हें विधान-सभा का टिकट मिल गया और अपने क्षेत्र से वे चुन लिये गये। पिछड़े वर्ग के थोड़े से सदस्य ही चुने गये थे इसलिये नये मंत्री-मण्डल में उनको भी ले लिया गया। मैंने बधाई का तार भेजा। उसके बदले में धन्यवाद-ज्ञापन का जो पत्र उनका आया, उसमें थोड़ा-सा अहंभाव लिये हुए कुछ औपचारिकतासी लगी लेकिन उस समय मैंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया।

कुछ महीनों बाद जब राजधानी गया तो उनके बंगले पर मिलने गया। फाटक पर वर्दीधारी सिपाही, अच्छी शानदार कोठी, सुन्दर करीने से लगाया हुआ बगीचा और पोर्टिको में बड़ी-सी कार। अर्दली से पूछने पर पता चला कि साहब घर पर ही हैं। उनके निजी सचिव को अपना कार्ड दिया और ड्राइङ्गरूम में प्रतीक्षा करने लगा। वहाँ और भी पाँच-सात व्यक्ति पहले से ही बैठे थे।

ड्राइङ्गरूम का फर्नीचर ऊँचे दर्जे का था। फर्श पर कीमती

महीनों में ऐसी कौन-सी बात हो गयी जिससे इनके और इनके परिवार के रहन-सहन में इतना फ़ः आ गया !

आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद वे भीतर से आये। कब आया, कहाँ ठहरा आदि उन्होंने पूछा। मुझे ऐसा लगा कि उनकी बातों में बड़प्पन का आभास है। हो सकता है कि दूसरे बहुत से लोग वहाँ बैठे थे, इसलिए उनके सामने इस ढङ्ग से बात करना जरूरी समझा हो।

थोड़े दिनों के बाद वह किसी सरकारी काम से कलकत्ता आये। उनके सचिव का फोन आया कि मन्त्रीजी आये हुए है और मुझे मिलने के लिए बुलाया है। वैसे मैं खुशी-खुशी उनके यहाँ जाता लेकिन उनके सचिव की बात का लहजा कुछ जँचा नही और मैंने नम्रतापूर्वक टाल दिया। इससे पहले उनके यहाँ आने की सूचना तार तथा पत्र द्वारा आ चुकी थी और ऐसा पता चला कि यह इत्तिला दूसरे कई लोगों को भी दी गयी थी।

कुछ दिनों बाद मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि वे कह रहे थे कि आप कलकत्ता में न तो उनको लेने के लिए स्टेशन आये और न उनसे मिले ही। इसलिए वे आपसे कुछ नाराज हैं।

जब नया चुनाव हुआ तो वे हार गये। क्योंकि अपने मन्त्रीकाल में आपस के लोगों से मिलना-जुलना कम कर दिया था, अभिमान भी हो गया था। उसके बाद जैसा कि आम तौर से लोग करते हैं, उन्होंने भी खादी की एक संस्था और सहकारी समिति की स्थापना कर ली और अपना काम देखने लगे।

एक दिन अचानक ही वे मुझे दिल्ली स्टेशन पर मिल गये। छोटा-सा विस्तर उनकी वगल में था और थर्ड क्लास की जगह खोज रहे थे। वैसे मन्त्री वनने के पहले भी तीसरे दर्जे में ही यात्रा करते थे पर इस वार मुझे देखकर वहुत झेंपे।

लिखने का तात्पर्य यह है कि मैंने तीन वर्षों मे एक मनुष्य के तीन रूप देखे। पहला : खादी की ऊँची धोती, विना इस्तिरी किये हुए कपड़े, अभावग्रस्त परिवार; लेकिन हर प्रकार का सेवा कार्य करने के लिये तैयार। दूसरा : वगुले के पंख से सफेद कपड़े, सजा हुआ शीत-ताप नियन्त्रित वंगला, वड़ी कार और तौर-तरीकों में अभिमान की स्पष्ट झलक। अव तीसरा रूप था : विगड़ी हुई आदतों के कारण वढ़े हुए खर्चों की पूर्ति के लिए खादी या सहकारी संस्था के नाम से कुछ कमाना और अगर उसमें भी सफल न हुए तो फिर वही साधारण रहन-सहन; पर अव झेंप के साथ!

महीनों में ऐसी कौन-सी बात हो गयी जिससे इनके और इनके परि-
वार के रहन-सहन में इतना फ़र्क आ गया !

आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद वे भीतर से आये। कब आया, कहाँ ठहरा आदि उन्होंने पूछा। मुझे ऐसा लगा कि उनकी बातों में बड़प्पन का आभास है। हो सकता है कि दूसरे बहुत से लोग वहाँ बैठे थे, इसलिए उनके सामने इस ढङ्ग से बात करना जरूरी समझा हो।

थोड़े दिनों के बाद वह किसी सरकारी काम से कलकत्ता आये। उनके सचिव का फोन आया कि मन्त्रीजी आये हुए हैं और मुझे मिलने के लिए बुलाया है। वैसे मैं खुशी-खुशी उनके यहाँ जाता लेकिन उनके सचिव की बात का लहजा कुछ जँचा नहीं और मैंने नम्रतापूर्वक टाल दिया। इससे पहले उनके यहाँ आने की सूचना तार तथा पत्र द्वारा आ चुकी थी और ऐसा पता चला कि यह इत्तिला दूसरे कई लोगों को भी दी गयी थी।

कुछ दिनों बाद मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि वे कह रहे थे कि आप कलकत्ता में न तो उनको लेने के लिए स्टेशन आये और न उनसे मिले ही। इसलिए वे आपसे कुछ नाराज हैं।

जब नया चुनाव हुआ तो वे हार गये। क्योंकि अपने मन्त्री-काल में आपस के लोगों से मिलना-जुलना कम कर दिया था, अभिमान भी हो गया था। उसके बाद जैसा कि आम तौर से लोग करते हैं, उन्होंने भी खादी की एक संस्था और सहकारी समिति की स्थापना कर ली और अपना काम देखने लगे।

एक दिन अचानक ही वे मुझे दिल्ली स्टेशन पर मिल गये। छोटा-सा विस्तर उनकी वगल में था और थर्ड क्लास की जगह खोज रहे थे। वैसे मन्त्री वनने के पहले भी तीसरे दर्जे में ही यात्रा करते थे पर इस वार मुझे देखकर वहुत झेंपे।

लिखने का तात्पर्य यह है कि मैंने तीन वर्षों में एक मनुष्य के तीन रूप देखे। पहला : खादी की ऊँची धोती, विना इस्तिरी किये हुए कपड़े, अभावग्रस्त परिवार; लेकिन हर प्रकार का सेवा कार्य करने के लिये तैयार। दूसरा : वगुले के पंख से सफेद कपड़े, सजा हुआ शीत-ताप नियन्त्रित वंगला, वड़ी कार और तौर-तरीकों मे अभिमान की स्पष्ट झलक। अव तीसरा रूप था : विगड़ी हुई आदतों के कारण वढ़े हुए खर्चों की पूर्ति के लिए खादी या सहकारी संस्था के नाम से कुछ कमाना और अगर उसमें भी सफल न हुए तो फिर वही साधारण रहन-सहन; पर अव झेंप के साथ!

—o—

मन्त्री जी का जन्म दिन

किसी एक मन्त्री जी के जन्म दिन के उ सव का निमन्त्रण-पत्र मिला। आयोजकों के नाम की तीन पेज की सूची थी। एक आयोजन कमेटी भी बनी थी—जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, संयोजक, कोषाध्यक्ष के सिवाय ३१ व्यक्तियों की कार्यकारिणी थी।

जितनी बड़ी सूची थी उसके अनुरूप ही जलसा था। ऐसा लगा कि १५००-२००० निमन्त्रण-पत्र जरूर भेजे है क्योंकि ७००-८०० दर्शक थे जिनके लिए बड़े से लॉन में छोलदारी लगाकर कुर्सियाँ सजायी गयी थी। विशिष्ट अतिथियों के लिए सुसज्जित ऊँचा मंच बनाया गया, जिसे नाना प्रकार के फूलों से सजाया गया था। मंच पर गाधी जी, राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू और नेहरू जी के बड़े-बड़े चित्रों के साथ मन्त्री जी का अपना बड़ा-सा चित्र भी था।

उत्सव प्रायः २-२॥ घण्टे चला। चाय, हल्का नाश्ता और ठंढे पेय की सुव्यवस्था थी। मंत्री जी के बारे में इतनी बड़ी-बड़ी बातें कही गयीं जिनका पता शायद स्वय उनको भी नहीं रहा होगा। गौरव-गाथा गाने वालों में होड़ लगी हुई थी। आम तौर पर किसी भी समझदार व्यक्ति को अपने बारे में अतिरंजित बड़ाई सुनकर संकोच-सा होता है परन्तु यहाँ तो मन्त्री महोदय बड़े चाव से मुस्करा कर सुन रहे थे।

सबसे पहले स्वागताध्यक्ष का भाषण हुआ (वे मन्त्री जी के ही किसी विभाग में ठेकेदारी का काम करते हैं)। उन्होंने कहा कि मुझे मन्त्रीजी को बचपन से जानने का सौभाग्य रहा है, लोगों को इनकी मेधाशक्ति, वाक्चातुर्य और समशीलता को देखकर पहले से ही यह पता चल गया था कि आगे जाकर ये देश के भाग्य-विधाता होंगे। दूसरे व्याख्यानदाता नगर के मेयर थे, उन्होंने स्वागताध्यक्ष द्वारा की गयी बड़ाई की ताईद तो की ही साथ में इतना और जोड़ दिया कि शुरू से ही ये ऊँचे दर्जे के ईमानदार और सच्चरित्र रहे हैं। अन्तिम वाक्य सुनकर वहाँ बैठे हुए बहुत से जानकार स्त्री-पुरुषों को मुस्कुराते हुए देखा गया।

इसी प्रकार एक के बाद एक कई प्रभावशाली व्यक्तियों के भाषण हुए, इन सबका प्रयत्न केवल यह दिखाना था कि वे मन्त्री जी के अधिक से अधिक नजदीकी मित्रों में हैं

सोचने लगा कि पुराने राजा-बादशाहों के बन्दीगणों तथा भाटों में और इन आयजकों में क्या फर्क है? उन राजाओं को तो हम आज मूर्ख और खुशामद-पसन्द कहते हैं। परन्तु आज के इन राजाओं को स्पष्ट बात कहकर नाराज करने की हिम्मत हमारे में नहीं है।

इतिहास में पढ़ा था कि रोम में एक सनकी बादशाह हुआ जिसे कविता करने की धुन सवार हुई। मुशायरों में वह भी स्वरचित कविताएं सुनाता था परन्तु ज्यादा दाद (वाह-वाही) दूसरे कुछ बड़े कवियों को मिलती। नतीजा यह हुआ कि सारे बड़े-बड़े कवि पकड़ कर जेल भेज दिये गये।

बादशाह ने अपनी कविता सुनाने के लिए ५०० मुसाहिब नौकर रख लिये, जिनका काम कविता सुनने के समय वाह-वाह करना और हाथ ताली देना ही था।

एक प्रकार से हमारे आज के इन शासकों में भी कुछ उसी प्रकार की खुशामद सुनने की भावना बनती जा रही है। बादशाहों का राज्य तो पैतृक और स्थायी था जबकि इनकी वजारत जोड़-तोड़ से मिली हुई और अस्थायी है। ऐसे जलसो में दूसरे बड़े बड़े नेता और मन्त्रीगण काफी संख्या में आते है क्योंकि उनको भी कुछ समय बाद अपने जन्मदिन पर इसी प्रकार की भीड़ और उत्सव की आकांक्षा लगी रहती है।

आज स सौ-दो-सौ वर्ष पहले सम्पन्न व्यक्ति कुएँ, बावड़ी, धर्मशाला और प्याऊ लगाकर यश और नाम कमाते थे। आज वे बातें पुरानी हो गयी हैं और उनकी जगह स्कूल, कालेज और अस्पतालों ने ले ली है। परन्तु ये सब बहुल अर्थ-साध्य काम हैं इसलिए, बिना हर्रे और फिटकरी लगे चोखा रंग लाने का मार्ग भी निकाल लिया गया है। वह है, अनेक चित्रों सहित अभिनन्दन-ग्रन्थ तैयार कराके जन्मदिन के जलसे में स्वयं को समर्पित करवाना।

मेरे एक बुजुर्ग मित्र हिन्दी के मूर्धन्य कवि थे। वे राम के भक्त थे और आमतौर पर दूसरे किसी की भी प्रशंसा में कविता नहीं लिखते थे। एक दिन एक प्रभावशाली व्यक्ति का उनके पास किसी अभिनन्दन ग्रन्थ में कविता के लिए फोन आया। उन्होंने नम्रतापूर्वक अस्वस्थता के कारण लिखने से नाहीं कर दी।

उसके बाद भी हर प्रकार से उन पर दबाव डाला गया। फिर भी उन्होंने कविता नहीं दी। ग्रन्थ प्रकाशित होने पर देखा गया कि देश के प्रसिद्ध लेखकों, कवियों और नेताओं की रचनाएँ तथा सन्देश मन्त्री जी के यशोगान में भरे पड़े थे। ग्रन्थ की साजसज्जा तो हर प्रकार से दर्शनीय थी ही।

अभिनन्दन के सिवाय अपने नाम के पहले 'डाक्टर' लिखना भी इन विशिष्ट लोगों के लिए आजकल प्रथा सी हो गयी है। विश्व-विद्यालयों के महत्वपूर्ण पदों पर पहले से ही अपने आदमियों को सिफारिश-कोशिश कर नियुक्त करवा दिया जाता है। वे जोड़-तोड़ बैठाकर वर्ष-दो-वर्ष में इन्हें डाक्टरेट दिला देते हैं।

कई मन्त्रियों और नेताओं के तो हर बड़े शहर में कुछ वैतनिक कार्यकर्त्ता रहते हैं, जिनका वेतन उनसे सम्बन्धित किसी संस्था द्वारा दिया जाता है। उनका काम मन्त्री जी की उस शहर या आस-पास की यात्रा के समय भीड़ को इकट्ठी करके जय बुलवाना और फूल-मालाएँ पहनाना रहता है। इसके लिए कभी-कभी जय बोलने वालों को और माला पहनाने वालों को पैसा भी देना पड़ता है।

वैसे, विश्व में उचित मान और बड़ाई पाने की इच्छा सबकी रहती है परन्तु इसके लिए जिस प्रकार के प्रयत्न आजकल हमारे यहाँ होने लग गये हैं, वे बहुत ही अवांछनीय और लज्जास्पद हैं।

कितनी जमीन : कितना धन ?*

राजस्थान के किसी गाँव में एक सुखी किसान परिवार था। पति-पत्नी और एक पुत्र, पचास बीघा जमीन और दो फसली खेती। रहने के लिये अपना छोटा सा मकान था। कड़ी मेहनत कर निर्वाह के लायक पैदा कर लेते। कुछ बच जाता तो वह पास पड़ोस, अतिथि और साधु-सन्तों के काम आ जाता।

एक दिन एक रिश्तेदार शहर से आकर किसान के घर ठहरा। उसके बच्चे जरी-गोटे के कपड़े पहने थे और स्त्री आभूषणों से लदी थी। किसान-पत्नी के पूछने पर अतिथि की स्त्री ने बताया कि ये गहने सोने के है और उनमें सच्चे हीरे-जवाहरात जड़े हैं। यह भी कहा कि बड़े आदमियों की यही शोभा है।

दो-तीन दिन रहकर मेहमान तो चले गये परन्तु कृषक-पत्नी के मन में एक तीव्र आकांक्षा छोड़ गये। उसे रात-दिन उन गहनों का ख्याल बना रहता। सोती तो सपने में जड़ाऊ गहने नजर आते। बच्चा भी गोटे-किनारी के कपड़ों के लिये मचल उठता। पत्नी के बारम्बार कहने पर कुछ दिनों बाद, किसान अपने गाँव के जमींदार के यहाँ गया और उधारी पर पचास बीघे जमीन खरीद ली। दोनों

---

* एक विदेशी कहानी की प्रेरणा से

ने डटकर मेहनत करनी शुरू कर दी। संयोग से वर्षा भी समय पर होती गयी। दो तीन वर्षों में ही जमीन की कीमत अदा कर दी। आगे चलकर एक सौ बीघा जमीन और ले ली। अब उसके पास दो सौ बीघा जमीन हो गयी और वह सम्पन्न किसानों में गिना जाने लगा। किसी समय का परसा किसान अब परसराम जी बन गया। ड्योढ़ी पर चार जोड़ी अच्छे बैल, एक रथ और दो ऊँट शोभा बढ़ाते। पत्नी के पास सोने के तरह-तरह के जड़ाऊ गहने हो गये। बच्चा भी बड़ा होकर स्कूल जाने लगा। घर में बहुत से नौकर-चाकर थे।

खेती-बारी के अलावा वह बोहरगत (उधार का व्यापार) भी करने लगा। इससे आमदनी के साथ-साथ साख भी बढ़ी। इतना सब होने पर भी परसराम का चित्त अशान्त रहने लगा। पड़ोसी गांव के जमींदार के पास उससे भी ज्यादा जमीन थी। वह सोचता कि उनके दरवाजे पर हाथी कितनी मस्ती से झूमता रहता है जब कि मेरे पास तो केवल ऊँट है। उसे यह धुन सवार हुई कि किसी प्रकार जमींदार से अधिक समृद्ध बन सके। संयोग से एक दिन खबर मिली कि बीकानेर रियासत के गंगानगर इलाके में नहर आने वाली है और वहाँ बहुत सस्ते दामों में जमीन मिल रही है जो आगे चलकर सोना उगलेगी। यह बात उसके मन में बैठ गयी। पत्नी और पुत्र को गंगानगर में जमीन लेने का अपना विचार बताया। उन लोगों ने कहा, "सुना है कि वहाँ आबादी नहीं है, वीरान जगह है, बाघ-भेड़िये घूमते रहते हैं। हमें ईश्वर

ने सब कुछ दे रक्खा है, फिर क्या जरूरत है कि इस ढलती उम्र में आप वहाँ जाकर खतरा मोल लें ?" परन्तु परसराम को तो ज्यादा से-ज्यादा और धन की चाह लगी हुई थी। कड़ी मेहनत से वह जीवन में कभी पीछे हटा नहीं, उसे इसका फल भी मिला; अतः अपने निश्चय पर अटल रहा। साथ में यथेष्ट रुपये लेकर गंगानगर के लिये रवाना हो गया। कई दिनों की यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा। काफी थक गया था, कुछ ज्वर भी हो आया। अगले दिन अधिकारियों से मिला। पता चला कि जमीन की कीमत प्रति मुरब्बा साल सौ रुपये है। नहर के किनारे चकबन्दी में जितनी चाहे उतनी खरीद सकता है। नहर निकल आने पर तीन वर्षों के अन्दर ही जुताई शुरू कर देनी होगी और दस वर्ष तक किसी को जमीन बेच नहीं सकेगा। परसराम खेती की नस-नस पहचानता था। निजी अनुभव था। नहर के आने पर जमीन क्या से क्या हो जायगी, वह जानता था। पंजाब से बहुत से समृद्ध किसान भी इसी लिये आये हुए थे। उसने सोचा, ज्यादा से ज्यादा जमीन ले ली जाय वरना मौका हाथ से निकल जायगा।

उन दिनों, सवारियों की व्यवस्था वहाँ नहीं थी। बीमार के बावजूद वह पैदल ही निकला और उसे अच्छी-से-अच्छी जमीन की जाँच के लिये दूर-दूर तक चलना पड़ा। कड़ी मेहनत से उसका बदन टूटने लगा, बुखार तेज हो गया। परन्तु जैसे ही लौटने की सोचता तो सामने और भी अच्छी जमीन नजर आती, बीमारी की परवाह

न करके फिर आगे बढ़ जाता। जब तक वह डेरे पर वापस पहुँचा, उस समय उसकी हालत बहुत ही खराब हो गयी थी।

समाचार पाकर चार-पाँच दिन बाद जब उसकी पत्नी और पुत्र गाँव से वहाँ पहुँचे तो उस समय वह सन्निपात में बड़बड़ा रहा था, "जमीन बहुत अच्छी है..... खूब पैदावार होगी... अनाज की जगह..... सरसों... "कपास लगायेंगे......" आदि।

जो भी थोड़ा-बहुत उपचार वहाँ सम्भव था, सब किया गया, किन्तु वह बचाया न जा सका।

मरघट मे पाँच हाथ जमीन साफ करके वहाँ के लोगों ने परसराम के पुत्र के हाथ से उसकी दाह-क्रिया करा दी।

ने सब कुछ दे रक्खा है, फिर क्या जरूरत है कि इस ढलती उम्र में आप वहाँ जाकर खतरा मोल लं ?" परन्तु परसराम को तो ज्यादा से-ज्यादा और धन की चाह लगी हुई थी। कड़ी मेहनत से वह जीवन में कभी पीछे हटा नहीं, उसे इसका फल भी मिला; अतः अपने निश्चय पर अटल रहा। साथ में यथेष्ट रुपये लेकर गंगानगर के लिये रवाना हो गया। कई दिनों की यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा। काफी थक गया था, कुछ ज्वर भी हो आया। अगले दिन अधिकारियों से मिला। पता चला कि जमीन की कीमत प्रति मुरब्बा सात सौ रुपये हैं। नहर के किनारे चकबन्दी में जितनी चाहे उतनी खरीद सकता है। नहर निकल आने पर तीन वर्षों के अन्दर ही जुताई शुरू कर देनी होगी और दस वर्ष तक किसी को जमीन बेच नहीं सकेगा। परसराम खेती की नस-नस पहचानता था। निजी अनुभव था। नहर के आने पर जमीन क्या से क्या हो जायगी, वह जानता था। पंजाब से बहुत से समृद्ध किसान भी इसी लिये आये हुए थे। उसने सोचा, ज्यादा से ज्यादा जमीन ले ली जाय वरना मौका हाथ से निकल जायगा।

उन दिनों, सवारियों की व्यवस्था वहाँ नही थी। बीमार के बावजूद वह पैदल ही निकला और उसे अच्छी-से-अच्छी जमीन की जाँच के लिये दूर-दूर तक चलना पड़ा। कड़ी मेहनत से उसका बदन टूटने लगा, बुखार तेज हो गया। परन्तु जैसे ही लौटने की सोचता तो सामने और भी अच्छी जमीन नजर आती, बीमारी की परवाह

न करके फिर आगे बढ़ जाता। जब तक वह डेरे पर वापस पहुँचा, उस समय उसकी हालत बहुत ही खराब हो गयी थी।

समाचार पाकर चार-पाँच दिन बाद जब उसकी पत्नी और पुत्र गाँव से वहाँ पहुँचे तो उस समय वह सन्निपात में बड़बड़ा रहा था, "जमीन बहुत अच्छी है"... "खूब पैदावार होगी"... "अनाज की जगह......सरसों"... "कपास लगायेंगे......" आदि।

जो भी थोड़ा-बहुत उपचार वहाँ सम्भव था, सब किया गया किन्तु वह बचाया न जा सका।

मरघट में पाँच हाथ जमीन साफ करके वहाँ के लोगों ने परसराम के पुत्र के हाथ से उसकी दाह-क्रिया करा दी।

सती

सन १९६४ की बात है। संसद के कई मित्र सदस्यों के साथ राजस्थान के दर्शनीय स्थानों का भ्रमण करते हुए जोधपुर में ठहर गया। पता चला, पास ही मंडावर का ऐतिहासिक स्थान है।

अगले दिन हम इसे देखने गये। वीरान सी जगह, लगता था जैसे अभिशापग्रस्त हो। पत्थर की छोटी-बड़ी बहुत सी छतरियाँ देखने में आयीं। मकराने के बेहतरीन पत्थरों की बनी थीं, नक्कारी का काम भी इनपर उम्दा था।

एक स्थानीय वयोवृद्ध रामू जी दरोगा हमारे गाइड थे। मेरे एक मित्र ने इन्हें साथ कर दिया था। उन्होंने मुझे प्रायः सारी छत-रियाँ दिखायीं। पिछले साठ वर्षों से वे इन छतरियों की सम्हाल रखते रहे हैं। मृत राजाओं की जन्मतिथि, राज्यकाल, मृत्यु तथा उनके जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाएँ उन्हें कंठस्थ थीं।

लगभग चार सौ वर्षों से इस स्थान पर स्थानीय राजाओं की दाहक्रिया सम्पन्न होती रही है। उन्हीं की यादगार में ये छतरियाँ बनीं। कई एक रेत से ढंकी सी थीं। कुछ पर झाड़ियाँ उग आयी थीं। उपेक्षित और बेमरम्मत होने की वजह से ढह भी रही थीं।

ऐतिहासिक स्मारकों को देखकर भावना और कल्पना के पंखों पर बैठा मनुष्य सुदूर अतीत की एक झाकी वह कुछ क्षणों के लिये पा

जाता है। दिल्ली के लाल किले मे जहाँ सल्तनते मुगलिया की शानोशौकत के साथ 'बाअदब बामुलाहिजा होशियार' की गूंज दीवारों से निकलती है, वहीं अभागे दाराशिकोह के कटे सिर की अधखुली आँखें आज भी कुछ कह जाती हैं।

मंडावर का ऐतिहासिक वैभव इस टक्कर का नहीं है। फिर भी राजस्थान के रजवाड़ों का एक ऐसा पृष्ठ यहाँ मेरी आँखों के सामने उभरा जो अब तक अन्यत्र कहीं मिला नहीं। एक बड़ी सी छतरी के पत्थरों पर नागरी में एक लेख देखा। पढ़ने पर पता चला कि अमुक महाराजा युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर और प्रजावत्सल थे। उनके साथ तीन रानियाँ और बारह दरोगने सती हुईं। एक अन्य छतरी महाराजा अजित सिंह की यादगार में बनी थी। उसके शिलालेख मे सहमरण की रानियों की संख्या थी छः और दरोगनों की बाइस। इस प्रकार विभिन्न छतरियों पर कम या अधिक संख्या का उल्लेख था।

बरबस खो सा गया, उस प्राचीन बहुचर्चित सामन्त-युग में। मैं सोचने लगा कि रानियों का सहमरण तो पत्नी होने के नाते तत्कालीन प्रथा और परम्पराओ के अनुसार गौरवपूर्ण माना जा सकता है। किन्तु दरोगनें स्वेच्छा से सती हुईं या इन्हें विवश किया गया ?

रामूजी दारोगे के समक्ष मैंने अपने प्रश्न रक्खे और यह भी पूछा कि यदि बाध्यतामूलक सहमरण रहा होगा तो विरोध भी होता था या नहीं ?

उन्होंने कहा "यह सर्वविदित है कि मुगलों के सम्पर्क मे आने के

कारण राजपूत सामन्त एवं सरदार ऐय्याश एवं आरामतलब हो गये थे। कामपिपासा की तृप्ति के लिये ज्यादा से ज्यादा रानियाँ, उप-पत्नियाँ और रखैल रख लेते। रनिवास में ऐसी औरतों की अधिकाधिक संख्या उनके पौरुष और वैभव का प्रतीक मानी जाती थी। यह प्रथा सत्रहवी से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक प्रचलित रही। कहा जाता है कि जयपुर नरेश स्वर्गीय महाराज माधो सिंह की सब मिलाकर सात-आठ सौ रानियाँ और रखैलें थीं।"

इस प्रथा की शुरुआत के बारे में एक जनश्रुति उन्होंने बतायी—"राजपूतों में नियम था कि केवल रानियाँ ही पति के शव के साथ चिता में अपने को भस्म कर सती होने का गौरव प्राप्त करें। एक बार एक बड़े माने-जाने महाराजा की मृत्यु हो गयी। युवराज को किसी मुसाहिब ने सुझाव दिया कि दिवंगत महाराजा पुण्यात्मा थे इसीलिये आजीवन उन्होने ऐश्वर्य भोग किया। अब उनकी मृत्यु के उपरान्त हमारा यह धर्म है कि परलोक में भी उनकी सेवा के लिये रनिवास की उनकी बांदियाँ भेज दी जायें।"

"बस फौरन हुक्म हुआ कि आठ दस बांदियाँ महाराज के शव के साथ जला दी जायें। परम्परा बन गयी। आगे चलकर तो पचास-साठ तक यह संख्या पहुँची। जिन औरतों को इस प्रकार जलाने के लिये बाध्य किया जाता, उनके पति और बच्चों का रोना - चीखना स्वाभाविक था। लेकिन उन दिनों परवाह ही कौन करता इन बातों की ! राज्य अपना, हुकूमत अपनी, सर उठाने की बात तो दूर, उंगली तक उठाने की मजाल किसकी ?"

कहते-कहते रामू जी की आवाज कांपने लगी, वे पास के एक चबूतरे पर बैठ गये। मैंने समझा, वृद्ध शरीर है, थक गये होंगे। कुछ पूछना चाहता था कि देखा, उनकी आँखों से आँसू उमड़ रहे हैं। कहने लगे, "मेरी अभागिन परदादी की बात याद आ गयी। उसे भी जबरन जलाया गया था।"

मेरे विशेष अनुरोध पर उन्होंने यह घटना सुनायी।

"सन् १८०४ मे जोधपुर में महाराजा भीम का राज्य था। उनके पास बड़ी-छोटी कुल मिलाकर सैकड़ों रानियाँ और रखैलें थीं, जिनमें उनकी अपनी समवयस्का से लेकर ४० वर्ष के अन्तर तक थीं। उस समय ऐसा रिवाज था कि जब कभी महाराज का मन हुआ, किसी छोटे-बड़े जमींदार की लड़की को मँगा लेते। वह बेचारा कन्या ऋण से तो मुक्त होता ही, साथ ही लड़की को भी राजरानी देखने का स्वप्न देखता। दरबार मे उसका रुतबा भी बढ़ जाता। इस प्रकार रानियों की एक बड़ी फौज महलों मे इकट्ठी हो जाती। इन सबके साथ दरोगा जाति की कुंवारी कन्यायें भी दहेज में आतीं। उन सबका नाममात्र का विवाह तो उसी जाति के लड़कों से कर दिया जाता परन्तु वे रहतीं राजा की रखैल के रूप में। इनमें से किसी-किसी के पास तो राजा दो-चार वर्षों में भी नहीं जा पाते थे।"

"महाराज की आयु ६० वर्ष की हो गयी थी। उनका शरीर अफीम, शराब और औरतों के कारण समय से पहले ही जर्जर हो गया। हकीमों, कविराजों की एक लम्बी कतार हाजिरी में रहती,

जिनका काम था, उनके लिए ज्यादा से ज्यादा उत्तेजक और स्तम्भक दवाइयाँ तैयार करते रहना।"

"परन्तु जिसकी नीव खोखली हो गयी हो, वह मकान भला कितने दिन टिक पाता? आखिर, उन्हे असाध्य बीमारी ने घर दबोचा। सारे हकीम और वैद्य देखते रह गये। मृत्यु के कुछ दिनों पहले ही उन्होने अपने मुसहिबों से सलाह करनी शुरु कर दी कि कौन - कौन सी रानियाँ और दरोगने परलोक मे सेवा के लिये सहमरण करेंगी।"

"इधर रनिवास में कोहराम मच गया, महाराज की जान से ज्यादा अपनी जान के लिये, जो छोटी उम्र की रानियाँ या दरोगनें थी, वे और भी ज्यादा डरती थीं, क्योंकि स्वर्ग में भी महाराज के लिये उन्हीं को जरूरत समझी जाती थी। खैर, मृत्यु के समय महाराज ने श्रीमुख से रानियों के नाम बता दिये और प्रत्येक के साथ चार-चार दरोगने सेवा के लिये।'

"मेरी परदादी की आयु उस समय केवल १६ वर्ष की थी। विवाह हुये चार वर्ष हुये थे। केवल दो वर्ष का एक पुत्र था। पति और पुत्र को बहुत प्यार करती थी। महाराज की सेवा से छुट्टी मिलते ही दौड़कर घर आ जाती।"

"जब उसे भी महाराज के साथ सहमरण का हुक्म हुआ तो सन्न रह गयी। परदादा तो एक प्रकार विक्षिप्त से हो गये। दो दिनों तक पुत्र को छाती से लगाये इस क्षीण आशा में पड़ी रही कि शायद अन्तिम समय तक कुछ रद्दोबदल हो जाये। परन्तु कुछ भी नहीं हुआ। रावले से १०-१५ व्यक्ति आये; उसे जबरन भांग धतूरा और अफीम

खिला दिया गया। स्नान कराके नये कपड़े पहना दिये गये और सजे हुए रथ पर बैठाकर श्मशान ले जाने की तैयारी करने लगे। कहा जाता है कि किसी बहुत अशुभ घटना की आशंका पशुओं और अबोध बच्चों को भी हो जाती है। उस दिन मेरे दादा अपनी माँ को किसी प्रकार भी छोड़ने को तैयार नहीं हुए। जब देर होने लगी तो दरबार के निर्दयी मुसाहिबों ने उसके जबड़े पर एक जोर का मुक्का मारा, जिसके निशान उनकी मृत्यु पर्यन्त थे।"

"श्मशान में पहले से ही तीस-पैंतीस स्त्रियाँ सुबक-सुबक कर रो रही थी। लोग कहते थे कि महाराज के शोक में रोती है। सब ने कसूमल लाल रंग के कपड़े पहन रखे थे। हाथ-पैरों पर मेंहदी रची थी। सुहागन का बाना सजा हुआ था, क्योंकि वे अपने पति देवता और अन्नदाता से मिलने के लिये स्वर्ग जा रही थीं।"

"चन्दन काठ की बहुत बड़ी चिता सजायी गयी। पहले बड़ी महारानी को बैठाकर उनकी गोद में महाराजा का सिर रख दिया गया। चारों तरफ दूसरी रानियाँ बैठ गयीं। इनके पीछे गोलियों को बैठा दिया गया।"

"पंडितों ने उच्च स्वरों में मन्त्रोच्चार प्रारम्भ किया। चिता में आग लगा दी गयी। करुणा-भरी चीख-पुकार सुनाई पड़ने लगी, परन्तु जोर जोर से बजते हुए ढोल, नगारों और बाजों के शोर शराबे में इनका कुछ भी पता नहीं चला। कहते है, मेरे परदादा अपने पुत्र को गोद में लिये वहीं खड़े हुए यह सब देख रहे थे। एक बार तो पर-

दादी ने चिता से बाहर कूदने का प्रयत्न भी किया, परन्तु हत्यारों ने उसे बाँसों से ढकेल कर चिता की तरफ कर दिया। धधकती आग में थोड़ी देर में ही सब कुछ स्वाहा हो गया।"

"महाराज की जय हो, महाराज बड़े प्रतापी और पुण्यवान थे, इन आवाजों के साथ-साथ जो रानियाँ और दरोगनें जला दी गयी थी उनके पति, पुत्र और पुत्रियों की सिसकती आहें भी हवा में फैल गयीं।"

आँसू पोंछते हुए रासूजी कहने लगे, "इन बातों को बहुत वर्ष बीत गये परन्तु इन्हें दोहराते समय घाव हरे हो जाते हैं।"

मैंने हाथ का सहारा देकर उन्हें उठाया। छतरियों के चबूतरे की सीढ़ियों से हम उतर रहे थे।

दिन ढल चुका था। ऐसा लगा कि अस्ताचल का सूर्य इन घटनाओं को सुनकर तेजी से कहीं दूर छिपना चाहता है।

———

गोगा-बापा

राजस्थान के शौर्य और बलिदानों का इतिहास विश्व में बेजोड़ माना जाता है। सम्मान और सतीत्व की रक्षा के लिये बच्चों को गोद में लिये हुए हजारों महिलाओं का धधकती आग में कूद कर प्राण दे देना, अपने-आप में एक अद्वितीय दृष्टांत है। भारत के सिवा ऐसे उदाहरण शायद ही विश्व में और कहीं मिल पायेंगे। रणथंभौर और चित्तौर में इस प्रकार के कई जौहर हुए हैं। सबसे पहला जौहर बीकानेर के भादरा गाँव के पास गोगामढ़ी में सन् १०२४ में हुआ। इसमें ७०० कुलवधुएँ अपने बच्चों को गोद में लिये हुए जलकर भस्म हो गयी थीं। जब गजनी की फौज मढ़ी में पहुँची तो उसे राख की ढेरी, कुछ अधजले मांस के लोथड़े और उन पर मंडराते हुए हजारों गिद्ध दिखायी दिये थे।

गोगामढ़ी के चौहान सरदार गोगाजी का एक अद्भुत इतिहास है। यूरोप के १२ वीं शताब्दी के क्रुसेड अभियान के कई एक नेता, भारत के जयमल, फत्ता और वीर चूड़ावत सरदार के बलिदानों से भी गोगाजी का बलिदान अधिक उज्ज्वल और अनोखा है।

मुहम्मद गजनवी की पचास हजार की सुसज्जित फौज के डर से लोहकोट (लाहौर) और मुलतान के हिन्दू राजा मुँह में तिनका लेकर अपनी फौज सहित उसके साथ हो गये थे। रास्ते के सामन्तों की बिसात ही क्या थी? मरुभूमि की सीमा पर पहुँचते-पहुँचते उसके पास तीस हजार सवार और पचास हजार पैदल फौज थी।

जहाँ तक सम्भव हुआ, मुहम्मद रास्ते के सामन्तों से समझौता करता हुआ, सोमनाथ की प्रसिद्ध मूर्ति ध्वंस करने के लिए आगे बढ़ रहा था। उसने गुर्जर देश की समृद्धि के बारे में सुन रखा था। वहाँ जाकर लूट का सिपाहियों का लालच था और गजनवी को महादेव की मूर्ति तोड़कर गाजी बनने का।

उसे माटी प्रदेश (इस समय का बीकानेर क्षेत्र) होते हुये जालौर मारवाड़ के मार्ग से गुजरात सौराष्ट्र जाना था। रास्ते में गोगामढ़ी थी, वहाँ के वृद्ध सरदार गोगाजी की यशोगाथा उसने सुन रखी थी।

गजनवी ने एक देश-धर्मद्रोही तिलक नाम के भारतीय के साथ अपने सेनापति सालार मुहम्मद को गोगा-बापा के पास हीरे-जवाहरातों का थाल देकर भेजा। उसने कहा कि अमीर गजनी अपनी फौजों के साथ आपके क्षेत्र से होकर प्रभास-पाटन जा रहा है, उसे आपकी सहायता चाहिये।

नब्बे वर्ष के गोगा-बापा का शरीर क्रोध से काँपने लगा। गम्भीर गर्जन करते हुये उन्होंने कहा, "तेरा अमीर भगवान सोमनाथ

के विग्रह को तोड़ने जा रहा है और मुझसे सहायता माँगता है! तू हिन्दू होकर उसकी हिमायत के लिये आया है!! जा अपने मालिक से कह दे कि गोगा-बापा रास्ता नहीं देगा।" यह कहकर उन्होंने हीरे-मोतियों के थाल को ठोकर से दूर फेंक दिया।

बाप के इक्कीस पुत्र, चौहत्तर पौत्र और सवा सौ प्रपौत्र थे। इनके सिवा उनके पास नौ सौ शूरवीरों की छोटी-सी सेना थी।

पन्द्रह दिनों तक तैयारी होती रही। गढ़ की मरम्मत हुई। हथियार सँवारे गये। चण्डी का और महारुद्र का पाठ होने लगा।

एक दिन देखा कि गजनवी की फौजें एक विशाल अजगर की तरह सरकती हुई गोगामढ़ी से आगे निकल रही हैं। शायद वह बापा से उलझना नहीं चाहता था।

प्रधान पुजारी नन्दीदत्त ने कहा, "बापा संकट टल गया है, यवन फौजें आगे बढ़ती जा रही हैं। बापा की सफेद मूँछें और दाढ़ी फड़कने लगी। उन्होंने कहा, "महाराज, हमारे शरीर में रक्त की एक बूँद के रहते भगवान शंकर के विध्वंस के लिये म्लेच्छ कैसे जा सकता है? हम लोग उनका पीछा करेंगे। आप गढ़ी में रहकर महिलाओं और बच्चों की सद्गति कर दें। ऐसा न हो कि उनके हाथों में मेरे वंश का कोई जीवित व्यक्ति पड़ जाय।"

युद्ध की तयारी के बाजे बजे। घोड़े और ऊंट सजाये गये।

केसरिया बाना पहने ११०० वीर हाथों में तलवार, तीर और फरसे लिये हुए गजनवी की सवा लाख फौज को विध्वंस करने चले।

दस वर्ष से छोटे बच्चों और स्त्रियों कि एक बड़ी चिता तैयार करके पुरोहित नन्ददत्त ने उसमें अग्नि प्रज्वलित कर दी। उसका अपना जवान पुत्र तो बापा के साथ जूझने चला गया था, पत्नी ; पुत्र-वधू और बच्चे सब जौहर की आग में कूद गये।

गढ़ के नीचे खड़ी यवन सेना देख रही थी कि तीर की तरह की तेजीसे केसरिया वस्त्रों में थोड़े से वीर आ रहे है। 'अल्लाह हो अकबर' की गर्जना हुई। हरी पगड़ी और लाल दाढ़ीवाला अमीर हाथी पर चढ़ा हुआ अपनी फौजों को बढ़ाव देने लगा।

नब्बे वर्ष के वयोवृद्ध बापा बिजली की तरह कड़ककर यवन फौजों का नाश कर रहे थे। एक बार तो गजनवी की फौज में तहलका मच गया, परन्तु संख्या का और साज सामान का इतना अन्तर था कि दो घड़ी में सारे के सारे चौहान वीरगति को प्राप्त हो गये। दुश्मन के दसगुने आदमी मारे गये। गोगाबापा के वंश में बच गया एक पौत्र सज्जन और उसका पुत्र सामन्त। वे दोनों मुहम्मद के आक्रमण की अग्रिम सूचना देने प्रभास पाटन गये हुए थे। वापस आते समय उन्होंने रास्ते में भागते हुए लोगों से सारी बातें सुनी। एक बार तो दुख से रोने लगे, परन्तु तुरन्त ही संभलकर अपना

कर्तव्य निश्चित किया। सामन्त तेज ऊँटनी पर चढ़कर गुर्जर नरेश भीमदेव के पास चला गया।

सज्जन चौहान जालौर के रावल से मिलने गये। बहुत समझाने-बुझाने पर भी रावल नहीं माने। उन्होंने कुछ दिन पहले ही गजनवी के दूत को रास्ता देने की स्वीकृति दे दी थी। उनका कहना था कि भीमदेव इतना अभिमानी हो गया है कि हम लोगों को कुछ गिनता ही नहीं। अब जब उस पर संकट आया है तो मैं क्यों उसकी सहायता करूँ ? सज्जन ने बहुत कुछ समझाया कि 'महाराज, यह तो भीमदेव और आपके वैमनस्य का प्रश्न नहीं है। देश-धर्म पर संकट आया है ! इस समय पारस्परिक भेदभाव को भूल कर यवनों का नाश करना चाहिये।' इस पर भी जब रावल नहीं माना तो व्यर्थ में देर नहीं करके सज्जन ने अपनी ऊँटनी गजनवी की फौजों की तरफ बढ़ादी। तीन चार दिन तेजी से चलने पर उसे गजनवी का दूत अपने सैनिकों की टुकड़ी के साथ मिला। सात आदमियों सहित उसको मारकर रावल का स्वीकृत-पत्र, दूत की कटार और गुप्त निशान लेकर वह गजवनी की फौजों की तरफ बढ़ा। उस समय तक उसकी फौज मे तीस हजार घुड़सवार, पचास हजार तीरंदाज और तीन सौ हाथी थे। चार हजार ऊँटों पर केवल रसद और पानी था। इसके पहले इतनी बड़ी फौज किसी भी सम्राट के पास नहीं सुनी गयी थी।

नायक को उसने निशान दिखाया। वह गजनवी के पास ले जाया गया।

एक बड़े तख्त पर अमीर बैठा था। चारों तरफ नंगी तलवारें लिये तातारी सिपाही खड़े थे। सज्जन ने दुभापिये के माध्यम से बताया कि आपके दूत को रक्षकों सहित जालौर के रावल ने मार दिया है। रावल और मारवाड़ के राजा रणमल्ल की सम्मिलित फौजें लड़ाई के लिये तैयार हैं। निशानी के लिये दूत की कटार गजनवी के पैरों के पास रख दी। तीन चार दिन के थके हुए और भूखे चौहन की बातों पर मुहम्मद को यकीन आ गया।

उसने अपना परिचय जैसलमेर के एक जागीरदार के रूप में दिया और कहा कि अगर अमीर चाहें तो वह उन्हें सीधे रास्ते से केवल बीस-बाइस दिनों में सोमनाथ पहुँचा सकता है। उस रास्ते पर किसी प्रकार की रोक-थाम का अंदेशा भी नहीं है। इसके बदले में उसने अपनी जागीर के पास के एक सौ गाँव चाहे। इतनी अच्छी तरह से उसने रास्ते के गाँव और खेड़ों का परिचय दिया कि सेनापति तथा अन्य हलकारे उसकी बात को प्रामाणिक मान गये।

दूसरे दिन गजनवी ने अपनी फौजों को रास्ता बदलने का हुक्म दे दिया। अब वे सीधे कोलायत, बाप और जैसलमेर के रेगिस्तान

होकर जाने लगे। सज्जन अपनी प्रिय ऊँटनी पर सब के आगे चला। चार दिन की यात्रा के बाद हलकारों ने शोर मचाना शुरू किया कि आगे बीहड़ रेगिस्तान है जहाँ आदमी तो क्या पक्षी भी नहीं जा सकते। सेनापति सालार महमूद ने सज्जन को धमकाया, परन्तु वह अपनी बात पर अडिग रहा। वापस जाने में फिर पाँच दिन लगते, इसीलिये हिम्मत करके वे आगे बढ़े। पाँचवें दिन दोपहर होते ही सामने भयानक अंधड़ आता हुआ दिखाई दिया। जलती हुई गरम रेत मुँह बाए हुई राक्षसी सी बड़े वेग से बढ़ रही थी। चौहान की ऊँटनी जान की जोखिम लेकर तेजी से बढ़ने लगी। पीछे-पीछे मुहम्मद की सेना। थोड़ी देर में ही प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। रेत के उमड़ते हुए ढेर के ढेर पशुओं और मनुष्यों को अंधा बनाने लगे। फौज बेतहाशा पीछे लौटी, परन्तु प्रलयकारी तूफ़ान की सी तेज़ी, थके-मादे पशुओं में कहाँ से आती? दसो हजार ऊँट-हाथी और सिपाही गरम रेत के नीचे दबकर मर गये। जो बचे, उनमें से बहुतों को रात में बिलों में से निकले हुए क्रुद्ध काले-पीले सांपों ने डस लिया। ऐसा लगता था कि शिव ने अपने गणों को यवनों की फौज का नाश करने के लिये भेजा है।

वीर चौहान ने भी अपनी ऊँटनी सहित वहीं मरु-समाधि ली। उसके चेहरे पर उल्लास और आनन्द था कि उसने दुश्मनों को इस प्रकार समाप्त कर दिया।

बहादुरी साबित करने के लिये दूसरे कैदियों के सामने उन्हें टूटी-फूटी हिन्दी में भद्दी और गन्दी गालियाँ दिया करता। कभी-कदास दो-चार ठोंकरे भी मार देता। आँखों से अंगार बरसते मगर वे मन मसोस कर रह जाते उनके दोनों हाथों और पैरों में लोहे की मोटी-मोटी भारी बेड़ियाँ पड़ी थीं।

कैदियों के साथ रहने के कारण अलबर्ट बहुत सी देशी गालियाँ सीख गया था। एक दिन बड़े हो भद्दे तरीके से उसने जुहारजी को माँ-बहन की गाली दी। अपमान और क्रोध के आवेश में वे उछल पड़े, हाथ-पैरों की जंजीरें झनझना उठी। दाँत पीसते हुए उन्होंने कहा, "अगर मैंने राजपूतनी का दूध पिया है तो इसका बदला तुझसे लूंगा, तेरे वंश को मिटाकर।"

अलबर्ट आग बबूला हो उठा। उसने जुहारजी की इतनी बुरी पिटाई की कि उनका सारा बदन सूज गया। इतना ही के घावों पर उसने सबके सामने पेशाब भी किया।

खबरें जेल की ऊँची और मोटी दीवारों के बाहर फैलीं और बढ़ चढ़ कर उनके साथियों के पास पहुँची। उन सबकी एक गुप्त बैठक हुई। चार आदमियों को जुहारजी को जेल से बाहर निकालने का भार दिया गया। योजना बना ली गयी और इसकी खबर जेल के अन्दर उन तक पहुँचा दी गयी।

अमावस की अंधेरी रात, घनघोर वर्षा। निश्चित समय पर चारों साथी जेल की दीवार के किनारे पहुँचे। कमन्दें डाल दी

प्रतिशोध

राजस्थान में डूंगजी जुहारजी नाम के दो धाड़ैतों का उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बड़ा आतंक था। उनके नाम से ही लोग ... थे। सैकड़ों आदमियों की बारात को वे दोनों दो-चार

गोगा-बापा और उसके वंशजों की पुण्य कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। उनका यशोगान उत्तर भारत के हर व्यक्ति की जबान पर आज भी है। भाद्र मास में गोगामढ़ी में उनकी पुण्य-स्मृति में एक बड़ा मेला लगता है। मुहम्मद ने अपनी बची हुई सेना को सँभाल कर किस प्रकार जालौर-मारवाड़ के रास्ते से सोमनाथ पर हमला किया, यह कथा देश के इतिहास में प्रामाणिक रूप से उल्लिखित है।

❀

प्रतिशोध

राजस्थान में डूंगजी जुहारजी नाम के दो धाड़ैतों का उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बड़ा आतंक था। उनके नाम से ही लोग थर्राते थे। सैकड़ों आदमियों की बारात को वे दोनों दो-चार साथियों के साथ लूट लेते थे। परन्तु एक बात का उनके नियम था कि ब्राह्मण और अछूतों को कभी नहीं छेड़ते। कभी-कभी दूसरी जाति के लोग भी अपने को ब्राह्मण बताकर बच जाते। यह सब जानते हुए भी इसलिये उन्हें छोड़ देते कि कहीं भूल से भी ब्रह्महत्या का पाप न पड़े। इसके आलावा, ससुराल से पीहर जाती हुई लड़की को भी वे कभी नहीं सताते।

सन् १८४९-५० के आसपास की बात है। एक बार आगरे के पास जुहारजी पकड़े गये। कड़े पहरे में उन्हें वहाँ के केन्द्रीय कारागार में रक्खा गया। उस जेल का सुपरिंटेन्डेन्ट था एक अंग्रेज। नाम था अलबर्ट, भयंकर क्रूर और परम दाम्भिक। कैदियों को नाना प्रकार की अमानुषिक यन्त्रणा देकर उन्हें सताने में उसे बड़ा मजा आता था।

जुहार जी के बारे में उसने बहुत कुछ सुन रक्खा था। अपनी कैद में उन्हें पाकर उसके मन की पाशविकता भड़क उठी।

बहादुरी साबित करने के लिये दूसरे कैदियों के सामने उन्हें टूटी-फूटी हिन्दी में भद्दी और गन्दी गालियाँ दिया करता। कभी-कदास दो-चार ठोकरें भी मार देता। आँखों से अंगार बरसते मगर वे मन मसोस कर रह जाते उनके दोनों हाथों और पैरों में लोहे की मोटी-मोटी भारी बेड़ियाँ पड़ी थीं।

कैदियों के साथ रहने के कारण अल्बर्ट बहुत सी देशी गालियाँ सीख गया था। एक दिन बड़े ही भद्दे तरीके से उसने जुहारजी को माँ-बहन की गाली दी। अपमान और क्रोध के आवेश में वे उछल पड़े, हाथ-पैरों की जंजीरें झनझना उठीं। दाँत पीसते हुए उन्होंने कहा, "अगर मैंने राजपूतनी का दूध पिया है तो इसका बदला तुझसे लूंगा, तेरे वंश को मिटाकर।"

अलबर्ट आग बबूला हो उठा। उसने जुहारजी की इतनी बुरी तरह से पिटाई की कि उनका सारा बदन सूज गया। इतना ही नहीं, उनके घावों पर उसने सबके सामने पेशाब भी किया।

ये खबरें जेल की ऊँची और मोटी दीवारों के बाहर फैलीं और बढ़ चढ़ कर उनके साथियों के पास पहुँचीं। उन सबकी एक गुप्त बैठक हुई। चार आदमियों को जुहारजी को जेल से बाहर निकालने का भार दिया गया। योजना बना ली गयी और इसकी खबर जेल के अन्दर उन तक पहुँचा दी गयी।

अमावस की अंधेरी रात, घनघोर वर्षा। निश्चित समय पर चारों साथी जेल की दीवार के किनारे पहुँचे। कमन्दें डाल दी

गयों। जुहारजी ने अन्य वंदियों के कन्धों पर चढ़कर छोरें पकड़ लीं। साथियों ने वाहर से रस्से खींचे। दीवार लांघ कर वे वाहर आ गए।

अगले दिन जब अलबर्ट को पता चला तो उसके हाथ के तोते उड़ गये। उसकी कैद से निकल जाना मामूली वात नहीं थी। अपनी शान और इज्जत पर पहला प्रहार लगा देख तिलमिला उठा, मन में भय भी हुआ। "इसका वदला लूँगा, तेरे वंश को मिटा कर" ये शब्द वार-वार उसके कानों मे गूँज उठते। उसने पता लगाने को वहुत कोशिशें की। भेदिये छोड़े, इनाम की घोषणा की, गाँव उजाड़े, वेगुनाह लोगों को वहुत सताया, मगर डूंगजी-जुहारजी पकड़ में न आये; उनका कोई भी सुराग न मिल सका। आये दिन सरकारी खजाने लूटे जाने लगे। साथ के सिपाहियों मे इतना आतंक फैल गया कि वे इनका नाम सुनते ही माल-असवाव छोड़कर भाग खड़े होते।

जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के घर के आसपास छाया की तरह उनके आदमी मँडराने लगे। वह भी सतर्क रहने लगा। एक रात, पत्नी और वच्चे के साथ वह किसी जलसे मे जा रहा था। वग्घी के आगे-पीछे हथियारवन्द सिपाही घोड़ों पर थे। सुनसान सड़क, सनसनाती हवा चल रही थी। काफी दूर निकल जाने पर कुछ देहाती आग तापते मिले। गाड़ी इनके पास से होती हुई थोड़ी ही आगे वढ़ी होगी कि आँधी के वेग से साहव के सिपाहियों पर वे देहाती झपट पड़े। एक ने वग्घी पर चढ़ कर अलवर्ट की पिस्तौल

छीन ली। सिपाही भाग चुके थे, कोचवान को धक्के देकर नीचे गिरा दिया गया। गाड़ी लेकर वे बीहड़ जंगल के रास्ते बढ़ने लगे। साहब को अचानक के हमले से यह पता नहीं चला कि वे डूगजी-जुहारजी के साथी हैं। वह चिल्ला-चिल्ला कर गालियाँ बक रहा था। अगले दिन फाँसी पर लटकाने की धमकी दे रहा था। इधर, उसके हाथ-पैर मजबूत रस्सियों से बाँधे जा चुके थे पत्नी सिमटी सी एक कोने में बैठी थी, बच्चा उसकी गोद में था।

आगरे से थोड़ी दूर जमुना और चम्बल की कटान के इतने गहरे खड्ड है कि उसमें हाथी भी छिप सकते है। इन्हीं के आस-पास की एक सड़क के किनारे गाड़ी खड़ी हुई। अलबर्ट और उसकी पत्नी की आँखों पर पट्टियाँ बांध दी गयीं और उन्हें पैदल ले जाने लगे। काफ़ी घुमावदार और ऊँची-नीची जगह थी। कहाँ से जाया जा रहा है, इसका अन्दाज तक लगाना सम्भव न था। एक निर्जन स्थान पर पहुँच कर उनकी पट्टियाँ खोल दी गयी। गुफ़ानुमा एक मकान के अन्दर पहुँच कर अलबर्ट ने देखा, मशालों की रोशनी के बीच एक ऊँची चौकी पर बैठे थे डूगजी-जुहारजी। उनके इर्दगिर्द हाथों में भाले, तलवारें और बन्दूकों से लैस बीस-पच्चीस व्यक्ति आदेश की प्रतीक्षा में थे।

अलबर्ट को देखकर जुहारजी के ओठों पर मुस्कुराहट खेल गयी। उन्होंने कहा, "आइये अलबर्ट साहब, बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए।" फिर गम्भीर गूँजती आवाज में उन्होंने कहा, "साहब, हम तुम्हारी क़ैद में थे, तुम्हारे कानून के लिहाज से सजा

भुगत रहे थे। बेड़ियों में भी जकड़े थे। फिर भी, तुमने बिना कारण हमारा अपमान किया!" इसकी ओर उँगली उठाकर कड़कती आवाज में बोले, "तुमने हमारी माँ-बहनों को गालियाँ दीं और हमारे घावों पर सब के सामने पेशाब किया!!"

साहब का कंठ तो इन्हें देखते ही सूख चुका था। उनकी आवाज से उसकी घिग्घी बँध गयी।

जुहारजी ने हँसकर कहा, "कायर मरने से इतना डरता है? हमने सुना था कि अंग्रेजों की कौम बहादुर होती है, वे मरना जानते हैं। ऐसा लगता है, जरूर तुम उनमें से किसी नीच जाति के हो।"

जुहारजी ने साथियों की तरफ देखा। अभिप्राय समझकर उन्होंने राय दी कि अलबर्ट के शरीर को लोहे की गरम सलाखों से दागकर उसे भूखे भेड़ियों के बीच छोड़ दिया जाय। इस तरह दो-चार घंटों में इसके लोथड़े नुच जायेंगे और धीरे-धीरे प्राण भी निकल जायेंगे। इसकी पत्नी और बच्चे को पहले ही इसके सामने गोली से उड़ा दिया जाये।

अब जुहारजी ने बड़े भाई डूगजी की ओर देखा। उनका निर्देश ही अन्तिम आदेश था। उन्होंने संयत भाव से कहा, "उस दिन तुमने इसके वंश को नाश करने का व्रत लिया था। इसलिये इसके पुत्र को मार डालना भी उचित है। किन्तु, इस तीन वर्ष के अबोध बालक का कसूर क्या है? अब रही इसकी पत्नी। सो, अब तक हमने किसी स्त्री की हत्या नहीं की। मेरी राय है कि इसे वापस

सकुशल भेज दो। बच्चे को अपने पास रखकर उसकी ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाये कि इस प्रकार के घृणित अंग्रेजों से बदला लेने वाले सेनानियों मे हमारे एक विश्वस्त साथी की संख्या बढ़े। इस तरह, यह बच्चा इसका उत्तराधिकारी नही रहेगा। इसके गुण-दोष भी नही सीखेगा। वह हमारा होगा, हमारा रहेगा। इसका वंश ही मिट जावेगा। जहॉ तक अलबर्ट को मारने का सवाल है, दूसरों मे दहशत पैदा करने के लिये दुश्मन को क्रूरता से मारा जाता है। इसलिये, जिस बेरहमी से इसने और इसके तबके के लोगों ने हमारे देशवासियों का अपमान किया है, उनका खून चूसा है। उसका नमूना जरूर दिखाना चाहिये।"

थोड़े दिनों बाद, आगरे के अंग्रेज मुहल्ले में अलबर्ट की क्षत-विक्षत लाश टंगी मिली। ऑखों की जगह दो जले गड्ढे थे और गले में तख्ती झूल रही थी। इस पर लिखा था, "आगरा सेन्ट्रल जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट अलबर्ट जिसने बहुत से बेकसूरों को सताया और देशभक्तो की ऑखों में गरम सलाखें डलवाई।"

आज का विद्यार्थी

दिल्ली से ट्रेन में कलकत्ते जा रहा था। डिब्बे में मेरे सिवाय एक नव-विवाहित दम्पति थे और चौथी सीट खाली थी। पत्नी के संकोच को देखकर ऐसा लगता था कि वह प्रथम बार ससुराल जा रही है।

अलीगढ़ स्टेशन पर गाड़ी ठहरी। डिब्बे के सामने बीस-पच्चीस युवक हाथों में हाकी स्टिक लिये हुए आकर खड़े हो गये और घूरने लगे। थोड़ी देर बाद गाड़ी चलने लगी तो देखता हूँ कि वे सब डिब्बे में घुस आये और आपस में भद्दा हँसी-मजाक करने लगे। युवती शर्मिन्दा होकर एक तरफ़ बैठ गयी, परन्तु उनको तो जान बूझ कर बात बढ़ानी थी इसलिए उर्दू की अश्लील गजलें और कव्वाली गानी शुरू कर दी। युवक ने आपत्ति की तो झगड़ा करने पर उतारू हो गये, बेचारी लड़की रोने लग गयी।

मैं थोड़ी देर तो यह सब देखता रहा परन्तु जब इनकी हर-कतें शालीनता की सीमा को पार करने लगीं तो इनसे बहस करना फिजूल समझ कर गाड़ी की जंजीर खींच ली। गाड़ी रुकने पर गार्ड तथा टिकट निरीक्षक के अतिरिक्त और भी बहुत से यात्री वहाँ आकर इकट्ठे हो गये। सारी बातों को सुनकर

सबने नौजवानों को बुराभला कहा, परन्तु उन्हें इससे किसी प्रकार की झिझक या शर्म महसूस नहीं हुई। खैर, उस समय बात वहीं समाप्त हो गयी और वे सब दूसरे डिब्बे में चले गये। हमारे पास टिकट निरीक्षक आकर बैठ गया और कहने लगा कि ये सब यहाँ के कालेजों के विद्यार्थी है। रविवार तथा अन्य छुट्टी के दिन इनके लिए ऐसी हरकतें साधारण-सी बात हो गयी है। जहाँ कहीं भले घर की बहू-बेटी को देखते हैं कि आवाज कसने लगते हैं, मौका पाकर छेड़खानी भी कर लेते हैं। इनसे टिकट माँगने पर लड़ाई-झगड़ा करने पर उतारू हो जाते हैं और कभी-कभी मारपीट तक भी कर बैठते हैं। ये प्रायः दस-पन्द्रह की टोली में होते हैं और हम अकेले; इसलिए हमारे पास सिवाय उच्च-अधिकारियों को शिकायत करने के दूसरा चारा नहीं रह जाता।

मुझे कुछ दिनों पहले समाचार-पत्रों में पढ़ी हुइ लखनऊ की एक घटना की याद आ गयी कि वहाँ के कालेजों के लड़कों ने स्कूल और कालेज जाती हुई लड़कियों को बहुत तग करना शुरू कर दिया था और अन्त में उनमें से कई-एक को पुलिस द्वारा गिरफ्तार करना पड़ा। आये दिन की तोड़-फोड़, हड़ताल, प्रोफेसरों से दिल्लगी और कभी-कभी धमकी देना आदि इनके लिए साधारण बातें है।

सोचने लगा, इनके माता-पिता दूसरे जरूरी खर्चों में कटौती करके इनको उच्च-शिक्षा के लिए कालेजों में भेजते हैं।

सबने नौजवानों को बुराभला कहा, परन्तु उन्हें इससे किसी प्रकार की झिझक या शर्म महसूस नहीं हुई। खैर, उस समय बात वहीं समाप्त हो गयी और वे सब दूसरे डिब्बे में चले गये। हमारे पास टिकट निरीक्षक आकर बैठ गया और कहने लगा कि ये सब यहाँ के कालेजों के विद्यार्थी है। रविवार तथा अन्य छुट्टी के दिन इनके लिए ऐसी हरकतें साधारण-सी बात हो गयी हैं। जहाँ कहीं भले घर की बहू-बेटी को देखते है कि आवाज कसने लगते हैं, मौका पाकर छेड़खानी भी कर लेते हैं। इनसे टिकट माँगने पर लड़ाई-झगड़ा करने पर उतारू हो जाते है और कभी-कभी मारपीट तक भी कर बैठते हैं। ये प्रायः दस-पन्द्रह की टोली में होते हैं और हम अकेले ; इसलिए हमारे पास सिवाय उच्च-अधिकारियों को शिकायत करने के दूसरा चारा नहीं रह जाता।

मुझे कुछ दिनों पहले समाचार-पत्रों में पढ़ी हुइ लखनऊ की एक घटना की याद आ गयी कि वहाँ के कालेजों के लड़कों ने स्कूल और कालेज जाती हुई लड़कियों को बहुत तग करना शुरू कर दिया था और अन्त में उनमें से कई-एक को पुलिस द्वारा गिरफ्तार करना पड़ा। आये दिन की तोड़-फोड़, हड़ताल, प्रोफेसरों से दिल्लगी और कभी-कभी धमकी देना आदि इनके लिए साधारण बातें हैं।

सोचने लगा, इनके माता-पिता दूसरे जरूरी खर्चों में कटौती करके इनको उच्च-शिक्षा के लिए कालेजों में भेजते हैं।

यह तो हुई गाँवों और कस्बों के साधारण विद्यार्थियों की बात। कलकत्ते और बम्बई आदि बड़े शहरों के धनिकों के अधिकांश लड़कों की तो शिक्षा-प्रणाली और भी विचित्र है। मुझे एक शिक्षा-शास्त्री एवं कई संस्थानों के संचालक ने बताया कि इनके लड़कों को पहुँचाने, लेने और नाश्ता देने के लिए बड़ी-बड़ी कारें स्कूलों और कालेजों में दिन भर आती रहती है। इनकी मैट्रिक तक की पढ़ाई और परीक्षा स्कूलो में ही होती है। इसलिए परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए पहले से ही सारी व्यवस्था कर ली जाती है। कालेजों में जाने के बाद इनकी शान-शौकत और भी बढ़ जाती है।

बड़ी-बड़ी मोटरें, बीसों सूट, नये-नये दोस्त और कभी-कभी उनके साथ क्लबों में शराब और नाच भी! परीक्षा के समय से पहले जितने भी सम्भावित परीक्षक होते हैं उनको ट्यूशन पर रख लिया जाता है। यहाँ तक कि कुछ लड़कों को पढ़ाने के लिए हजार बारह सौ रुपये मासिक ट्यूशन फीस लग जाती है। खैर, डिग्री तो कालेज में भी इन्हें किसी-न-किसी प्रकार प्राप्त हो जाती है, परन्तु वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि तो शायद ही होती है।

हमारे पुराने ग्रन्थों में गुरुकुलों की चर्चाएँ हैं कि राजा और गरीब दोनों के लड़के आश्रम में रहकर एक साथ पढ़ते थे। बारी-बारी से सबको आश्रम का काम करना पड़ता था, इसमें भिक्षाटन भी शामिल था। इसके बहुत समय बाद के भी तक्ष-

शिला और नालन्दा के विद्या मन्दिर भारत की शिक्षा-प्रणाली की महत्ता के जीते-जागते उदाहरण रहे हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और श्री गोपालकृष्ण गोखले की याद आती है कि उनके पास न तो पढ़ने को पुस्तकें ही थीं और न रोशनी के लिए तेल ही। इधर-उधर से पुस्तकें माँगकर ले आते और सड़क की रोशनी में पढ़ते रहते। इसके बावजूद वे प्रसिद्ध विद्वान् ही नहीं अपितु आदर्श पुरुष भी हुए। और याद आती है स्वामी दयानन्द सरस्वती की जो वेद, वेदांग और उपनिषद आदि की शिक्षा प्राप्त करके अपने गुरु विरजानन्द जी से विदा लेने लगे तो गुरु दक्षिणा में थोड़े से लौंग ही दे पाये थे। उसी दक्षिणा से प्रसन्न होकर गुरु ने उनको हृदय से आशीर्वाद दिया था। ये भी पिछली शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ-ही-साथ महान सुधारक भी हुए।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही भारतीय शिक्षा का रूप बदलने लगा। यहाँ तक की हमारे इतिहास को भी स्मिथ और मर्सडन ने पूरे तौर पर बदल दिया। प्रसिद्ध राजनितिज्ञ और शिक्षा-शास्त्री मैकाले को इङ्गलैंड जाने पर भारत में प्रचलित की गयी शिक्षा के बारे में पूछा गया तो उसने कहा था कि जो काम भारत में हमारी बन्दूक और तोपें नहीं कर सकी हैं, वह काम हमारी चालू की गयी शिक्षा-प्रणाली पूरा कर देगी अर्थात्

भारतीयों का रंग तो काला ही रहेगा परन्तु मन से वे अंग्रेज बन जायँगे।

आज एक सौ वर्ष बाद हम मैकाले की भविष्यवाणी की सत्यता महसूस कर रहे हैं। फर्क केवल इतना ही है कि आज से चालीस-पचास वर्ष पहले के कालेजों के विद्यार्थियों को अंग्रेजी भाषा का ठोस ज्ञान हो जाता था जबकि आज उन्हें न तो अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हो पाता है और न मातृभाषा का ही।

डिग्री और ज्ञान अलग-अलग चीजें हैं। मेरे एक बुजुर्ग मित्र हैं जिन्होंने केवल अंग्रेजी में प्राइमरी रीडर ही पढ़ी थी परन्तु वे अब तक नियमित रूप से कुछ-न-कुछ पढ़ते रहते हैं। हिन्दी और अंग्रेजी के तो माने हुए विद्वान् हैं ही, संस्कृत और फ्रेञ्च भी जानते हैं।

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त कभी स्कूल नहीं गये। परन्तु उनके काव्य-ग्रन्थों पर शोध करके कई व्यक्ति डाक्टरेट की उपाधि ले चुके है। एक बार हमें बंगला महाकाव्य वृत्रासुरवध सुना रहे थे। उनके स्पष्ट छन्द-ताल युक्त अजस्र बंगला कविता पाठ को सुनकर वहाँ बैठे हुए विद्वान् अचंभित और आत्मविभोर हो गये।

हम स्कूलों और कालेजों की ऊँची पढ़ाई के विरुद्ध नहीं हैं, क्योंकि आज फिर से गुरुकुल की पढ़ाई न तो व्यावहारिक ही होगी और न वांछनीय ही। परन्तु साथ ही यह भी कहना

चाहेंगे कि इस समय की शिक्षा-प्रणाली में आमूल, परिवर्तनों की आवश्यकता है। शिक्षा का अर्थ कुछ पुस्तकों का पढ़ लेना या डिग्रियाँ हासिल कर लेना ही नहीं है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य तो अच्छे नागरिक बनना है। अक्षर ज्ञान या पुस्तकीय विद्या तो उसका एक साधारण-सा पक्ष है। नैतिक आधार और नैतिकता के बिना कोई शिक्षा पूरी नहीं कही जा सकती। हमें युवकों को सुरक्षित के साथ-साथ सु—नागरिक बनने पर भी ध्यान देना होगा। इसमें जनता और सरकार की जिम्मेदारी तो है ही परन्तु इसके लिए शिक्षकों का उत्तरदायित्व सबसे अधिक है।

खेद है कि आज के अधिकांश शिक्षक प्राइवेट ट्यूशनों पर ज्यादा ध्यान देते हैं और स्कूलों या कालेजों में बहुत कम पढ़ाते हैं। इनमें से कई-कई तो ६-७ ट्यूशन तक करते हैं। कालेज और स्कूल की अध्यापकी तो एक प्रकार से ट्यूशनों को प्राप्त करने के लिए रहती है। यही नहीं बड़े शहरों में तो शिक्षक ही धनी विद्यार्थियों को पास कराने की व्यवस्था भी कर देते हैं। अभी हाल ही में कलकत्ते की एक प्रसिद्ध शिक्षण-संस्था में इसके लिए ग्यारह शिक्षकों को कार्य-मुक्त कर दिया गया था।

यह सब लिखने का हमारा उद्देश्य आज के युवकों की आलोचना करना मात्र नहीं है, वरन् उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना है कि वे एक महान देश के उत्तराधिकारी हैं इसलिए वे स्वयं और उनका अचार-व्यवहार जैसा होगा वैसा ही देश का रूप भी बनेगा।

भारतीयों का रंग तो काला ही रहेगा परन्तु मन से वे अंग्रेज बन जायँगे।

आज एक सौ वर्ष बाद हम मैकाले की भविष्यवाणी की सत्यता महसूस कर रहे है। फर्क केवल इतना ही है कि आज से चालीस-पचास वर्ष पहले के कालेजों के विद्यार्थियों को अग्रेजी भाषा का ठोस ज्ञान हो जाता था जबकि आज उन्हें न तो अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हो पाता है और न मातृभाषा का ही।

डिग्री और ज्ञान अलग-अलग चीजें हैं। मेरे एक बुजुर्ग मित्र है जिन्होंने केवल अंग्रेजी में प्राइमरी रीडर ही पढ़ी थी परन्तु वे अब तक नियमित रूप से कुछ-न-कुछ पढ़ते रहते है। हिन्दी और अंग्रेजी के तो माने हुए विद्वान् हैं ही, संस्कृत और फ्रेञ्च भी जानते है।

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त कभी स्कूल नहीं गये। परन्तु उनके काव्य-ग्रन्थों पर शोध करके कई व्यक्ति डाक्टरेट की उपाधि ले चुके हैं। एक बार हमें बंगला महाकाव्य वृत्रासुरवध सुना रहे थे। उनके स्पष्ट छन्द-ताल युक्त अजस्र बंगला कविता पाठ को सुनकर वहाँ बैठे हुए विद्वान् अचंभित और आत्मविभोर हो गये।

हम स्कूलों और कालेजो की ऊँची पढ़ाई के विरुद्ध नहीं है, क्योंकि आज फिर से गुरुकुल की पढ़ाई न तो व्यावहारिक ही होगी और न वांछनीय ही। परन्तु साथ ही यह भी कहना

चाहेंगे कि इस समय की शिक्षा-प्रणाली में आमूल, परिवर्तनों की आवश्यकता है। शिक्षा का अर्थ कुछ पुस्तकों का पढ़ लेना या डिग्रियाँ हासिल कर लेना ही नहीं है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य तो अच्छे नागरिक बनना है। अक्षर ज्ञान या पुस्तकीय विद्या तो उसका एक साधारण-सा पक्ष है। नैतिक आधार और नैतिकता के बिना कोई शिक्षा पूरी नहीं कही जा सकती। हमें युवकों को सुरक्षित के साथ-साथ सु—नागरिक बनने पर भी ध्यान देना होगा। इसमें जनता और सरकार की जिम्मेदारी तो है ही परन्तु इसके लिए शिक्षकों का उत्तरदायित्व सबसे अधिक है।

खेद है कि आज के अधिकांश शिक्षक प्राइवेट ट्यूशनों पर ज्यादा ध्यान देते है और स्कूलों या कालेजों में बहुत कम पढ़ाते हैं। इनमें से कई-कई तो ६-७ ट्यूशन तक करते हैं। कालेज और स्कूल की अध्यापकी तो एक प्रकार से ट्यूशनों को प्राप्त करने के लिए रहती है। यही नहीं बड़े शहरों में तो शिक्षक ही धनी विद्यार्थियों को पास कराने की व्यवस्था भी कर देते हैं। अभी हाल ही में कलकत्ते की एक प्रसिद्ध शिक्षण-संस्था में इसके लिए ग्यारह शिक्षकों को कार्य-मुक्त कर दिया गया था।

यह सब लिखने का हमारा उद्देश्य आज के युवकों की आलोचना करना मात्र नहीं है, वरन् उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना है कि वे एक महान देश के उत्तराधिकारी हैं इसलिएवे स्वयं और उनका अचार-व्यवहार जैसा होगा वैसा ही देश का रूप भी बनेगा।

यह भूख—यह अय्यासी

एक दिन मेरे बँगले के माली ने आकर कहा कि दूसरा माली कई दिनों से बीमार है, काम पर नहीं आता। उस समय बात आयी-गयी हो गयी। थोड़े दिन बाद जब फिर कानपुर आया तो देखा कि कई जगह पैबन्द लगी हुई मैली साड़ी में एक बीमार महिला कोने में खड़ी है। नौकर ने बताया कि माली ज्यादा बीमार है—यह उसकी पत्नी है। उसके सूने-सूने चेहरे पर घबराहट, डर और दैन्यता की छाया स्पष्ट नजर आ रही थी। आयु शायद ३२-३३ की थी, परन्तु उसे ४५ से ५० की भी कह सकते थे।

बँगले के पीछे मालियों और नौकरों की कोठरियाँ थीं। वहाँ जाकर मैंने देखा कि माली और उसके तीन दुबले-पतले बच्चे, ८'×६' की एक कोठरी में फटी हुई टाट पर बैठे हुए थे। उन सबके ओढ़ने के लिये एक जीर्ण-शीर्ण पैबन्द लगी हुई गुदड़ी थी। उस चटाई और एक गुदड़ी में वे जनवरी की सर्दी को किस प्रकार सहन कर रहे थे—यह बात समझ से परे की थी। इससे भी ज्यादा आश्चर्य यह जानकर हुआ कि माली के ४२) मासिक वेतन में ही पाँचों के पेट भरने का, तन ढकने के कपड़ों का और दवा का बजट भी था।

दूसरे दिन हमारे अस्पताल के बड़े डाक्टर को बुलाकर माली और उसकी स्त्री को उसके सुपुर्द किया। कई प्रकार की जाँच-पड़ताल के बाद पता चला कि माली को तो पेट का यक्ष्मा है और लगातार खुराक की कमी के कारण स्त्री की भी जीवनी शक्ति बहुत कम रह गयी है। जैसे भी थोड़ा बहुत बना उसकी व्यवस्था की—सरकारी अस्पताल में भर्ती करा दिया। दवा और साधारण पथ्य से शायद उसकी जान भी बच जायगी। उन दो-चार दिन काममें मन नहीं लगा। मालीके परिवार का चित्र आँखों और मन दोनों के सामने घूमने लगा। सोचने लगा कि इनकी प्रति व्यक्ति आय १००) रु० वार्षिक से भी कम है। जबकि देश की औसत आय ४६०) है और किसी-किसी व्यक्ति की तो एक लाख तक है—कारण स्पष्ट है, चूँकि न तो उनका कोई लेबर यूनियन है और न वे किसी प्रकार का विरोध ही कर सकते हैं; इसलिए तिलतिल करके मौत के मुँह की ओर बढ़ते जा रहे हैं। मुझे स्वर्गीय डा० लोहिया के संसद में कहे हुए शब्द याद आ गये, जिन्होंने देश के कुछ व्यक्तियों की निम्नतर आय चार-पाँच आने बतायी थी।

उन्हीं दिनो एक धनी घराने में लड़की की शादी थी। बारात किसी दूसरे गाँव से आयी थी—मुझे भी एक-दो बार वहाँ जाना पड़ा। लोगों ने बताया कि विवाह पर तीन चार लाख खर्च होगा। खैर, अपनी लड़की को सामर्थ्य के अनुसार सभी देते हैं। परन्तु जो ऊपरी खर्च और तड़क-भड़क वहाँ देखने में

आयी—वह अभूतपूर्व थी। बंगले के सहन में बड़े सारे पंडाल को फूलों से सजाया गया था। वृक्षों पर हजारों हरे-लाल जगमगाते बल्ब मैसूर के वृन्दावन गार्डेन की याद दिला रहे थे। लखनऊ से शहनाई पार्टी बुलायी गयी थी। बाराती तथा अन्य आमन्त्रित व्यक्ति १०००-१२०० से कम नहीं थे। उनके लिए चाय, काफी, फलों के रस, सूखे मेवे और कई प्रकार की मिठाइयों पर भी बहुत खर्च किया गया था।

आजकल विवाह में घुड़चढ़ी के समय के सारे कार्य आमतौर पर २ घण्टे में समाप्त हो जाते हैं, परन्तु वहाँ नाच-गाने और कव्वाली गजलों का इन्तजाम था—इसलिए रात के १२ बज गये।

दूसरे दिन सज्जनगोठ की जीमनवार थी। बड़े-बड़े थालों में नाना-प्रकार के पकवान और ८-१० कटोरियों में कई तरह की साग-सब्जी सजाकर रख दी गयी। ज्यादातर लोगों के लिए उतना सब खा पाना सम्भव नहीं था—इसलिए थाली में जूठन रहना स्वाभाविक ही था। मुझे शिकागो के पामर्स हाउस नामके प्रसिद्ध रेस्तराँ में अपने अमेरिकन मित्र द्वारा दिये गये भोज की याद आ गयी। बहुत प्रकार की मिठाइयाँ और फलोंको सजाकर रख दिया गया था। जब हमने कहा कि इन सबका एक-तिहाई कर दीजिये, तो हँसकर मिस्टर लेजी ने कहा था कि आप जितना चाहे खा लीजिये—बचा हुआ नष्ट कर दिया जायेगा—"अधिकता हमारी समस्या है।" परन्तु यह तो विश्व

के सबसे धनी देश अमरीका की बातें है, जहाँ चीजों के मूल्य का सन्तुलन रखने के लिए कभी-कभी गल्ले और रुई को समुद्र में डुबो दिया जाता है—न कि हमारे भारत की, जहाँ कि हजारों-लाखों परिवार के बच्चों को फटे चिथड़े और आधा पेट खाना भी मय्यसर नहीं होता। सोचने लगा कि १०० वर्ष पहले मार्क्स ने भी शायद इसी तरह की विपरीत घटनाएँ देखी थी, जिससे उसे "कैपिटल" लिखना पड़ा। यह सच है कि विषमता सारे विश्व में है—परन्तु यह भी सच है कि जब वह हमारे यहाँ की तरह सीमा से बढ़ जाती है तो फिर फ्रांस, रूस और चीन की-सी राज्यक्रान्ति अवश्यम्भावी हो जाती है। उस समय वहाँ की भूखी नंगी जनता उलट पड़ी तो वहाँ के सम्राटों का सर्वनाश तो हुआ ही—साथ ही उनके निरीह बच्चों तक को जान से हाथ धोना पड़ा था। इतिहास की पुनरावृत्ति तो होती ही है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि फ्रास, रूस और चीन में जो सर्व सत्तावान सम्राट; जार और राष्ट्रपति थे, जिनके पास फौजें तोपें और बन्दूकें थीं, जब कि हम तो केवल रुपयों के जोर पर ये भौंडे प्रदर्शन और खर्चे कर रहे हैं।

दीवार पर स्पष्ट लिखा हैं, परन्तु खेद है कि हम पढ़ नहीं पा रहे हैं, क्योंकि हमने जान-बूझकर अपनी आँखें बन्द कर रखी हैं।

❀

समाज की नयी पीढ़ी

बङ्गाल के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विमल मित्र ने अपनी पुस्तक "साहब बीवी गुलाम" में आजसे सौ सवासौ वर्ष पहले के धनी बङ्गाली व्यवसायी युवको के दैनिक जीवन की झाँकी उपस्थित की है।

उस समय का अधिकांश वाणिज्य-व्यवसाय मल्लिक, सील, लाहा और बैसाक आदि बङ्गाली परिवारों में बँटा हुआ था। उनके यहाँ पाट और गल्ले आदि की आढ़त के सिवाय जहाजों पर माल लादने-उतारने के ठेके, फौज को रसद सप्लाई और विलायती आफिसों की बेनियनशिप थी। उनके पुत्रों ने जमे-जमाये व्यापार को सम्हालना छोड़ दिया और अधिकांश समय शराब और ऐय्याशी में देने लगे। धीरे-धीरे सारा का सारा कारबार नष्ट हो गया।

पूर्वजों ने समझदारी से काम लिया और अधिकाश सम्पत्ति को देवोत्तर कर दिया। इसलिए सब कुछ चले जाने पर भी परिवार के भूखे रहने की नौबत नहीं आयी।

उसके बाद खत्री समाज की बढ़ोतरी हुई और विदेशी फर्मों की बेनियनशिप के सिवाय दूसरे कई प्रकार के व्यापार उनकी कोठियों में होने लगे। कुछ दिनोंतक तो उनकी समृद्धिमें चार

चाँद लगे रहे परन्तु आगे जाकर वही दशा उनकी भी हुई। प्रति शुक्रवार को चुने हुये मुसाहिबों को लेकर, हर प्रकार की विलास सामग्री के साथ लिलुआ या दमदम के बगीचों में जाते तथा सोमवार की सुबह अलसाये हुए मन और थके हुए तन के साथ वापस आते। बिना सम्हाल के धीरे-धीरे कारबार बिगड़ने लगा। आफिसों के बड़े साहबों द्वारा बार-बार चेतावनी देने का भी कोई असर नहीं हुआ। आखिरकार बेनियनशिप उन राजस्थानी युवकों को मिली जो उनकी आफिसों में पुरजा चुकाने का या दलाली का काम करते थे। इन्होंने अपने पुराने मालिकों के चढ़ाव-उतार को देखा था इसलिए विलसिता से अलग रहकर कड़ी मेहनत और ईमानदारी से काम करने लगे। अतएव उनकी आफिसों का काम भी बहुत आगे बढ़ा और साथ ही समाज की प्रतिष्ठा भी।

उसी का फल है कि आज देश का अधिकांश वाणिज्य एवं उद्योग उनकी सन्तानों के हाथमे है। इतने बड़े औद्योगिक साम्राज्य के पीछे उस समाज का बहुत ही उज्ज्वल इतिहास है। आजसे सौ सवासौ वर्ष पहले जब न तो रेल थी और न पानी के जहाज ही, उस समय इनके पूर्वज बिना किसी सहारे के राजस्थान से बङ्गाल और असम की सुदूर यात्रा, अनेक प्रकार के कष्ट सहते हुए चार-पाँच महीने में पूरी करते थे और छः आठ वर्ष की लम्बी मुसाफिरी के बाद वापस घर लौटते थे।

हमें भी बहुतसे ऐसे महापुरुषों को देखने-सुनने का मौका

मिला है जो बहुत ही साधारण स्थिति से ऊँचे उठकर चोटी पर पहुँचे हैं।

सर्वप्रथम तो हमारे स्व० प्रधानमन्त्री श्री शास्त्रीजी का ही उदाहरण है जो यह कहने में कोई सकोच नहीं करते थे कि कई बार एक पैसा नाव के भाड़े का न होने के कारण उन्हें गंगा के उस पार से काशी में पढ़ने के लिए तैर कर जाना पड़ता था। इसी प्रकार इन्टूक के नेता—भूतपूर्व उपश्रममन्त्री और विशिष्ट संसद सदस्य—श्री आबिदअली भी एक कपड़े की मील में साधारण मजदूर थे।

व्यापारी समाजमें भी ऐसे कई उदाहरण मिल जायँगे। प्रसिद्ध चाय उत्पादक श्री हनुमानबक्स कनोई असम में आज से ६५ वर्ष पूर्व दर्जी का काम करते थे। उसके बाद उन्होंने एक छोटी सी मोदीखाने की दूकान की थी। कुछ वर्षों बाद थोड़ी सी जमीन में चाय की खेती की और मशीनों के अभाव में कड़ाहियों में ही चाय गर्म करके सुखाते थे। आज उनके फर्म का—कठिन परिश्रम और सच्चे व्यवहार के कारण—भारत के चाय उत्पादकों में विशिष्ट स्थान है। विदेशों से आये हुए चाय विशेषज्ञ भी उनके गणेशबाड़ी चाय बगीचे को देखने जाते हैं जिसमें प्रति एकड़ चाय का उत्पादन देश में सबसे ज्यादा है।

विश्व प्रसिद्ध डीजल और बिजली की मोटरों के एवं इञ्जिनों के निर्माता श्री किरलोस्कर भी एक साधारण कारखाने में मिस्त्री

थे और अनेक सुप्रसिद्ध कपड़े की मीलों के मालिक स्वर्गीय मफतलाल कपड़े की फेरी करते थे।

इन सब उदाहरणों से हमारा उद्देश्य नयी पीढ़ी के युवको के बारे में लिखना है। जिनके पास अपने पितामहो और पिताओं का अर्जित किया हुआ धन, यश और जमा-जमाया कारबार है, साथ ही विदेशों के अच्छे फर्मों से व्यापारिक एवं औद्योगिक सम्बन्ध भी। पर खेद की आजके अधिकांश धनी युवक पाँच दशक पहले के उन बंगाली और खत्री समाज की चाल-ढाल अपनाते जा रहे है जिनके बारे में हम पहले लिख चुके है। हाँ समय और साधन दोनों ही बदल गये है इसलिए ७०-८० वर्ष पहले के मौज-शौक के तौर-तरीकों मे फ़र्क जरूर आ गया है।

मैं नई दिल्ली मे विज्ञान-भवन के सामने के फ्लैट में रहता था। इस भवन में जलसे और चेम्बरों की मीटिंगें होती रहती है। वहाँ प्रायः ही देखता था कि कलकत्ते और बम्बई के युवक बहुत बड़ी-बड़ी फैसनेबुल मोटरों मे साथ में एक-दो पंजाबी सजे-सजाये युवकों को लिये हुए (जो उनके फर्मों के दिल्ली रिप्रेजेटेन्टिव होते हैं) उन मीटिंगों या जलसों मे शामिल होने को आते रहते थे। इनमे से कई जलसों में संसद-सदस्यों को भी बुलाया जाता था इसलिए उन लोगों से वहाँ मिलना हो जाता था। इसके सिवाय संसद या राष्ट्रपति भवन देखने के पास के लिए या और किसी काम से भी उनसे मिलना होता रहता था।

वैसे दिल्ली में प्राइवेट कारों का किराया ४५-५० रुपया प्रति दिन है परन्तु जिन बड़ी गाड़ियों को ये रखते हैं उनका ८०-९० रुपया किराया है। अशोक होटल जिसमें ये लोग ठहरते हैं उसका भी १००-१२५ रुपया प्रतिदिन पड़ जाता है। इसके सिवाय क्लबों, थियेटरों तथा अनेक प्रकार के अन्य खर्च अलग। चार-पाँच दिन की दिल्ली की एक यात्रा में, हवाई जहाज का किराया तथा अन्य सब खर्च मिलाकर दो-ढाई हजार तक लग जाते हैं। जिन मीटिंगों में ये जाते हैं उनमें न तो इनमें से अधिकांश को कोई पूछता ही है और न इनको वहाँ कुछ सीखने-समझने की जिज्ञासा ही होती है। इसके सिवाय अनेक प्रकार की दूसरी बातें भी सुनने को मिलती हैं, जिनका वर्णन यहाँ न करना ही अच्छा होगा।

कलकत्ते का एक युवक मिला, जिसके पिताजी से मेरा अच्छा परिचय था। उसकी सूट के बारे मे बात हुई तो पता चला कि ऊँट के बालों (Camel's hair) की है और कीमत २२००), २३००), रुपया! क्योंकि आयात के प्रतिबन्ध के कारण ऐसा कपड़ा भारत में बहुत कम आ पाता है। मैंने हिसाब लगाया कि उस समय एक सूट की लागत डेढ़ सौ धोती, गंजी और कुरतों के बराबर थी।

एक दिन एक युवक मित्र द्वारा ला-बला (La-belle) नाम के प्रसिद्ध रेस्तराँ पें निमंत्रित हुआ। सब मिलाकर ८-१० व्यक्ति होंगे, जिनमें दो-तीन उसके विदेशी व्यापारी मित्र भी थे। यह

जानते हुए भी कि ऐसी जगह में खाने-पीने की चीजों के वारे में पूछना सभ्यता से परे माना जाता है, फिर भी मन नहीं मानता और आमिष निरामिष के वारे में पूछ लेता हूँ। सूप के वारे में पूछा तो पता चला कि समुद्र के वीच में किसी टापू की चिड़िया के घोंसले का है; जो इस रेस्तराँ की विशेष तैयारी मानी जाती है। यह घोंसला आमिष है या निरामिष फिर से पूछना ठीक नहीं समझा और सूप नहीं लिया। खाने-पीने पर सारा खर्च करीव पाँच-सौ रुपया हुआ जिसमें आधा तो केवल चिड़ियों के घोंसले के सूप का ही था। मन में अपने को भी दोषी अनुभव करने लगा कि मेरे ऊपर भी तो पचास रुपये का खर्च आ गया।

इस वाइस सौ रुपये की ऊँट के वालों की सूट पहनने वालों तथा ५०) रुपये के चिड़ियों के घोंसले का सूप पीने वाले युवकों से यह कहने का मन होता है कि उनकी सही कीमत तो उसी हालत में आँकी जा सकती है जव कि वे अपने पूर्वजों की तरह या आजकल के दूसरे गरीव युवकों की तरह अनजानी जगह में जाकर कितना कमा पायेंगे।

मुझे इसी समाज का एक युवक कुछ दिनों पहले कलकत्ते की वेंटिक स्ट्रीट में मिला। नौकरी छूटने के वाद तीन सौ रुपयों की पूँजी से पुराने लोहे के टुकड़े सियालदह, विधान सरणी या इन्टाली से ठेले पर लादकर ५-६ मील प्रतिदिन पैदल चलकर

हावड़ा के किसी कारखाने में ले जाता है। वहाँ उनसे मोटरों के चक्कोंके ढक्कन बनवा कर दूसरे कारखाने में पालिश करवा कर यहाँ की दूकानों में बिक्री करता है। इस कड़ी मेहनत से उसे २५०)-३००) रुपया मासिक मिल जाते हैं। जिनमें से एक सौ रुपया यहाँ रहने और खाने-खर्च के बाद देकर डेढ़—दो सौ अपने गाँव भेज देता है, जहाँ उसकी स्त्री, माँ और तीन बच्चे हैं।

भारतीय जीवनका आदर्श सैकड़ों हजारों वर्षोंसे श्रम, संयम और संतोष का रहा है। साथ ही व्यक्ति-स्वातन्त्य के लिए भी हमें बहुत प्रकार के बलिदान करने पड़े हैं। इसलिए

समय बदला पर हम नहीं

आज बम्बई और कलकत्ते में आम-चर्चा है कि उद्योग-व्यापार मन्दा है। जमीनों और मकानों की कीमतें घट रही है—चीजों की बिक्री कम है, आदि आदि।

'अकाल में अधिक मास' की कहावत के अनुसार इस मन्दी के साथ-साथ राजस्थान के कुछ हिस्सों में भयंकर अकाल भी पड़ गया, जिससे हजारों पशु भूख और प्यास से मर जायँगे। भोजन की कमी के कारण मनुष्यों और बच्चों का शरीर घटकर कंकाल सदृश्य रह जायगा।

विभिन्न सेवा-संस्थाओंने वहाँ राहत का कार्य शुरू किया है और इसके लिए धनी-वर्ग थोड़ा बहुत दान भी दे देते हैं। परन्तु खेद है कि आज भी उनकी अपनी मौज-शौक के खर्चे में किसी प्रकार की कमी तो आयी ही नहीं—कुछ-न-कुछ बढ़ोतरी ही हुई है। अगर गाँव और पड़ोस के लोग पानी के बिना मर रहे हों तो तैरने के लिए पानी के तालाब को लोग किसी भी हालत में नहीं रहने देंगे। हाँ, सन् १९४३ में कलकत्ते की सड़कों पर लाखों व्यक्ति भूख से मर गये थे—जब कि सामने की दूकानों पर सैकड़ों मन मिठाई सजी रहती थी, परन्तु आज १९६९ है—न कि १९४३।

हावड़ा के किसी कारखाने में ले जाता है। वहाँ उनसे मोटरों के चक्कोंके ढक्कन बनवा कर दूसरे कारखाने में पालिश करवा कर यहाँ की दूकानों में बिक्री करता है। इस कड़ी मेहनत से उसे २५०)-३००) रुपया मासिक मिल जाते हैं। जिनमें से एक सौ रुपया यहाँ रहने और खाने—खर्च के बाद देकर डेढ़—दो सौ अपने गाँव भेज देता है, जहाँ उसकी स्त्री, माँ और तीन बच्चे है।

भारतीय जीवनका आदर्श सैकड़ों हजारो वर्षोंसे श्रम, संयम और संतोष का रहा है। साथ ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिए भी हमें बहुत प्रकार के बलिदान करने पड़े हैं। इसलिए हमारी संस्कृति और समाज के लिए साम्यवाद किसी भी प्रकार वाञ्छनीय नहीं है, परन्तु हमारी आज की स्थिति भी ज्यादा दिन नही रह पायेगी। क्योंकि एक ओर तो नाना-प्रकार के व्यसनों में पानी की तरह धन बहाया जाता है और दूसरी तरफ देश के करोड़ों बच्चे तथा बुड्ढों को भूखे पेट और नंगे तन रहना पड़ता है।

विषमता सारे संसार में ही है, परन्तु जब वह सीमा को लॉंघ जाती है तो फिर या तो रूस और चीन की तरह साम्य-वाद आता है या अन्य अरब देशों और पाकिस्तान की तरह फौजी तानाशाही !

❀

समय बदला पर हम नहीं

आज बम्बई और कलकत्ते में आम-चर्चा है कि उद्योग-व्यापार मन्दा है। जमीनों और मकानों की कीमतें घट रही है—चीजों की बिक्री कम है, आदि आदि।

'अकाल में अधिक मास' की कहावत के अनुसार इस मन्दी के साथ-साथ राजस्थान के कुछ हिस्सों में भयंकर अकाल भी पड़ गया, जिससे हजारों पशु भूख और प्यास से मर जायेंगे। भोजन की कमी के कारण मनुष्यों और बच्चों का शरीर घटकर कंकाल सदृश्य रह जायगा।

विभिन्न सेवा-संस्थाओंने वहाँ राहत का कार्य शुरू किया है और इसके लिए धनी-वर्ग थोड़ा बहुत दान भी दे देते हैं। परन्तु खेद है कि आज भी उनकी अपनी मौज-शौक के खर्चे में किसी प्रकार की कमी तो आयी ही नहीं—कुछ-न-कुछ बढ़ोतरी ही हुई है। अगर गाँव और पड़ोस के लोग पानी के बिना मर रहे हों तो तैरने के लिए पानी के तालाब को लोग किसी भी हालत में नहीं रहने देंगे। हाँ, सन् १९४३ में कलकत्ते की सड़कों पर लाखों व्यक्ति भूख से मर गये थे—जब कि सामने की दूकानों पर सैकड़ों मन मिठाई सजी रहती थी, परन्तु आज १९६९ है—न कि १९४३।

मेरे एक मित्र जो प्रसिद्ध पत्र-संचालक के सिवाय सब प्रकार के साधन सम्पन्न हैं—पिछले दिनों सपत्नीक दिल्ली आये। वे एक मित्र के फ्लैट में ठहरे थे। सब तरह की सुविधाएँ और आराम उनके लिए वहाँ उपलब्ध थे। उसी समय फेडरेशन की मीटिंग थी, जिसमें सम्मिलित होने के लिए कलकत्ते और बम्बई से बहुत से व्यक्ति आये थे। जिनमें कुछ तो सदस्य थे, अधिकांश तमाशबीन। वे भी अगर चाहते तो उनको भी दिल्ली में इस तरहका आतिथ्य मिल जाता क्योंकि उनके बहुत से सम्बन्धी और परिचित मित्र वहाँ रहते हैं और उन दिनों तो संसद का अधिवेशन भी चालू था।

परन्तु उन सबको तो ओबेराय इन्टरनेशनल में ही ठहरना था, जो इस समय भारत में सबसे मँहगा होटल है और जहाँ केवल चाय का चार्ज लगता है—डेढ़ रुपया प्रति कप, टिप अलग! यह भी सुना गया कि वहाँ जगह की माँग इतनी थी कि रिजर्वेशन के लिए सिफारिश करनी पड़ती थी।

मैंने अपने मित्र से कहा कि जब साधारण स्थिति के नवयुवक भी ओबेराय या अशोक होटल में ठहरते हैं, तो आप लोग वहाँ क्यों नहीं ठहरे? सबसे एक जगह ही मिलना-जुलना हो जाता और इन सब होटलों में ठहरने से बड़प्पन की शान भी है।

उनका जवाब था कि मिलना-जुलना तो कलकत्ते में सार्वजनिक उत्सवों या विवाह-शादियों में इन लोगों से होता ही

रहता है और जहाँ-तक वड़प्पन और शान का सवाल है—वह फिजूल-खर्ची और दिखावे में नहीं है। हाँ, इसमें एक प्रकार से स्वयं की हीन-भावना (Inferiority Complex) की पूर्ति जरूर हो जाती है। मेरे यहाँ से ही उन्होंने दो-तीन भारत-प्रसिद्ध व्यक्तियोंको फोन करके मिलने का समय निश्चित किया। मुझे अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं मिल गया, क्योंकि उन वड़ी-वड़ी मोटरों और आलीशान होटलों में ठहरने वालों को तो सचिवों और उप-सचिवों से मिलने के लिए भी दो-चार दिन पहले समय लेना पड़ता है। कारण स्पष्ट है—वास्तव में आज धन और दिखावे का मापदण्ड ही घट रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक गरीव नाईके पुत्र श्री कर्पूरी ठाकुर का विहार जैसे वड़े प्रान्त का उप-मुख्यमन्त्री और कई साधारण सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंका वङ्गाल प्रान्तमें मन्त्री वन जाना।

इस सन्दर्भ में मुझे मेरे दो मित्रों की याद आ जाती है। प्रथम इस समय केविनेट मिनिस्टर के सिवाय देश के वड़े नेता हैं। सात वर्ष पहले वे केवल सदस्य थे परन्तु उस समय भी संसद में उनकी धाक थी। उन्होंने मुझे एक दिन भोजन का निमन्त्रण दिया परन्तु घरमे शायद कहना भूल गये। जब आठ वजे रात में पहुँचा तो वे कुछ सकपका गये परन्तु उसी समय वात को संभाल कर वोले—आपके यहाँ का खाना तो कई वार खा चुका हूँ सोचा आज अपना खाना जो हम नित्य प्रति खाते हैं—आपको खिलाऊँ। काँसे की थालियों में विना घी की

मेरे एक मित्र जो प्रसिद्ध पत्र-संचालक के सिवाय सब प्रकार के साधन सम्पन्न हैं—पिछले दिनों सपत्नीक दिल्ली आये। वे एक मित्र के फ्लैट में ठहरे थे। सब तरह की सुविधाएँ और आराम उनके लिए वहाँ उपलब्ध थे। उसी समय फेडरेशन की मीटिंग थी, जिसमें सम्मिलित होने के लिए कलकत्ते और बम्बई से बहुत से व्यक्ति आये थे। जिनमें कुछ तो सदस्य थे, अधिकांश तमाशबीन। वे भी अगर चाहते तो उनको भी दिल्ली में इस तरहका आतिथ्य मिल जाता क्योंकि उनके बहुत से सम्बन्धी और परिचित मित्र वहाँ रहते हैं और उन दिनों तो संसद का अधिवेशन भी चालू था।

परन्तु उन सबको तो ओबेराय इन्टरनेशनल में ही ठहरना था, जो इस समय भारत में सबसे मँहगा होटल है और जहाँ केवल चाय का चार्ज लगता है—डेढ़ रुपया प्रति कप, टिप अलग! यह भी सुना गया कि वहाँ जगह की माँग इतनी थी कि रिजर्वेशन के लिए सिफारिश करनी पड़ती थी।

मैंने अपने मित्र से कहा कि जब साधारण स्थिति के नवयुवक भी ओबेराय या अशोक होटल में ठहरते है, तो आप लोग वहाँ क्यों नहीं ठहरे ? सबसे एक जगह ही मिलना-जुलना हो जाता और इन सब होटलों में ठहरने से बड़प्पन की शान भी है।

उनका जवाब था कि मिलना-जुलना तो कलकत्ते में सार्वजनिक उत्सवों या विवाह-शादियों में इन लोगों से होता ही

रहता है और जहाँ-तक वड़प्पन और शान का सवाल है—वह फिजूल-खर्ची और दिखावे में नहीं है। हाँ, इसमें एक प्रकार से स्वयं की हीन-भावना (Inferiority Complex) की पूर्ति जरूर हो जाती है। मेरे यहाँ से ही उन्होंने दो-तीन भारत-प्रसिद्ध व्यक्तियोंको फोन करके मिलने का समय निश्चित किया। मुझे अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं मिल गया, क्योंकि उन वड़ी-वड़ी मोटरों और आलीशान होटलों में ठहरने वालों को तो सचिवों और उप-सचिवों से मिलने के लिए भी दो-चार दिन पहले समय लेना पड़ता है। कारण स्पष्ट है—वास्तव में आज धन और दिखावे का मापदण्ड ही घट रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक गरीव नाईके पुत्र श्री कर्पूरी ठाकुर का विहार जैसे वड़े प्रान्त का उप-मुख्यमन्त्री और कई साधारण सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंका वङ्गाल प्रान्तमें मन्त्री वन जाना।

इस सन्दर्भ मे मुझे मेरे दो मित्रों की याद आ जाती है। प्रथम इस समय कैविनेट मिनिस्टर के सिवाय देश के वड़े नेता हैं। सात वर्ष पहले वे केवल सदस्य थे परन्तु उस समय भी संसद में उनकी धाक थी। उन्होंने मुझे एक दिन भोजन का निमन्त्रण दिया परन्तु घरमे शायद कहना भूल गये। जब आठ वजे रात में पहुँचा तो वे कुछ सकपका गये परन्तु उसी समय वात को संभाल कर वोले—आपके यहाँ का खाना तो कई वार खा चुका हूँ सोचा आज अपना खाना जो हम नित्य प्रति खाते हैं—आपको खिलाऊँ। काँसे की थालियों में विना घी की

रोटियाँ, दाल और तेल की एक सब्जी थी—जो वास्तव में स्वादिष्ट लगीं। हँसकर कहने लगे, मैं पहले से कह देता तो आपके लिए शायद घी मँगाया जाता। खैर, आपको भारत के औसत आदमी का खाना खाने का अवसर तो मिला। सोचने लगा इतना बड़ा नाम, विद्वता और सम्मा की भी कमी नहीं, परन्तु रहन-सहन इतना सादा !

बिना पूछे उनके लड़के को एक फार्म में ३५०) रु० माहवार की नौकरी दिला दी। उन्हें पता चला तो वापस बुला लिया, बोले—यह लड़का दुर्भाग्य से बहुत पढ़-लिख नहीं पाय। इस-लिए मेरे नाम से नहीं, बल्कि इसकी योग्यता से उचित वेतन मिले—वही वाजिब है।

द्वितीय मित्र यद्यपि मन्त्री तो नहीं है परन्तु सम्मान, विद्वता और सूझ-बूझ में बहुत से मन्त्रियों से बड़े हैं। कई बार बड़े से बड़े पद और काम सम्भालने के लिए कहा गया, परन्तु नम्रता-पूर्वक बराबर टाल देते रहे। हाँ दूसरे योग्य मित्रों को जरूर वैसे कामों पर लगा देते है। मैं एक दिन सुबह उनके यहाँ बैठा था, प्रधान मन्त्री के सचिव का फोन आया कि एक बहुत जरूरी काम से प्रधान मन्त्री आपसे अभी मिलना चाहती हैं। उन्होंने कहा कि मैं ६ बजेसे पहले नहीं आ सकूँगा। थोड़ी देर बाद ही फिर फोन आया कि आप नौ बजे आ जायँ।

मुझे भी प्रधान-मन्त्री के यहाँ से बहुत कम—परन्तु दूसरे मन्त्रियों के यहाँ से फोन आते रहते है। मैं अन्य प्रोग्रामों में

रद्दोबदल करके भी वहाँ जाना जरूरी समझता हूँ और इसमें अपनी बड़ाई और प्रभाव की वृद्धि समझते हुए दूसरे मित्रों को भी कह देता हूँ कि फलाँ मन्त्री ने बुलाया था—इस तरह की बातें हुई आदि। शाम को मैंने उनसे प्रधान मन्त्री की भेंट के बारे में पूछा तो बोले अमुक काम की सलाह के लिए बुलाया था और भी बातें करना चाहती थीं, परन्तु एक कैबिनेट मिनिस्टर और एक प्रसिद्ध उद्योग पति नौ बजे से विजिटिंग रूम में बैठे थे। शायद उनको नौ और साढ़े नौ बजे का समय दिया हुआ था। प्रधान मन्त्री ने अपने सचिव से कहा कि मुझे इनसे बातें करने में समय लगेगा तुम उन्हें दूसरा समय दे दो। मेरे मित्र ने नम्रता-पूर्वक उनको कहा कि गलती मेरी थी कि दूसरों को दिया हुआ समय ले लिया, मैं कल फिर मिल लूँगा आप उनको बुला लें। प्रधान मन्त्री जब उन्हें बाहर तक पहुँचाने के लिये आयीं तो उन दोनों ने देख लिया। दो-तीन दिन बाद उद्योग-पति के यहाँ से मेरे पास फोन आया कि फलाँ व्यक्तिसे तुम्हारी मित्रता है। मैं उनको एक दिन भोजन के लिए बुलाना चाहता हूँ। अगर वे मंजूर करें तो उन्हें फोन कर दूँ। मैंने मित्र से कहा तो उन्होंने हँसकर कहा कि वैसे उनसे मेरी जान-पहचान तो है परन्तु मैं इन दिनों कुछ व्यस्त हूँ इसलिए फिर कभी चलेंगे।

यह सब लिखने का तात्पर्य अपने धनी युवकों को यह बतलाना है कि शान-शौकत और दिखावे मात्र से ही प्रभाव बढ़ता है—यह धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण है।

ये विदेशी पुतले

हमने मास्को के क्रेमलीन में देखा था कि जारों के समय के जो भी चिह्न थे, उन्हें बिना यह परवाह किये कि इनका कितना ऐतिहासिक महत्व है, पूरी तरह से मिटा दिया गया है।

यही बात दूसरे स्वतंत्र देशों में देखी और सुनी गयी है। ब्रिटिश फौजों को हटाने के बाद अमरीका के प्रथम प्रेसिडेन्ट जार्ज वाशिंगटन ने पहला काम यह किया था कि अंग्रेजों द्वारा छोड़े हुए स्मारकों को समाप्त कर दिया। उनकी मान्यता थी कि दुश्मनों के इस प्रकार के चिह्नों से देशके बच्चों के मन में हीन-भावना पैदा होती है, वे अपने को दूसरों से छोटा समझने लगते हैं।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय सम्राज्ञी मेरी अन्तोनिता ने विद्रोहियों को कहा था कि "मेरे निरीह बच्चों की जान बख्श दो, भला इन सबका क्या कसूर है ?" परन्तु जनता ये सब दलीलें सुनने को तैयार नहीं थी, उनका कहना था कि दुश्मनों के जिन्दे या मुर्दे किसी प्रकार के चिह्नों को हमें नहीं रखना है।

हमारे भारत में सदा से ही दया, क्षमा और सहिष्णुता को प्रधानता दी गयी है। हमारे धर्म-ग्रन्थों में भी कहा गया है कि बदले की भावना से घृणा उत्पन्न होती है जो किसी हालत में भी वांछनीय नहीं है। परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि जिन

हमारे भारत में तो ऊँचे-विचार और सादे जीवन का महत्व बराबर रहा है और आज भी है। आज देश की दशा खराब है—खास करके बङ्गाल तो एक प्रकार से ज्वालामुखी के मुँह पर है, जहाँ किसी समय भी भूकम्प आ सकता है। परन्तु खेद है कि वे यह नहीं लक्ष्य करते कि पूँजी भी श्रम की तरह उत्पादन का एक अङ्ग मात्र है। अतएव मेहनतकश जब उनके और अपने बीच सुख-साधन का विराट अन्तर पाता है तो उसमें विद्वेष और विद्रोह की आग धधक उठती है। बदले हुए समय का यह सुस्पष्ट संकेत है किन्तु बिडम्बना यही है कि "समय बदला पर हम नहीं" बदले।

❀

ये विदेशी पुतले

हमने मास्को के क्रेमलीन में देखा था कि जारों के समय के जो भी चिह्न थे, उन्हें विना यह परवाह किये कि इनका कितना ऐतिहासिक महत्व है, पूरी तरह से मिटा दिया गया है।

यही वात दूसरे स्वतंत्र देशों मे देखी और सुनी गयी है। ब्रिटिश फौजों को हटाने के बाद अमरीका के प्रथम प्रेसिडेन्ट जार्ज वाशिंगटन ने पहला काम यह किया था कि अंग्रेजों द्वारा छोड़े हुए स्मारकों को समाप्त कर दिया। उनकी मान्यता थी कि दुश्मनों के इस प्रकार के चिह्नों से देशके वच्चों के मन मे हीन-भावना पैदा होती है, वे अपने को दूसरो से छोटा समझने लगते है।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय सम्राज्ञी मेरी अन्तोनिता ने विद्रोहियों को कहा था कि "मेरे निरीह वच्चों की जान वख्श दो, भला इन सवका क्या कसूर है?" परन्तु जनता ये सव दलीलें सुनने को तैयार नहीं थी, उनका कहना था कि दुश्मनों के जिन्दे या मुर्दे किसी प्रकार के चिह्नों को हमें नहीं रखना है।

हमारे भारत में सदा से ही दया, क्षमा और सहिष्णुता को प्रधानता दी गयी है। हमारे धर्म-ग्रन्थों में भी कहा गया है कि वदले की भावना से घृणा उत्पन्न होती है जो किसी हालत में भी वांछनीय नहीं है। परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि जिन

लोगोंने हमें अपमानित किया, हमारे बच्चों और स्त्रियों की बेरहमी से हत्या की, हमारे ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ दिया और हमारे कारीगरों के हाथ काट दिये, उन सबके स्मारकों की हम रक्षा करते रहें।

वैसे बहुत से अंग्रेज सेनापतियों और अधिकारियों ने यहाँ अनेक प्रकार के अमानुषिक अत्याचार किये, परन्तु राबर्ट क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स और डलहौजी के कुकृत्यों से तो इतिहास भरा हुआ है—यहाँ तक कि ब्रिटिश संसद में भी पहले दोनों के काले-कारनामों की लम्बी सूची सुरक्षित है।

हमें स्वतन्त्रता मिले २२ वर्ष हो गये। विश्व में हमारा जनसंख्या के लिहाज से द्वितीय स्थान है—हमारी अपनी संस्कृति भी शायद सबसे पुरानी है। पिछले सौ वर्षों में हमारे यहाँ भी तिलक, गांधी, रवीन्द्रनाथ, सुभाषचन्द्र और जवाहरलाल नेहरू जैसे महान् व्यक्ति पैदा हुए है। परन्तु खेद है कि आज भी हम उन विदेशियों की पूजा करते है, जिन्होंने इस देश का हर प्रकार से शोषण किया, इसकी मातृ जाति का अपमान किया, इसके बच्चों को अशिक्षित रखा और जालियाँवाले बाग का अमानुषिक हत्याकाण्ड किया।

कलकत्ते की प्रमुख व्यापार-उद्योग प्रतिष्ठानों की सड़क का नाम क्लाइव रो है। इसी प्रकार अपने समय के प्रसिद्ध जालिम वारेन हेस्टिंग्स के नाम से भी कई मोहल्ले और सड़कें यहाँ पर

हैं। जिस स्थान से इस प्रान्त का शासन संचालन होता है उस जगह का नाम डलहौजी स्क्वायर है।

मुझे पता नहीं है कि जालियाँवाले बाग के हत्याकाण्ड के सूत्रधार डायर के नाम पर भी कोई स्मारक देश में है या नहीं? परन्तु उस समय के वाइसराय और पंजाब के गवर्नर के नाम से तो जरूर कुछ यादगार होगी ही।

यद्यपि स्वर्गीय डा० लोहिया ने इस सन्दर्भ में बहुत कुछ कहा और लिखा था। परन्तु खेद की बात है कि सिवाय कुछ सड़कों के नाम बदल देने के आजतक किसी प्रकार के सामूहिक प्रयत्न इसके लिये नहीं किये गये।

इतने वर्षो के बाद भी भारत में विदेशी पुतले खड़े हुए हमारी संस्कृति, सभ्यता और ऐतिहासिक तथ्यों को झूठा साबित कर रहे है। इनमें से कुछ तो ऐसे व्यक्तियों के है, जिन्होंने घिनौने तरीको से मरहठों और सिक्खों की देश-भक्त फौजों को कुचला था।

लार्ड मैकाले ने कहा था कि भारतीयो के रंग के सिवाय उनकी भाषा और वेष अगर अंग्रेजी कर सकेंगे तो, हमें भारत में अपने आप सफलता मिल जायगी।

२२ वर्षों से अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया, परन्तु मैकाले का नुस्खा आज भी अपना काम कर रहा है। स्वतन्त्र भारत के नेता अपने बच्चों को अंग्रेजी लिबास में मिशनरी स्कूलों में भेजने में अपनी इज्जत और मान-बड़ाई समझते है। कहते हैं—

इनमें से कइयों के दाखिले के लिए १०-१२ वर्षों तक राह देखनी पड़ती है।

उन सब स्कूलों में अभी तक विंसेन्ट स्मिथ और मार्सडन के भारतीय इतिहास पढ़ाये जाते है, जिनमें झाँसी की रानी को कुचक्रों, ताँत्या टोपे को बागी और बहादुर शाह जफर को सनकी बताया गया है—साथ ही क्लाइव, हेस्टिंग्स और डलहौजी को वीर, चरित्रवान और उदार कहा गया है। इस प्रकारके ऐतिहासिक ग्रन्थो को पढ़कर हमारे भावी नागरिको के मन में जिस प्रकार के उद्‌गार उत्पन्न होंगे, उसमें शायद दो राय नहीं होगी।

वैसे हर जलसे में हम वन्देमातरम् और जन-मन-गण अधिनायक का गान करते हैं। परन्तु हमें सोचना है कि क्या वास्तव में ही हम इसके अधिकारी हैं? क्योंकि जिन वीरों ने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना आत्मोत्सर्ग किया है, स्मारक तो उन शहीदों के होने चाहिए, परन्तु आज शायद ही कहीं भगत सिंह, सुखदेव, खुदीराम और चन्द्रशेखर आजाद के स्टेच्यू देश के विशिष्ट स्थानों में नजर आवेंगे।

खेद की बात है कि इस समय तक भी हमारी इस स्वतन्त्रता की भूमि पर ये सब विदेशी पुतले सिर उठाये गर्व से हमें हिकारत की नजर से देख रहे है और हमारे स्वाभिमान को चुनौती दे रहे हैं।

❀

अंग्रेज गये पर अंग्रेजियत नहीं

मुझे अपने लेखों के बारे में कुछ मित्र सलाह देते हैं कि उन्हें अंग्रेजी पत्रों में भी भेजा करूं। मैं स्वयं भी कभी कभी इस बारे में सोचता हूं—परन्तु मेरे अधिकाश लेख एक प्रकार से हिन्दी भाषियोंके और एक विशेष वर्ग के लोगों के उपयुक्त ही होते हैं। जहां तक आर्थिक विषय के लेखों का प्रश्न है उन्हें अंग्रेजी पत्रों में देने से शायद ज्यादा पाठकों को पढ़ने का मौका मिले—परन्तु वे सब मुझे दूसरे किसी व्यक्ति से अनुवाद कराकर भेजने पड़ते हैं। उनमें कभी कभी मेरे विचारों को पूरा प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता। इनमें से कई लेखों का गुजराती और मराठी पत्रों ने अनुवाद किया भी है।

मैंने यह भी अनुभव किया है कि उत्तर भारत में हिन्दी समाचार-पत्रों के पाठक, अंग्रेजी पत्रों से कहीं अधिक हैं। एक समाचार-पत्र को सारे दिन में औसत ५-६ व्यक्ति पढ़ लेते हैं, जब कि अंग्रेजी के पत्र खरीदते तो बहुत से लोग हैं परन्तु उनमें से अधिकांश शेयरों और बोरे-पाट के भाव देखकर ही संतोष कर लेते हैं। उनमें से ज्यादातर को दूसरे समाचारों को समझने के लिए हिन्दी समाचार-पत्र पढ़ना जरूरी हो जाता है। खेद तो इस बात का है कि हिन्दी के हिमायती, बातें तो ज्यादा करते हैं, परन्तु व्यवहार में कम लाते हैं। आज भी बॅगला और अन्य दक्षिणी भाषाओं के कई समाचार-पत्र डेढ़-दो लाख बिकते हैं।

मुझे कई बार विदेशों में जाने का मौका मिला है। जापान, हालैण्ड, स्वीडेन, फ्रांस या इटली—कहीं भी यह देखने में नहीं आया कि अपनी भाषा की जगह किसी दूसरे देश की भाषा का प्रयोग होता हो। न्यूयार्क की एक बहुत बड़ी पुस्तकों की दुकान में गया। भारत के बारे में कुछ किताबें देखीं। जब हिन्दी पुस्तकों के बारेमें पूछा तो कहा गया कि हिन्दुस्तानी तो अंग्रेजी पुस्तकें ही खरीदतें है, इसलिए हिन्दी की तो कोई किताब हमारे यहाँ नहीं है। मैंने देखा कि उनके यहाँ दूसरी भाषाओं की बहुत सी पुस्तकें थीं।

लार्ड मैकाले ने भारत से अवकाश लेते समय अपने अंग्रेज आफिसरों को गुप्त हिदायत दी थी कि भारतीयों के दिल और दिमाग इस प्रकार के बना दो कि वे अपनी संस्कृति और भाषा को भूलकर ब्रिटेन की सस्कृति और भाषा ग्रहण कर लें। इससे हमारे उद्देश्य की पूर्ति अपने-आप हो जायगी।

संयोग से हमें स्वतन्त्रता तो मिल गयी—परन्तु बाइस वर्षों के लम्बे समय के बावजूद मैकाले के नुस्खे का प्रभाव अभी तक ज्यों का त्यों कायम है, शायद कुछ बढ़ा ही है। आम-जनता की तो बात ही क्या, भारतीय संसद में भी अधिकांश सदस्य अधकचरी अंग्रेजी बोलने में ज्यादा शान समझते हैं जब कि वे अच्छी हिन्दी बोल सकते हैं। इसको हम हीन-भावना कह सकते हैं। वैसे सर्वश्री गङ्गाशरण, प्रकाशवीर शास्त्री, अटलबिहारी वाजपेयी, मधु लिमये आदि चोटी के सदस्य सदा हिन्दी में

वोलते हैं और उसको सब भाषाओंके समाचार-पत्रों से बराबर सहयोग मिलता है।

भाषा के सिवाय खान-पान और पहनावे में भी इन वर्षों में विदेशी प्रभाव बढ़ा है। खास करके पंजाबी और मारवाड़ी समाज में। सुना जाता है कि इन दिनों कलकत्ते के पार्क स्ट्रीट के आस-पास पचीसों रेस्तरॉं और नाइट-क्लब खुल गये है, जहॉं एक बार के खाने-पीने का चार्ज लगता है ३५-४० रुपये! इसमें खाने के समय के नाच-गाने का चार्ज भी शामिल है। जानकार लोग कहते हैं कि इनके ग्राहकों मे ७५ प्रतिशत से ज्यादा पंजाबी और राजस्थानी युवक-युवतियॉं ही रहती हैं।

दिल्ली में एक बंगाली मन्त्री के पुत्र के विवाह में गया था। वहॉं देखा कि जितने भी बंगाली मेहमान थे, वे सब धोती-कुर्ते और चादर में थे। इनमें ५-७ तो सुप्रीम कोर्ट के जज या एडवोकेट थे, परन्तु वे घर जाकर पोशाक बदल कर आये थे। इस बार कलकत्ते के कई राजस्थानी समाज के विवाहो में जाने का मौका मिला। वहॉं देखा कि दो-चार व्यक्ति ही धोती कुर्ते वाले थे—बाकी सब कोट, पतलून और टाई में थे। यही नहीं आजकल तो मुर्दनी (श्मशान-यात्रा) में भी कोट-पैण्ट और टाई लगाये हुए व्यक्ति दिखाई देते है।

सुविधा के लिए अगर कोट-पैण्ट पहने या अंग्रेजी में बातकरें तो कोई एतराज की बात नहीं है, परन्तु भारतीय वेश-भूषा या भाषा को मांगलिक और सामाजिक कामों में भी तिलांजलि दे दी जाय—यह कहाँ तक न्यायसंगत होगा?

अभी थोड़े दिनों पहले की ही बात है—एक भारत प्रसिद्ध व्यक्ति के पास बैठा हुआ था। उनके सचिव ने एक साधारण से कागज पर हिन्दी में लिखा हुआ एक नाम दिया। वे स्वयं जाकर उनको लिवा लाये। चार-पाँच दिनों की बढ़ी हुई दाढ़ी, खादी की ऊँची धोती, हाथ से धोये हुये कुर्त्ता-टोपी में एक वयोवृद्ध दुबले-पतले से सज्जन थे। बहुत ही संक्षेप में उन्होंने गुजरात और राजस्थान के अकाल के बारे में कुछ बातें की। ऐसा लगा कि कपड़ों की तरह वे बात-चीत में भी मितव्ययी है। नाम पूछने की जिज्ञासा स्वाभाविक ही थी। वे थे—गुजरात के प्रसिद्ध संत रविशंकर महाराज। वैसे उनकी जीवनी और भाव-प्रसङ्ग पढ़ा हुआ था कि किस प्रकार उन्होंने देश के उपेक्षित और अछूत जातियों के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। बिहार के पिछले अकाल में लाखों भूखों-नंगो के लिए अन्न-वस्त्र की व्यवस्था की—यह बात सर्वविदित है।

मैं इस ठेठ देहाती व्यक्ति की, उन साहबी ठाठ-बाट वाले लोगों से तुलना कर रहा था, जो अपनी फर्राटेदार अंग्रेजी के माध्यम से उनके निजी सचिव से मिलने का समय लेने की प्रार्थना कर रहे थे। उपर्युक्त घटना लिखने का उद्देश्य यह है मनुष्य में अगर चारित्रिक बल हो तो उसे साधारण वेष-भूषा में भी सम्मान मिल सकता है। इसमें अंग्रेजी भाषा या वेश-भूषा का प्रयोग जरूरी नही है।